जैन स्तोक मंजूषा
(भाग १०)

प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, बीकानेर (राज.)

* जैन स्तोक मंजूषा
(भाग १०)

* प्रथम संस्करण– फरवरी 1997, प्रतियां 2200

* मूल्य – 28 रुपये

* अर्द्ध मूल्य – 14 रुपये

* प्रकाशक–
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, बीकानेर– 334005 (राज.)

* लेजर टाईप सेटिंग:
अमित कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिन्टर्स
सिटी डिस्पेंसरी के पास, भुजिया बाजार, बीकानेर

* आवरण:
सुधा ग्राफिक्स, भुजिया बाजार, बीकानेर

* मुद्रक:
सांखला प्रिन्टर्स
चन्दन सागर,
बीकानेर (राज.)

प्रकाशकीय

गणधरों द्वारा ग्रथित आगम ग्रन्थों का अध्ययन और अनुशीलन जन सामान्य के लिए दुरुह है। किन्तु कोई भी जिज्ञासु पाठक सूक्ष्मार्थ प्रतिपादक इन विशालकाय ग्रन्थों से सरलता से तत्त्वज्ञान प्राप्त कर सके इसलिए शास्त्रों में आये हुए मूल पाठों के आधार पर 'स्तोकों-थोकड़ों' का संकलन हुआ इनमें विशेष रूप से भगवती सूत्र और प्रज्ञापना सूत्र के स्तोकों का संकलन दृष्टिगत होता है। इन स्तोकों की वाचना, पृच्छना, पारियट्टणा और अनुप्रेक्षा करके अनेक भव्य आत्माओं ने तलस्पर्शी तत्त्वज्ञान रहस्य प्राप्त किया है।

भगवती और प्रज्ञापना सूत्र के थोकड़ों का सर्वप्रथम व्यवस्थित प्रकाशन श्री अगरचन्द भैरूंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था द्वारा हुआ। इसमें श्रद्धेय स्व. आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. के शिष्य शास्त्रमर्मज्ञ पं. रत्न श्री पन्नालालजी म.सा. तथा सुश्रावक श्री हीरालालजी मुकीम को सैकड़ों थोकड़े कंठस्थ थे उनको भी श्री जेठमल जी सेठिया ने लिपिबद्ध करवाया। तत्पश्चात् भगवती सूत्र के थोकड़ों के नौ भागों में तथा प्रज्ञापना सूत्र के थोकड़ों के तीन भागों में विभाजित कर प्रकाशित करवाया। अनेक संत-सती एवं मुमुक्षु भव्य जन इन थोकड़ों से लाभान्वित हुए।

इन थोकड़ों को कंठस्थ करने से तथा चिन्तन, मनन अन्वेषण करने से शास्त्रों के गहन विषयों पर भी सरलता से अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस बात का परीक्षण जब परम पूज्य समता विभूति समीक्षण ध्यान योगी आचार्य भगवन श्री नानालालजी म.सा. तथा शास्त्रज्ञ, तरुणतपस्वी अवधूत साधक

श्रद्धेय युवाचार्य श्री रामलाल जी म.सा. ने किया तो एक योजना बनी कि विद्यार्थी जीवन के प्रारम्भ में ही थोकड़े स्मरण करने के संस्कार डालना आवश्यक है। इधर श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड द्वारा भी नवीन पाठ्यक्रम निर्धारण की मांग जब परम श्रद्धेय आचार्य श्री जी म.सा. एवं परम श्रद्धेय युवाचार्य श्री म. सा. के समक्ष रखी गयी तब आचार्य देव ने नवीन पाठ्यक्रम निर्धारण के लिए श्री युवाचार्य प्रवर को संकेत किया। संकेतानुसार श्रद्धेय युवाचार्य प्रवर ने उपस्थित सन्त–सती वर्ग के परामर्श से नवीन पाठ्यक्रम का निर्माण किया और उसमें अपने पूर्व चिन्तन का अनुसरण करते हुए थोकड़ों को भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। अपनी विलक्षण प्रज्ञा से श्रद्धेय युवाचार्य श्री जी म.सा. ने विद्यार्थियों के परीक्षा स्तर को दृष्टि में रखते हुए उनके अनुकूल थोकड़ों की नवीन संयोजना की।

श्रद्धेय युवाचार्य प्रवर की इस संयोजना को विद्यार्थियों की सुविधा के लिए प्रकाशित करवाने का निर्णय श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड ने लिया और वह जैन स्तोक मंजूषा के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

माघ सुदी १३
वि०सं० २०५३
सन् १९९७

धनराज बेताला
संयोजक

श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, बीकानेर

अर्थ सहयोगी

देशनोक निवासी श्री मोतीलालजी दुगड़ आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म.सा. एवं श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ बीकानेर के स्थापना काल से ही एकनिष्ठ सुश्रावक है। श्रीमद् जवाहराचार्य, श्री गणेशाचार्य, श्री नानेशाचार्य एवं युवाचार्य श्री राममुनि के श्रद्धालु भक्तों में श्री दुगड़जी का परिवार अग्रणी है। शासननिष्ठ श्री मोतीलालजी दुगड़ के चार पुत्रों—श्री सुन्दरलालजी दुगड़, श्री सोहनलालजी दुगड़, श्री पूनमचन्द दुगड़ एवं श्री कौशल कुमार दुगड़ में श्री सुन्दरलालजी ज्येष्ठ पुत्र हैं तथा संघ एवं समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ताओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

श्री सुन्दरलालजी दुगड़ जैन समाज के उन युवा उद्योगपतियों में प्रमुख हैं, जिन्होंने विगत एक दशक में अपने अथक परिश्रम, कौशल, प्रतिभा तथा उदारता से न केवल औद्योगिक जगत में विशिष्ठ स्थान बनाया है अपितु अपनी धर्मनिष्ठा, सदाचारिता एवं दुःखकातरता से शिक्षा और सेवा के क्षेत्र में भी अनुकरणीय आदर्श स्थापित किया है।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के पूर्व उपाध्यक्ष श्री सुन्दरलालजी दुगड़ अनेक सामाजिक, शैक्षणिक, धार्मिक तथा सेवा संस्थानों के सम्प्रति ट्रस्टी, अध्यक्ष, मंत्री आदि विभिन्न पदों पर कार्यरत हैं एवं घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। श्री दुगड़ ने भवन निर्माण का कार्यारम्भ कर व्यवसाय जगत में प्रवेश किया एवं आर.डी. बिल्डर्स की स्थापना की,

किन्तु अपनी दूरदर्शिता कार्यकुशलता त्वरित निर्णय क्षमता तथा प्रतिभा के बल पर आज दैनिक बंगला अखबार सोनार बंगला एवं जूट आदि मिलों का संचालन कर रहे हैं। आर.डी. बिल्डर्स नामक इनकी कम्पनी आर.डी.वी. इण्डस्टीज लि. मे परिवर्तित होकर औद्योगिक जगत में पैर जमाकर इनके गतिशील चुम्बकीय व्यक्तित्व की कहानी कह रही है।

युवा उद्योग रत्न श्री सुन्दरलालजी दुगड़ समय की नब्ज पहचानने वाले प्रगतिशील विचारों के धनी हैं। 'दिया दूर नहीं जात' के पथ का अनुसरण करने वाले श्री दुगड़ ने अपनी जन्मभूमि देशनोक में समता–शिक्षा–सेवा संस्थान की स्थापना में प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया है। कपासन (उदयपुर) में आचार्य नानेश रूप रेखा प्राणी रक्षालय की स्थापना भी इनके अनुदान से हुई है।

हंसमुख, मिलनसार, विनम्र श्री दुगड़ का व्यक्तित्व प्रदर्शन, विज्ञापन एवं पाखंड से सर्वथा दूर सरलता सादगी और उदारता से समन्वित कलकत्ता के जैन अजैन समाज में अत्यन्त लोकप्रिय है। अनेक राजनेताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर भी ये एक निरभिमानी निष्काम कर्मठ कार्यकर्त्ता के रूप में जाने पहचाने जाते हैं; धर्म और सेवा का कलकत्ता में ऐसा कोई संस्थान तथा संगठन नहीं है जो इनके उदार सहयोग एवं सक्रिय व्यक्तित्व से लाभान्वित नहीं होता हो।

श्री दुगड़ जी के अर्थ सहयोग से प्रकाशित यह पुस्तक इनकी प्रशस्त एवं प्रगाढ़ धर्म भावना का प्रतीक है। इस सहयोग हेतु हम इनके हृदय से आभारी हैं।

***

अनुक्रमणिका

जैन स्तोक मंजूषा
भाग-१०

१. सोवचय सावचय का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक पांचवां, उद्देशा आठवां)

१- अहो भगवन् ! क्या जीव * सोवचया हैं (सिर्फ उपजते

---

* सोवचय-वृद्धि सहित अर्थात् पहले जितने जीव हैं, उतने बने रहें और नवीन जीवों की उत्पत्ति से संख्या बढ़ जाय, उसे सोवचय कहते हैं।

२ सावचय-हानिसहित अर्थात् पहले जितने जीव हैं, उनमें से कितने ही जीवों की मृत्यु हो जाने से संख्या घट जाय, उसे सावचय कहते हैं।

३ सोवचय- सावचय-वृद्धि और हानि सहित अर्थात् जीवों के जन्मने से और मरने से संख्या घट जाय बढ़ जाय, या बराबर (अवस्थित) रहे उसे सोवचय-सावचय कहते हैं।

४ निरुवचय-निरवचय-वृद्धि और हानि रहित अर्थात् जीवों की संख्या न बढ़े और न घटे किन्तु अवस्थित रहे उसको निरुवचय-निरवचय कहते हैं।

ही हैं, चवते नहीं) ? या सावचया हैं (सिर्फ चवते ही हैं, उपजते नहीं) ? या सोवचया-सावचया हैं (उपजते भी हैं, चवते भी हैं, सरीखा भी रहते हैं) ? या निरुवचया-निरवचया (उपजते भी नहीं और चवते भी नहीं, अवस्थित रहते हैं) ? हे गौतम ! जीव सोवचया नहीं, सावचया नहीं, सोवचया-सावचया नहीं किन्तु निरुवचया-निरवचया हैं।

नारकी आदि १९ दण्डक में भांगा पाये जाते हैं ४। पांच स्थावर में भांगा पाया जाता है १ (सोवचया-सावचया)। सिद्ध भगवान् में भांगा पाये जाते हैं २ पहला और चौथा।

२- स्थिति की अपेक्षा से समुच्चय जीव और ५ स्थावर की स्थिति सव्वद्धा (सर्वकाल)। १९ दण्डक में भांगा पाये जाते हैं ४, प्रथम तीन भांगों की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग की है। चौथे भांगे की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट अपने अपने विरह काल जितनी है। सिद्ध भगवान् में भांगा पाये जाते हैं दो, पहला, चौथा। पहले भांगे की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट ८ समय की है। चौथे भांगे की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट ६ मास की है।

३- वड्ढमाण में भांगा पाये जाते हैं २, पहला, तीसरा (सोवचया, सोवचया- सावचया)। हायमान में भांगा पाये जाते हैं २, दूसरा और तीसरा (सावचया, सोवचया-सावचया)। अवाट्ठिया में भांगा पाये जाते हैं २, तीसरा और चौथा (सोवचया-सावचया, निरुवचया-निरवचया)।

२. चरम पद का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र दसवां पद)

पृथ्वियां आठ हैं – रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, तमस्तमःप्रभा और ईषत्प्राग्भारा (सिद्धशिला)।

रत्नप्रभापृथ्वी क्या चरम है, अचरम है, बहुत चरम है, बहुत अचरम है, चरमान्त प्रदेश वाली है या अचरमान्त प्रदेश वाली है ? ये छहों प्रश्न सापेक्ष हैं , क्योंकि चरम, अचरम की अपेक्षा रखता है और अचरम, चरम की अपेक्षा रखता है। इसी तरह बहुत चरम, बहुत अचरम, चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश भी सापेक्ष हैं। यहां उपरोक्त प्रश्न अन्य द्रव्य की अपेक्षा न रखते हुए अखंड पृथ्वी की अपेक्षा किए गये हैं, इसलिए ये छहों प्रश्न निरपेक्ष होने से इनका उत्तर निषेध रूप है, यानी रत्नप्रभापृथ्वी न चरम है, न अचरम है, न बहुत चरम है, न बहुत अचरम है, न चरमान्त प्रदेश वाली है और न अचरमान्त प्रदेश वाली है।

किन्तु चूंकि रत्नप्रभापृथ्वी असंख्यात आकाश प्रदेशों में रही हुई है, उसके पृथक् पृथक् अवयव हैं, इसलिए अवयव, अवयवी रूप रत्नप्रभापृथ्वी नियम पूर्वक अचरम है, बहुत चरम है, चरमान्त प्रदेश वाली है और अचरमान्त प्रदेश वाली है । वह इस प्रकार समझना– रत्नप्रभापृथ्वी इस आकार से रही हुई है। इसके प्रान्त भाग में रहे हुए खंड चरम हैं जो बहुत संख्या में हैं और बीच का रत्नप्रभा का महान् खण्ड एक है, अतः वह अचरम है। जब प्रदेश

की अपेक्षा से विचार करते हैं तो रत्नप्रभा के प्रान्तभाग में रहे हुए प्रदेश चरमान्त प्रदेश हैं और इनके बीच में महान खण्ड में रहे हुए प्रदेश अचरमान्त प्रदेश हैं। इसलिए रत्नप्रभा अचरम, बहुत चरम, चरमान्त प्रदेश वाली और अचरमान्त प्रदेश वाली है।

रत्नप्रभा की तरह ईषत्प्रागभारा तक शेष सात पृथ्वियां कह देनी चाहिए। इसी तरह बारह देवलोक, नव ग्रैवेयक, पांच अनुत्तर विमान, लोक और अलोक कहना। ये कुल ३६ बोल हुए। इनके ३६ X ४ = १४४ आलापक हुए।

अल्पबहुत्व – रत्नप्रभापृथ्वी के अचरम, बहुत चरम, (चरमाइं), चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश की द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य-प्रदेश शामिल की अपेक्षा अल्पबहुत्व इस प्रकार है– द्रव्य की अपेक्षा रत्नप्रभा का सबसे थोड़ा एक अचरम, और बहुत चरम (चरमाइं) असंख्यातगुणा, और दोनों अचरम और बहुत चरम विशेषाधिक । प्रदेश की अपेक्षा –रत्नप्रभा के सबसे थोड़े चरमान्त प्रदेश, अचरमान्त प्रदेश असंख्यातगुणा और दोनों चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश विशेषाधिक। द्रव्य-प्रदेश शामिल की अपेक्षा – रत्नप्रभा का द्रव्य की अपेक्षा सबसे थोड़ा एक अचरम, बहुत चरम असंख्यातगुणा, अचरम और बहुत चरम दोनों विशेषाधिक, चरमान्त प्रदेश असंख्यातगुणा, अचरमान्त प्रदेश असंख्यातगुणा तथा चरमान्त और अचरमान्त प्रदेश विशेषाधिक। इसी तरह अलोक के सिवाय शेष ३४ बोल की अल्पबहुत्व कह देनी चाहिए।

अलोक के अचरम, बहुत चरम, चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश की द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य-प्रदेश शामिल की अपेक्षा अल्पबहुत्व– द्रव्य की अपेक्षा अलोक का सबसे थोड़ा एक

अचरम, बहुत चरम असंख्यातगुणा तथा अचरम और बहुत चरम विशेषाधिक। प्रदेश की अपेक्षा अलोक के सबसे थोड़े चरमान्त प्रदेश, अचरमान्त प्रदेश अनन्तगुणा, दोनों चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश विशेषाधिक। द्रव्य- प्रदेश शामिल की अपेक्षा अलोक का सबसे थोड़ा एक अचरम द्रव्य, बहुत चरम द्रव्य असंख्यातगुणा, अचरम और बहुत चरम द्रव्य दोनों विशेषाधिक, चरमान्त प्रदेश असंख्यातगुणा, अचरमान्त प्रदेश अनन्तगुणा तथा चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश दोनों विशेषाधिक।

लोक और अलोक के अचरम, बहुत चरम, चरमान्त प्रदेश, अचरमान्त प्रदेश की द्रव्य, प्रदेश तथा द्रव्य-प्रदेश शामिल की अपेक्षा अल्पबहुत्व -- द्रव्य की अपेक्षा १ सबसे थोड़े लोक और अलोक के अचरम, २ लोक के बहुत चरम असंख्यातगुणा, ३ अलोक के बहुत चरम विशेषाधिक तथा ४ लोक और अलोक के अचरम और बहुत चरम दोनों विशेषाधिक। प्रदेश की अपेक्षा १ सबसे थोड़े लोक के चरमान्त प्रदेश, २ अलोक के चरमान्त प्रदेश विशेषाधिक, ३ लोक के अचरमान्त प्रदेश असंख्यातगुणा, ४ अलोक के चरमान्त प्रदेश अनन्तगुणा तथा ५ लोक और अलोक के चरमान्त प्रदेश व अचरमान्त प्रदेश विशेषाधिक। द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा १ सबसे थोड़े लोक और अलोक के द्रव्य की अपेक्षा एक-एक अचरम, २ लोक के बहुत चरम असंख्यातगुणा, ३ अलोक के बहुत चरम विशेषाधिक, ४ लोक और अलोक के एक - एक अचरम और बहुत चरम दोनों विशेषाधिक, ५ लोक के चरमान्त प्रदेश असंख्यातगुणा, ६ अलोक के चरमान्त प्रदेश विशेषाधिक, ७ लोक के अचरमांत

प्रदेश असंख्यातगुणा, ८ अलोक के अचरमान्त प्रदेश अनन्त गुणा, ९ लोक अलोक के चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश दोनों विशेषाधिक, १० सर्व द्रव्य विशेषाधिक, ११ सर्व प्रदेश अनन्तगुणा, १२ सर्व पर्याय अनन्तगुणी।

छब्बीस भंग

असंयोगी छह –

१ चरम एक २ अचरम एक ३ अवक्तव्य एक,
४ चरम बहुत ५ अचरम बहुत ६ अवक्तव्य बहुत।

द्विकसंयोगी बारह –

७ चरम एक अचरम एक, ८ चरम एक अचरम बहुत, ९ चरम बहुत अचरम एक, १० चरम बहुत अचरम बहुत, ११ चरम एक अवक्तव्य एक, १२ चरम एक अवक्तव्य बहुत, १३ चरम बहुत अवक्तव्य एक, १४ चरम बहुत अवक्तव्य बहुत, १५ अचरम एक अवक्तव्य एक, १६ अचरम एक अवक्तव्य बहुत, १७ अचरम बहुत अवक्तव्य एक, १८ अचरम बहुत अवक्तव्य बहुत।

त्रिकसंयोगी आठ –

१९ चरम एक अचरम एक अवक्तव्य एक,
२० चरम एक अचरम एक अवक्तव्य बहुत,
२१ चरम एक अचरम बहुत अवक्तव्य एक,
२२ चरम एक अचरम बहुत अवक्तव्य बहुत,
२३ चरम बहुत अचरम एक अवक्तव्य एक,

२४ चरम बहुत अचरम एक अवक्तव्य बहुत,
२५ चरम बहुत अचरम बहुत अवक्तव्य एक,
२६ चरम बहुत अचरम बहुत अवक्तव्य बहुत।

परमाणु द्विप्रदेशी त्रिप्रदेशी स्कंध यावत् संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी और अनन्त प्रदेशी स्कंधों में उक्त २६ भंगों में से कितने भंग पाये जाते हैं सो बताते हैं –

परमाणुम्मि य तइओ, पढमो तइओ य होंति दुपएसे ।
पढमो तइओ नवमो, एक्कारसमो य तिपएसे ।। १ ।
पढमो तइओ नवमो, दसमो एक्कारसो य बारसमो ।
भंगा चउप्पएसे, तेवीसइमो य बोद्धव्वो ।। २ ।
पढमो तइओ सत्तम नव, दस इक्कार बार तेरसमो ।
तेवीस चउव्वीसो, पणवीसइमो य पंचमए ।। ३ ।
बि चउत्थ पंच छट्ठं, पनरस सोलं च सत्तरट्ठारं ।
वीसेक्कवीस बावीसगं, च वज्जेज्ज छट्ठम्मि ।। ४ ।
बि चउत्थ पंच छट्ठं, पण्णरस सोलं च सत्तरट्ठारं ।
बावीसइम विहूणा, सत्त पदेसम्मि खंधम्मि ।। ५ ।
बि चउत्थ पंच छट्ठं, पण्णर सोलं च सत्तरट्ठारं ।
एते वज्जिय भंगा, सेसा सेसेसु खंधेसु ।। ६ ।

अर्थ – परमाणु में एक भंग तीसरा अवक्तव्य, द्विप्रदेशी स्कंध में दो भंग – पहला और तीसरा, त्रिप्रदेशी स्कंध में चार भंग १, ३, ९, ११, चतुःप्रदेशी स्कंध में सात भंग १, ३, ९, १०, ११, १२, २३, पंच प्रदेशी स्कंध में ग्यारह भंग १, ३, ७, ९, १०, ११, १२, १३, २३, २४, २५, षट् प्रदेशी स्कंध में पन्द्रह भंग – छब्बीस

भंग में से - २, ४, ५, ६, १५, १६, १७, १८, २०, २१, २२ ये ११ भंग छोड़कर शेष १५ भंग, जो इस प्रकार हैं- १, ३, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १९, २३, २४, २५, २६, सप्त प्रदेशी स्कंध में छब्बीस भंग में से २, ४, ५, ६, १५, १६, १७, १८, २२ ये नव भंग छोड़कर शेष १७ भंग; जो इस प्रकार हैं- १, ३, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १९, २०, २१, २३, २४, २५, २६, अष्ट प्रदेशी तथा आगे के स्कंधों में पूर्वोक्त सत्रह भंग और बाईसवां ये १८ भंग पाये जाते हैं।

परमाणु एक प्रदेश में रहता है, इसके अवयव नहीं होते, इसलिए इसमें चरम अचरम भंग न पाकर केवल तीसरा "अवक्तव्य" एक भंग पाया जाता है। परमाणु की स्थापना इस प्रकार [•] है।

द्विप्रदेशी स्कंध दो आकाशप्रदेश में रहता है अथवा एक आकाशप्रदेश में रहता है। जब द्विप्रदेशी स्कंध समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में इस प्रकार से [•|•] रहता है तब उसमें पहला "चरम एक" भंग पाया जाता है, क्योंकि दोनों प्रदेश एक दूसरे की अपेक्षा चरम हैं। जब द्विप्रदेशी स्कंध एक आकाशप्रदेश में इस प्रकार [••] रहता है तब उसमें तीसरा "अवक्तव्य एक" भंग पाया जाता है।

त्रिप्रदेशी स्कंध जब समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में इस आकार से [•|•] रहता है तब उसमें पहला "चरम एक" भंग पाया जाता है। जब त्रिप्रदेशी स्कंध एक आकाशप्रदेश को अवगाह कर इस तरह [∴] रहता है तब उसमें तीसरा "अवक्तव्य एक" भंग पाता है। जब त्रिप्रदेशी स्कंध समश्रेणी स्थित तीन आकाशप्रदेशों

में इस प्रकार से [• | • | •] रहता है तब उसमें नौवां * "दो चरम एक अचरम" भंग पाता है। जब त्रिप्रदेशी स्कंध के दो प्रदेश समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में और तीसरा प्रदेश विश्रेणी स्थित आकाशप्रदेश में इस प्रकार से [• | •] [•] रहते हैं तब उसमें ग्यारहवां "चरम एक अवक्तव्य एक" भंग पाया जाता है।

चतु:प्रदेशी स्कंध में १, ३, ९, १०, ११, १२ और २३ वां ये सात भंग पाये जाते हैं। जब चतु:प्रदेशी स्कंध समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में इस प्रकार [• • | • •] रहता है तब उसमें पहला "चरम एक" भंग पाया जाता है। जब चार प्रदेशी स्कंध एक ही आकाशप्रदेश को अवगाह कर इस प्रकार से [: :] रहता है तब उसमें तीसरा "अवक्तव्य एक" भंग पाया जाता है। जब चार प्रदेशी स्कंध समश्रेणी स्थित तीन आकाशप्रदेश में इस प्रकार [• | • • | •] रहता है तब उसमें नौवां "चरम दो अचरम एक" भंग पाया जाता है। जब चार प्रदेशी स्कंध समश्रेणी स्थित चार आकाशप्रदेश में इस प्रकार से [• | • | • | •] रहता है तब उसमें दसवां "चरम दो, अचरम दो" भंग पाया जाता है।

जब चार प्रदेशी स्कंध के तीन प्रदेश समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में और एक प्रदेश विश्रेणी स्थित आकाशप्रदेश में इस प्रकार [• • | •] [•] रहते हैं तब उसमें ग्यारहवां "चरम एक, अवक्तव्य एक, भंग पाया जाता है। जब चार प्रदेशी स्कंध के दो प्रदेश समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में और दो विश्रेणी स्थित दो

---

* *प्राकृत में द्विवचन नहीं होता, दो को भी बहुवचन ही गिना जाता है इसलिए जहां भी दो आवे, उन्हें बहुत गिनना।*
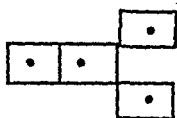
आकाशप्रदेश में इस प्रकार रहते हैं तब उसमें बारहवां "चरम एक, अवक्तव्य दो" भंग पाया जाता है। जब चार प्रदेशी स्कन्ध के तीन प्रदेश समश्रेणी स्थित तीन आकाशप्रदेश में और चौथा प्रदेश विश्रेणी स्थित आकाशप्रदेश में इस आकार से रहते हैं तब उसमें तेईसवां "चरम दो, अचरम एक, अवक्तव्य एक" भंग पाया जाता है।
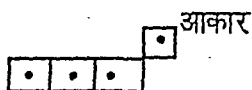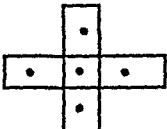
पांच प्रदेशी स्कन्ध में १, ३, ७, ९, १०, ११, १२, १३, २३, २४ और २५ ये ग्यारह भंग पाये जाते हैं। जब पांच प्रदेशी स्कन्ध समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में रहता है, एक आकाशप्रदेश में उसके तीन प्रदेश और दूसरे आकाशप्रदेश में दो प्रदेश इस तरह रहते हैं तब उसमें पहला "चरम एक" भंग पाते हैं। जब पांच प्रदेशी स्कन्ध के पांचों प्रदेश एक आकाशप्रदेश में इस प्रकार रहते हैं तब उसमें तीसरा "अवक्तव्य एक" भंग पाया जाता है। जब पांच प्रदेशी स्कन्ध पांच आकाशप्रदेश में इस प्रकार से रहता है तब उसमें सातवां "चरम एक, अचरम एक" भंग पाया जाता है। इसमें मध्यवर्ती प्रदेश अचरम है
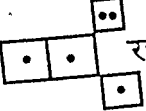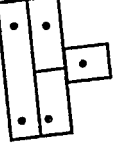
और चारों ओर के चार प्रदेश एक से संबद्ध होने से तथा एक वर्ण, एक गंध, एक रस और एक स्पर्श वाले होने से एक चरम रूप माने गए हैं। जब पांच प्रदेशी स्कन्ध समश्रेणी स्थित तीन आकाशप्रदेशों में इस आकार से रहता है तब उसमें नौवां "चरम दो, अचरम एक" भंग पाया जाता है। जब पांच प्रदेशी स्कंध समश्रेणी स्थित चार आकाशप्रदेशों में इस प्रकार रहता है तब उसमें दसवां "चरम दो, अचरम दो" भंग पाया जाता है। जब पांच प्रदेशी स्कन्ध तीन आकाशप्रदेशों में रहता है, दो दो प्रदेश समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में और एक विश्रेणी स्थित आकाशप्रदेश में इस आकार से रहता है तब उसमें ग्यारहवां "चरम एक, अवक्तव्य एक" भंग पाया जाता है। जब पांच प्रदेशी स्कंध चार आकाशप्रदेशों में रहता है, इसके दो प्रदेश समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में, दो प्रदेश विश्रेणी स्थित एक आकाशप्रदेश में और पांचवां प्रदेश विश्रेणी स्थित एक आकाशप्रदेश में इस आकार से रहते हैं तब उसमें बारहवां "चरम एक, अवक्तव्य दो" भंग पाया जाता है। जब पांच प्रदेशी स्कन्ध पांच आकाशप्रदेशों में रहता है, इसके दो प्रदेश समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में और दो प्रदेश इसके नीचे समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में और पांचवां प्रदेश इन दोनों के आगे मध्य में इस आकार से
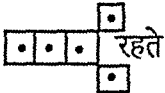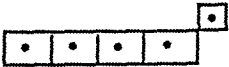
रहते हैं तब उसमें तेरहवां "चरम दो, अवक्तव्य एक" भंग पाया जाता है। जब पांच प्रदेशी स्कंध चार आकाशप्रदेशों में रहता है, समश्रेणी स्थित तीन आकाशप्रदेशों में पहले आकाशप्रदेश में एक, दूसरे आकाशप्रदेश में दो और तीसरे आकाशप्रदेश में एक और पांचवां प्रदेश विश्रेणी स्थित एक आकाशप्रदेश में इस आकार से रहते हैं तब उसमें तेईसवां "चरम दो, अचरम एक, अवक्तव्य एक" भंग पाया जाता है। जब पांच प्रदेशी स्कंध समश्रेणी और विश्रेणी स्थित पांच आकाशप्रदेशों में रहता है, इसके तीन प्रदेश समश्रेणी स्थित तीन आकाशप्रदेशों में और एक एक प्रदेश विश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेशों में इस आकार से रहते हैं तब उसमें चौबीसवां "चरम दो, अचरम एक, अवक्तव्य दो" भंग पाया जाता है। जब पांच प्रदेशी स्कन्ध पांच आकाशप्रदेशों में रहता है, इसके चार प्रदेश समश्रेणी स्थित चार आकाशप्रदेश में और पांचवां प्रदेश विश्रेणी स्थित एक आकाशप्रदेश में इस आकार से रहते हैं तब इसमें पच्चीसवां "चरम दो, अचरम दो, अवक्तव्य एक" भंग पाया जाता है।
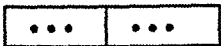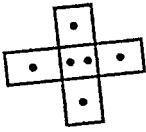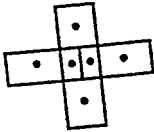
छह प्रदेशी स्कंध में १, ३, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १९, २३, २४, २५ और २६ ये पन्द्रह भंग पाये जाते हैं। जब छह प्रदेशी स्कंध समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेशों में इस प्रकार रहता है तब उसमें पहला "चरम एक" भंग

पाया जाता है। जब छह प्रदेशी स्कंध एक आकाशप्रदेश में इस प्रकार से रहता है तब उसमें तीसरा "अवक्तव्य एक" भंग पाया जाता है। जब छह प्रदेशी स्कंध पांच आकाशप्रदेशों में इस आकार से

रहता है तब उसमें पांच प्रदेशी स्कंध में बताये अनुसार सातवां "चरम एक, अचरम एक" भंग पाया जाता है। जब छह प्रदेशी स्कंध छह आकाशप्रदेशों में इस प्रकार से
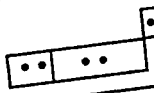
रहता है तब उसमें * आठवां 'चरम एक, अचरम दो' भंग पाया जाता है। पर्यन्तवर्ती चारों प्रदेश पंच प्रदेशी स्कंध में कहे अनुसार 'एक चरम' है और मध्य में 'दो अचरम' हैं। जब छह प्रदेशी स्कंध समश्रेणी स्थित तीन आकाशप्रदेशों में इस आकार से रहता है तब उसमें नौवां 'चरम दो, अचरम एक' भंग पाया जाता है। जब छह प्रदेशी स्कंध समश्रेणी स्थित चार आकाशप्रदेशों में इस प्रकार रहता है तब उसमें दसवां 'चरम दो, अचरम दो' भंग पाया जाता है, जब छह प्रदेशी स्कंध तीन आकाशप्रदेशों में रहता है, दो - दो प्रदेश समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में और दो प्रदेश विश्रेणी स्थित एक आकाशप्रदेश में इस प्रकार से रहते हैं तब उसमें
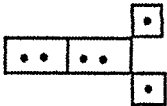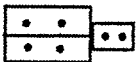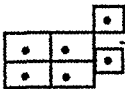
* *टीका में बताया गया है कि कई आचार्य इनमें आठवां भंग नहीं मानते।*

ग्यारहवां 'चरम एक, अवक्तव्य एक' भंग पाया जाता है। जब छह प्रदेशी स्कंध चार आकाशप्रदेशों में रहता है, इसके दो-दो प्रदेश समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में और एक एक प्रदेश विश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में इस आकार से
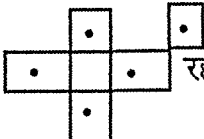
रहते हैं तब उसमें बारहवां 'चरम एक, अवक्तव्य दो' भंग पाया जाता है। जब छह प्रदेशी स्कंध पांच आकाशप्रदेश में इस प्रकार रहता है कि समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में दो और उनके नीचे समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में दो तथा दोनों श्रेणी के मध्य एक आकाशप्रदेश में दो प्रदेश इस प्रकार से रहते हैं तब उसमें तेरहवां 'चरम दो, अवक्तव्य एक' भंग पाया जाता है। जब छह प्रदेशी स्कंध छह आकाशप्रदेश में रहता है, समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में दो, उसके नीचे समश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में दो, ऊपर के आकाशप्रदेश में एक और मध्य भाग के आकाशप्रदेश में एक प्रदेश इस आकार से
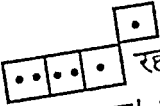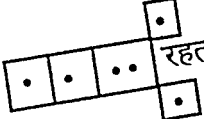
रहते हैं तब उसमें चौदहवां 'चरम दो, अवक्तव्य दो' भंग पाया जाता है। जब छह प्रदेशी स्कंध छह आकाशप्रदेशों में इस आकार से रहता
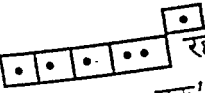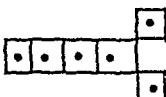
है तब उसमें उन्नीसवां 'चरम एक, अचरम एक, अवक्तव्य एक भंग' पाया जाता है। इसमें बीच का प्रदेश अचरम है, उसके चारों ओर के चार प्रदेश पांच प्रदेशी स्कंध में कहे अनुसार 'चरम' हैं और विश्रेणी में रहा हुआ एक प्रदेश 'अवक्तव्य' है। जब छह प्रदेशी स्कंध चार आकाशप्रदेशों में इस तरह रहता है कि समश्रेणी स्थित तीन आकाशप्रदेशों में से पहले दो आकाशप्रदेश में दो दो, तीसरे आकाशप्रदेश में एक और विश्रेणी स्थित चौथे आकाशप्रदेश में एक प्रदेश इस आकार से रहते हैं तब उसमें तेईसवां 'चरम दो, अचरम एक, अवक्तव्य एक' भंग पाया जाता है। जब छह प्रदेशी स्कंध समश्रेणी स्थित तीन और विश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में इस आकार से रहता है तब उसमें चौवीसवां 'चरम दो, अचरम एक, अवक्तव्य दो' भंग पाया जाता है। जब छह प्रदेशी स्कंध के समश्रेणी स्थित चार आकाशप्रदेशों में से पहले तीन आकाशप्रदेश में एक एक, चौथे में दो और विश्रेणी स्थित पांचवें आकाशप्रदेश में एक प्रदेश इस आकार से रहते हैं तब उसमें पच्चीसवां 'चरम दो, अचर दो, अवक्तव्य एक' भंग पाया जाता है। जब छह प्रदेशी स्कंध आकाशप्रदेशों में रहते हैं, उसके चार प्रदेश समश्रेणी स्थित आकाशप्रदेश में और दो प्रदेश विश्रेणी स्थित दो आकाशप्रदेश में
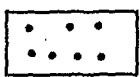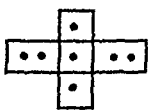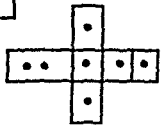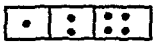
आकार से रहते हैं तब उसमें छब्बीसवां 'चरम दो, अचरम दो, अवक्तव्य दो' भंग पाया जाता है।

सात प्रदेशी स्कंध में १, ३, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १९, २०, २१, २३, २४, २५, २६ ये सत्रह भंग पाये जाते हैं। इन भंगों की स्थापना (आकार) नीचे दिया जा रहा है। ऊपर छह प्रदेशी के भंग जैसे समझाये गये हैं उसी तरह इन्हें भी समझ लेना चाहिए।

पहला भंग 'चरम एक' तीसरा भंग 'अवक्तव्य एक'
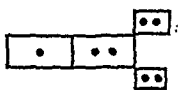
सातवां भंग 'चरम एक, अचरम एक'

आठवां भंग 'चरम एक, अचरम दो'

नौवां भंग 'चरम दो, अचरम एक'

दसवां भंग 'चरम दो, अचरम दो'

ग्यारहवां भंग 'चरम एक, अवक्तव्य एक'

बारहवां भंग 'चरम एक, अवक्तव्य दो'

तेरहवां भंग 'चरम दो, अवक्तव्य एक'
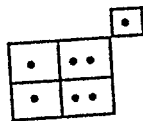
चौदहवां भंग 'चरम दो, अवक्तव्य दो'
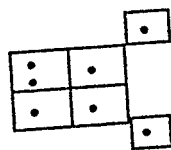
उन्नीसवां भंग 'चरम एक, अचरम एक, अवक्तव्य एक'
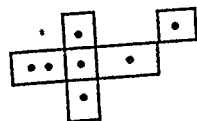
बीसवां भंग 'चरम एक, अचरम एक, अवक्तव्य दो'
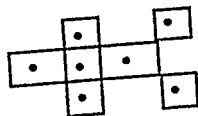
इक्कीसवां भंग 'चरम एक, अचरम दो, अवक्तव्य एक'
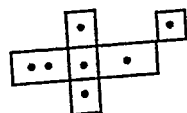
तेईसवां भंग 'चरम दो, अचरम एक, अवक्तव्य एक'

चौवीसवां भंग 'चरम दो, अचरम एक, अवक्तव्य दो'
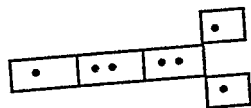
पच्चीसवां भंग 'चरम दो, अचरम दो, अवक्तव्य एक'
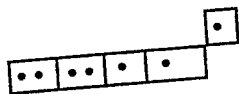
छब्बीसवां भंग 'चरम दो, अचरम दो, अवक्तव्य दो'
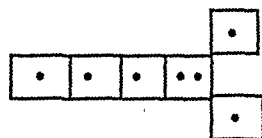
आठ प्रदेशी स्कंध में १, ३, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५ और २६ ये अठारह भंग पाये जाते हैं । इनकी स्थापना इस प्रकार है–

पहला भंग 'चरम एक'

तीसरा भंग 'अवक्तव्य एक'
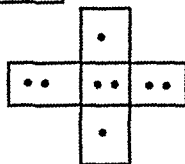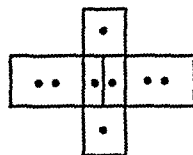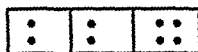
सातवां भंग 'चरम एक, अचरम एक'

आठवां भंग 'चरम एक, अचरम दो'

नौवां भंग 'चरम दो, अचरम एक'

दसवां भंग 'चरम दो, अचरम दो'

ग्यारहवां भंग 'चरम एक, अवक्तव्य एक'

बारहवां भंग 'चरम एक, अवक्तव्य दो'
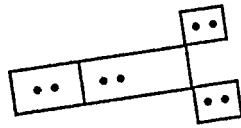
तेरहवां भंग 'चरम दो, अवक्तव्य एक'
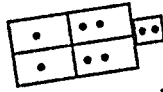
चौदहवां भंग 'चरम दो, अवक्तव्य दो'
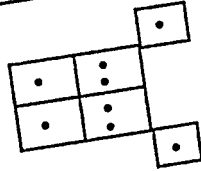
उन्नीसवां भंग 'चरम एक, अचरम एक, अवक्तव्य एक'
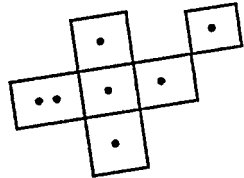
बीसवां भंग 'चरम एक, अचरम एक, अवक्तव्य दो'
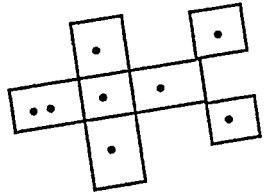
इक्कीसवां भंग 'चरम एक, अचरम दो, अवक्तव्य एक'
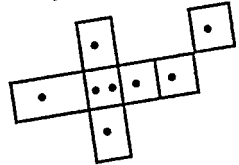
बाईसवां भंग 'चरम एक, अचरम दो, अवक्तव्य दो'
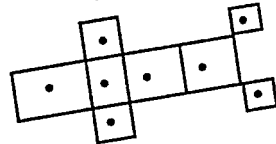
तेईसवां भंग 'चरम दो, अचरम एक, अवक्तव्य एक'

चौबीसवां भंग 'चरम दो, अचरम एक, अवक्तव्य दो'
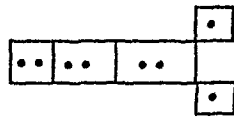
पच्चीसवां भंग 'चरम दो, अचरम दो, अवक्तव्य एक'

छब्बीसवां भंग 'चरम दो, अचरम दो, अवक्तव्य दो'
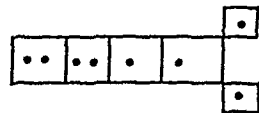
नौ प्रदेशी, दस प्रदेशी यावत् संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी और अनन्त प्रदेशी स्कंध में भंग आठ प्रदेशी स्कंध की तरह जानना।

संस्थान (संठाण) के पांच भेद– परिमण्डल, वृत्त (वट्ट), त्र्यस्र(तंस), चतुरस्र (चउरंस) और आयत। ये पांचों संस्थान संख्यात असंख्यात न होकर अनन्त हैं।

परिमण्डलसंस्थान संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी और अनन्त प्रदेशी है। इसी तरह शेष संस्थान भी संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी और अनन्त प्रदेशी हैं।

परिमण्डलसंस्थान आकाश के संख्यात प्रदेश और असंख्यात

देश अवगाह कर रहता है। संख्यात प्रदेशी परिमण्डलसंस्थान ंख्यात प्रदेश अवगाह कर स्थित है तथा असंख्यात प्रदेशी और अनन्त प्रदेशी परिमण्डलसंस्थान कभी संख्यात प्रदेश अवगाह कर और कभी असंख्यात प्रदेश अवगाह कर रहते हैं। इसी तरह शेष चार संस्थान भी जानना।

संख्यात प्रदेशावगाढ़ (आकाश के संख्यात प्रदेशों में रहा हुआ) संख्यात प्रदेशी परिमण्डलसंस्थान क्या एक चरम, एक अचरम, बहुत चरम, बहुत अचरम, चरमान्त प्रदेश वाला अथवा अचरमान्त प्रदेश वाला है ? इस प्रश्न का उत्तर रत्नप्रभा की तरह निषेध रूप है, किन्तु रत्नप्रभापृथ्वी की तरह संख्यात प्रदेशी परिमण्डल-संस्थान नियम पूर्वक एक अचरम, बहुत चरम, चरमान्त प्रदेश वाला और अचरमान्त प्रदेश वाला है।

संख्यात प्रदेशावगाढ़ संख्यात प्रदेशी परिमण्डलसंस्थान की द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य - प्रदेश (सम्मिलित) की अपेक्षा अल्पबहुत्व, द्रव्य की अपेक्षा - १. सबसे थोड़ा संख्यात प्रदेशावगाढ़ संख्यात प्रदेशी परिमण्डलसंस्थान का एक अचरम द्रव्य, २. बहुत चरम द्रव्य संख्यात गुणा ३. अचरम और बहुत चरम द्रव्य (सम्मिलित) विशेषाधिक। प्रदेश की अपेक्षा - १. सबसे थोड़े चरमान्त प्रदेश, २. अचरमान्त प्रदेश संख्यातगुणा, ३. चरमान्त प्रदेश अचरमान्त प्रदेश (सम्मिलित) विशेषाधिक। द्रव्य-प्रदेश (सम्मिलित) की अपेक्षा - १. सबसे थोड़ा एक अचरम द्रव्य, २. बहुत चरम द्रव्य संख्यातगुणा, ३. अचरम और बहुत चरम द्रव्य (सम्मिलित) विशेषाधिक, ४. चरमान्त प्रदेश संख्यातगुणा, ५. अचरमान्त प्रदेश

संख्यातगुणा, ६. चरमान्त प्रदेश अचरमान्त प्रदेश (सम्मिलित) विशेषाधिक।

संख्यात प्रदेशावगाढ़ असंख्यात प्रदेशी परिमण्डलसंस्थान की तीनों अल्पबहुत्व संख्यातप्रदेशी परिमण्डलसंस्थान की तरह कहना। असंख्यात प्रदेशावगाढ़ असंख्यातप्रदेशी परिमण्डलसंस्थान की तीनों अल्पबहुत्व रत्नप्रभापृथ्वी की तरह कहना। संख्यात प्रदेशावगाढ़ अनन्तप्रदेशी परिमण्डलसंस्थान की तीनों अल्पबहुत्व संख्यातप्रदेशी परिमण्डलसंस्थान की तरह कहना। असंख्यात प्रदेशावगाढ़ अनन्तप्रदेशी परिमण्डलसंस्थान की तीनों अल्पबहुत्व रत्नप्रभापृथ्वी की तरह कहना किन्तु इन दोनों अनन्तप्रदेशी परिमंडल-संस्थान में संक्रम से अनन्तगुणा कहना चाहिये अर्थात् क्षेत्र की अपेक्षा चिन्तन करते हुए जब द्रव्य की अपेक्षा चिन्तन करते हैं तो चरम अनन्तगुणा + कहना चाहिए। परिमंडलसंस्थान की तरह शेष चारों संस्थानों की अल्पबहुत्व कहना।

गई ठिइ भवे य भासा, आणापाणु चरमे य बोद्धव्वा।
आहार भाव चरमे, वण्ण रसे गंध फासे य ।।

अर्थ - १. गतिचरम २. स्थितिचरम ३. भवचरम ४. भाषाचरम ५. श्वासोच्छ्वासचरम ६. आहारचरम ७. भावचरम ८. वर्णचरम ९. गंधचरम १०. रसचरम ११. स्पर्शचरम।

एक जीव गति पर्याय की अपेक्षा चरम भी है अचरम भी

+ जैसे सबसे थोड़ा एक अचरम, बहुत चरम क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यातगुणा, द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणा, चरम और अचरम (सम्मिलित) विशेषाधिक।

है। बहुत जीव गतिपर्याय की अपेक्षा बहुत चरम हैं और बहुत अचरम हैं। इसी तरह २४ दण्डक कह देना चाहिये। गति की तरह शेष १० बोल भी कह देना चाहिये, अन्तर इतना है कि भाषा के बोल में एकेन्द्रिय के पांच दण्डक नहीं कहना चाहिये।

३. छक्कसमज्जिया का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक बीस, उद्देशा दस)

१ - अहो भगवन् ! क्या नारकी के नैरयिक * १ छक्कसमज्जिया (षट्कसमर्जित) हैं ? २ नोछक्कसमज्जिया (नोषट्कसमर्जित) हैं ? छक्केण य नो छक्केण य समज्जिया हैं ? ४ छक्केहि य समज्जिया हैं ? या ५ छक्केहि य नोछक्केण य समज्जिया हैं ? हे गौतम ! नारकी जीवों में ये पांचों भांगे पाये जाते हैं अर्थात् नारकी जीव १ छक्कसमज्जिया (छह छह उत्पन्न होने वाले) भी हैं, २ नोछक्कसमज्जिया (एक से पांच तक उत्पन्न होने वाले) भी हैं, ३ छक्केण य नोछक्केणसमज्जिया भी हैं (एक तो छह का थोक और उसके ऊपर एक से लेकर पांच तक यानी ७ से ११ तक उत्पन्न हुए), ४ छक्केहिं समज्जिया भी हैं (अनेक छह के थोक उत्पन्न हुए, जैसे १२, १८, २४, ३० आदि)। ५ अनेक छक्केहि य नोछक्केण य समज्जिया (अनेक छह के थोक

---

* *जो एक साथ छह उत्पन्न हुए हों, उन्हें छक्कसमज्जिया कहते हैं। जो एक साथ एक से लेकर पांच तक उत्पन्न हुए हों उन्हें नोछक्कसमज्जिया कहते हैं।*

और उनके ऊपर एक से लगा कर पांच तक, जैसे १३ से १७ तक, १९ से २३ तक, २५ से २९ तक आदि।

जिस तरह नारकी जीवों के लिए कहा, उसी तरह १८ दण्डक के जीवों के लिए कह देना चाहिए।

पांच स्थावर में दो भांगे पाये जाते हैं चौथा और पांचवां (छक्केहि समज्जिया, छक्केहि य नोछक्केण य समज्जिया)।

२ - अल्पबहुत्व -१९ दण्डक में सबसे थोड़े छक्कसमज्जिया, २ उससे नोछक्कसमज्जिया संख्यातगुणा, ५ उससे एक छक्केण य नोछक्केण य समज्जिया संख्यातगुणा, ४ उससे अनेक छक्केहि समज्जिया असंख्यातगुणा, ५ उससे छक्केहि य नोछक्केण समज्जिया संख्यातगुणा।

पांच स्थावर में - सबसे थोड़े छक्केहि समज्जिया, २ उससे अनेक छक्केहि य नोछक्केण य समज्जिया संख्यातगुणा।

सिद्ध भगवान् में पांचों ही भांगे पाये जाते हैं। सिद्ध भगवान् की अल्पबहुत्व- १ सबसे थोड़े छक्केहि य नोछक्केण य समज्जिया, २ उससे छक्केहि य समज्जिया संख्यातगुणा, ३ उससे छक्केण य नोछक्केण य समज्जिया संख्यातगुणा, ४ उससे छक्क-समज्जिया संख्यातगुणा, ५ उससे नोछक्कसमज्जिया संख्यातगुणा।

जिस तरह छक्कसमज्जिया का कहा उसी तरह बारह समज्जिया (एक साथ बारह के थोक से उत्पन्न हुए) का भी कह देना चाहिए।

जिस तरह छक्कसमज्जिया का कहा उसी तरह चौरासी समज्जिया (एक साथ चौरासी उत्पन्न हुए) का कह देना चाहिए।

इतनी विशेषता है कि सिद्ध भगवान् में पहले के तीन भांगे ही पाये जाते हैं। इन तीन भांगों का अल्पबहुत्व इस प्रकार है – १ सबसे थोड़े * चौरासी तथा नोचौरासीसमज्जिया, २ उससे चौरासीसमज्जिया अनन्तगुणा, ३ उससे नोचौरासीसमज्जिया अनन्तगुणा।

४. शालि आदि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक इक्कीस)

१ साली २ कल ३ अयसि ४ वंसे ५ इक्खू ६ दब्भे य ७ अब्भ ८ तुलसी य ।
अट्ठेए दस वग्गा, असीति पुण होंति उद्देसा ॥

अर्थ– इक्कीसवें शतक में ८ वर्ग हैं, ८० उद्देशे हैं। पहला वर्ग शालि आदि का है, दूसरा वर्ग कल मूंग आदि का है। तीसरा वर्ग अलसी आदि का है। चौथा वर्ग बांस आदि का है।

---

* चौरासी चौरासी एक साथ उत्पन्न होवें उसको चौरासीसमज्जिया कहते हैं। एक से लेकर त्रियासी की संख्या तक उत्पन्न होवें उसको नोचौरासीसमज्जिया कहते हैं। एक समय में चौरासी के ऊपर एक, दो, तीन, चार जाव त्रियासी (८३) तक उत्पन्न होवें, उसको चौरासी-नोचौरासीसमज्जिया कहते हैं। अनेक चौरासी एक साथ उत्पन्न होवें, उसको चौरासीहि य (अनेक चौरासी) समज्जिया कहते हैं। एक समय में अनेक चौरासी के ऊपर एक, दो, तीन, चार जाव त्रियासी तक उत्पन्न होवें उसको चौरासिहि य नोचौरासी-समज्जिया कहते हैं।

पांचवां वर्ग इक्षु आदि का है। छठा वर्ग दर्भ आदि का है। सातवां वर्ग * अभ्र (अजार) आदि का है। आठवां वर्ग तुलसी आदि का है।

एक एक वर्ग के दस दस उद्देशे हैं। उनके नाम इस प्रकार है - मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल (कोमल पत्ते), पान, फूल, फल, बीज।

जिस तरह ग्यारहवें शतक के पहले उद्देशे में 'उत्पल कमल' के ३२ द्वार कहे गये हैं, उसी तरह यहां भी कह देने चाहिए किन्तु इतनी विशेषता है कि ४९ की आगत, तीन लेश्या, २६ भांगे, अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व – दो से लेकर नौ तक) धनुष की, स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट प्रत्येक वर्ष की है। इस तरह पहले के सात उद्देशे एक सरीखे कह देने चाहिए। आठवें, नववें, दसवें उद्देशा में इतनी विशेषता कहनी चाहिए – इनमें देवता + उत्पन्न होते हैं, ७४ की आगत, ४ लेश्या के ८० भांगे, अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक अंगुल की है।

** एक वृक्ष में दूसरी जाति का वृक्ष उग जाता है, उसे अभ्र कहते हैं, जैसे बड़ के वृक्ष में पीपल का वृक्ष उग जाता है। नीम वृक्ष में पीपल वृक्ष उग जाता है।*

+ श्री पन्नवणासूत्र के वक्कंति (व्युत्क्रांति) छठे पद में कहा गया है कि देवता वनस्पति में उत्पन्न होते हैं। इसका आशय यह है कि देवता वनस्पति के पुष्पादि शुभ अंग में उत्पन्न होते हैं परन्तु मूलादि अशुभ अंग में उत्पन्न नहीं होते हैं।

जिस तरह पहले वर्ग के दस उद्देशे कहे गये हैं, उसी तरह दूसरे और तीसरे वर्ग के दस दस उद्देशे कहे देने चाहिए। चौथा वर्ग बांस का है। उसके भी दस उद्देशे इसी तरह कह देने चाहिए। सिर्फ इतनी विशेषता है कि उनमें देवता उत्पन्न नहीं होते हैं। लेश्या तीन और भांगे २६ कहने चाहिए।

पांचवें से आठवें वर्ग तक चारों वर्ग बांस की तरह कह देने चाहिए, सिर्फ इतनी विशेषता है कि इक्षु के स्कन्ध में देवता उत्पन्न होते हैं। लेश्या चार और भांगे ८० पाये जाते हैं।

५. ताल-तमाल आदि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक बाईसवां)

ताले गट्ठिय बहुबीयगा य, गुच्छा य गुम्म वल्ली य ।
छद्दस बग्गा एए, सट्ठिं पुण होंति उद्देसा ।१।

अर्थ – बाईसवें शतक में ६ वर्ग हैं जिनके ६० उद्देशे हैं । पहला वर्ग ताल-तमाल आदि का है। दूसरा वर्ग एक बीज वाले वृक्षों का है। तीसरा वर्ग बहुबीज (जिसके फलों में बहुत बीज हों, ऐसे वृक्ष) का है। चौथा वर्ग गुच्छा वनस्पति का है। पांचवां वर्ग गुल्म वनस्पति का है। छठा वर्ग बल्ली (बिल) का है।

जिस तरह इक्कीसवें शतक के पहले वर्ग में 'शालि' के मूल, कन्द आदि के उद्देशे कहे हैं, उसी तरह ताल तमाल आदि के दस उद्देशे कह देने चाहिए। सिर्फ इतनी विशेषता है कि पहले के पांच उद्देशों में देवता उत्पन्न नहीं होते। लेश्या ३ और २६ भांगे

होते हैं। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है। पिछले पांच उद्देशों में (छठे से दसवें तक) देवता उत्पन्न होते हैं, लेश्या ४ और भांगे ८० होते हैं। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट प्रत्येक वर्ष की है। अवगाहना पहले दूसरे उद्देशे में जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक धनुष की है। तीसरे चौथे पांचवें उद्देशे में जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक गाऊ की है। छठे सातवें उद्देशे में जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक धनुष की है। आठवें उद्देशे में जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक हाथ की है। नवमें दसवें उद्देशे में जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक अंगुल की है।

दूसरा, तीसरा वर्ग पहले वर्ग की तरह कह देना चाहिए। चौथा वर्ग बांस वर्ग की तरह, पांचवां वर्ग शालिवर्ग की तरह, छठा वर्ग ताल-तमाल वर्ग की तरह है। सिर्फ इतनी विशेषता है कि फल की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक धनुष की है।

६. आलू आदि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक तेईसवां)

आलू य लोही अवए पाढा तह, मासवण्णी वल्ली य।
पंचेते दस वग्गा, पण्णासं होंति उद्देसा ।। १ ।।

नोट- १२ वें शतक के ८० उद्देशे, २२ वें के ६ उद्देशे, २३ वें के ५० उद्देशे, कुल १९० उद्देशों पर ३२-३२ द्वार उत्पल कमल की तरह कह देना चाहिए।

अर्थ – तेईसवें शतक में पांच वर्ग हैं, उनके ५० उद्देशे हैं। पहला वर्ग 'आलू' आदि का है। दूसरा वर्ग लोही आदि अनन्तकायिक वनस्पति का है। तीसरा वर्ग अवक आदि वनस्पति का है। चौथा वर्ग पाठा आदि वनस्पति का है। पांचवां वर्ग माषपर्णी आदि वनस्पति का है।

पहले वर्ग के दस उद्देशे, तीसरे वर्ग के दस उद्देशे और पांचवें वर्ग के दस उद्देशे, बांस वर्ग की तरह कह देने चाहिए। सिर्फ इतनी विशेषता है कि परिमाण में १, २, ३ यावत् अनन्ता कहना चाहिए। अपहरण में अनन्ती अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी कहनी चाहिए। स्थिति जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की कहनी चाहिए। इतनी विशेषता है कि तीसरे वर्ग की अवगाहना ताल-तमाल की तरह कह देना चाहिए। दूसरा वर्ग भी आलू की तरह कह देना चाहिए, सिर्फ इतनी विशेषता है कि अवगाहना ताल-तमाल की तरह कहनी चाहिए। चौथा वर्ग भी आलू की तरह कह देना चाहिए, सिर्फ इतनी विशेषता है कि अवगाहना वल्ली (बेल) की तरह कह देनी चाहिए।

७. छप्पन अंतरद्वीपों का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक नौ, उद्देशा ३ से ३० और ७ से ३४)

श्री भगवतीसूत्र के नवमें शतक के तीसरे उद्देशे से तीसवें उद्देशे तक २८ उद्देशों में दक्षिणदिशा के २८ अन्तरद्वीपों का वर्णन है। इसी तरह दसवें शतक के सातवें उद्देशे से चौतीसवें उद्देशे तक २८ उद्देशों में उत्तरदिशा के २८ अन्तरद्वीपों का वर्णन है।

इन अन्तरद्वीपों में अन्तरद्वीपों के नाम वाले युगलिया मनुष्य निवास करते हैं । २८ अन्तरद्वीपों के नाम इस प्रकार हैं–

संख्या	ईशानकोण	आग्नेयकोण	नैऋत्यकोण	वायव्यकोण
१	एकोरुक	आभासिक	वैषाणिक	नांगोलिक
२	हयकर्ण	गजकर्ण	गोकर्ण	शष्कुलीकर्ण
३	आदर्शमुख	मेण्ढमुख	अयोमुख	गोमुख
४	अश्वमुख	हस्तिमुख	सिंहमुख	व्याघ्रमुख
५	अश्वकर्ण	हरिकर्ण	अकर्ण	कर्णप्रावरण
६	उल्कामुख	मेघमुख	विद्युतमुख	विद्युद्दन्त
७	घनदन्त	लष्टदन्त	गूढदन्त	शुद्धदन्त

इन अन्तरद्वीपों का कुछ वर्णन इस यंत्र से जानना चाहिए –

चौक	जगती द्वीपान्तर योजन	लम्बाई चौड़ाई योजन	परिधि योजन	कल्प वृक्ष	मनुष्य की अवगाहना धनुष	पृष्ठ करण्ड (पसल्यां)	बालक की प्रति पालना के दिन	जल से ऊंचा द्वीप योजन
१	३००	३००	९४९	१०	८००	६४	७९	आधा योजन
२	४००	४००	१२६५	१०	८००	६४	७९	आधा योजन
३	५००	५००	१५८१	१०	८००	६४	७९	आधा योजन
४	६००	६००	१८९७	१०	८००	६४	७९	आधा योजन
५	७००	७००	२२१३	१०	८००	६४	७९	आधा योजन
६	८००	८००	२५२९	१०	८००	६४	७९	आधा योजन
७	९००	९००	२८४५	१०	८००	६४	७९	आधा योजन

जम्बूद्वीप में दक्षिण दिशा में चुल्लहिमवान् पर्वत है। पूर्व और पश्चिम की तरह जहां लवणसमुद्र के जल से इस पर्वत का स्पर्श होता है वहां इस पर्वत से दोनों तरफ चारों विदिशाओं में गजदन्ताकार दो-दो * दाढाएं निकली हैं। एक एक दाढा पर सात-सात अन्तरद्वीप हैं । इस तरह चार दाढाओं पर २८ अन्तरद्वीप हैं।

पूर्व दिशा में ईशानकोण में जो दाढा निकली है उस पर सात अन्तरद्वीप इस तरह हैं – (१) लवणसमुद्र में ३०० योजन जाने पर एकोरुक (एगोरुय) नाम का पहला अन्तरद्वीप आता है। यह अन्तरद्वीप जम्बूद्वीप की जगती से ३०० योजन दूर है। इसका विस्तार ३०० योजन है और परिधि ९४९ योजन से कुछ कम है। (२) एकोरुक द्वीप से ४०० योजन जाने पर हयकर्ण नाम का दूसरा अन्तरद्वीप आता है। हयकर्ण अन्तरद्वीप जम्बूद्वीप की जगती से ४०० योजन दूर है। इसका विस्तार ४०० योजन है। इसकी परिधि १२६५ योजन से कुछ कम है। (३) हयकर्णद्वीप से ५०० योजन जाने पर आदर्शमुख नाम का तीसरा अन्तरद्वीप आता है। यह जगती से ५०० योजन दूर है, इसका ५०० योजन का विस्तार है और १५८१ योजन की परिधि है। (४) आदर्शमुख द्वीप से ६०० योजन जाने पर अश्वमुख नाम का चौथा अन्तरद्वीप आता है। इसका विस्तार ६०० योजन है और परिधि १८९७ योजन की है। जगती से ६०० योजन दूर है। (५) अश्वमुख द्वीप से ७०० योजन

** वास्तव में ये दाढाएं नहीं हैं, दाढाओं के आकार से द्वीप रहा हुआ है।*

आगे जाने पर अश्वकर्ण नाम का पांचवां अन्तरद्वीप आता है। वह जगती से ७०० योजन दूर है। इसका विस्तार ७०० योजन है और परिधि २२१३ योजन है। (६) अश्वकर्ण द्वीप से ८०० योजन जाने पर उल्कामुख नाम का छठा अन्तरद्वीप आता है। वह जगती से ८०० योजन दूर है। इसका विस्तार ८०० योजन है और परिधि २५२९ योजन है। (७) उल्कामुख द्वीप से ९०० योजन जाने पर घनदन्त नाम का सातवां अन्तरद्वीप आता है। वह जगती से ९०० योजन दूर है। इसका विस्तार ९०० योजन है और परिधि २८४५ योजन है।

इन सातों अन्तरद्वीपों में सौ सौ योजन का विस्तार बढ़ता गया है। जिस अन्तरद्वीप का जितना जितना विस्तार है, वह जगती से उतना ही दूर है।

जिस तरह ईशानकोण की दाढा पर ७ अन्तरद्वीप हैं उसी तरह आग्नेयकोण, नैऋत्यकोण और वायव्यकोण की दाढाओं पर भी सात - सात अन्तरद्वीप हैं। इस तरह चुल्लहिमवान् पर्वत की चारों दाढाओं पर २८ अन्तरद्वीप है। चुल्लहिमवान् पर्वत की तरह शिखरी पर्वत पर भी २८ अन्तरद्वीप हैं। ये सब मिला कर ५६ अन्तरद्वीप हैं। चारों तरफ पद्मवरवेदिका से सुशोभित हैं और पद्मवरवेदिका वनखण्डों से सुशोभित है।

इन अन्तरद्वीपों में अन्तरद्वीप के नाम वाले ही जुगलिया मनुष्य रहते हैं। इनके वज्रऋषभनाराचसंहनन और समचतुरस्र-संस्थान होता है। इनकी अवगाहना ८०० धनुष और आयु पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है। ६४ पसलियां होती

है। जब इनकी आयु ६ महीना बाकी रहती है तब ये एक युगल सन्तान को जन्म देते हैं और ७९ दिन सन्तान का पालन करते हैं। ये अल्पकषायी, सरल और संतोषी होते हैं। यहां की आयु भोग कर देवपने उत्पन्न होते हैं।

अन्तरद्वीपों में असि, मसि, कृषि का व्यापार नहीं होता है। + मतंगा, भृङ्गा , तुडियंगा, दीवंगा, जोइयंगा, चित्तंगा, चित्तरसा, मणियंगा, गेहागारा, अणियणा, ये दस जाति के कल्पवृक्ष वीससा (विश्रसा-स्वाभाविक) परिणम्या इच्छा पूरी करते हैं। वहां राजा राणी चाकर ठाकर मेला महोत्सव विवाह सगाई रथ पालकी डांस मच्छर संग्राम रोग शोक कांटा खीला कंकर अशुचि दुर्गन्ध सुकाल दुष्काल वृष्टि आदि बातें नहीं होती हैं। हाथी घोड़ा होते हैं किन्तु उन पर कोई असवारी नहीं करता। गाय भैंसे होती हैं किन्तु युगलियों के काम में नहीं आती हैं। सिंह सर्पादि हैं किन्तु वे किसी को दुःख नहीं देते, उनको किसी भी वस्तु पर गृद्धिपणा नहीं होता। युगलिये ३२ लक्षणों युक्त होते हैं। एकान्तरे (एक दिन के अन्तर से) आहार करते हैं। छींक, उबासी लेते ही काल कर जाते हैं।

+ अकर्म में होने वाले युगलियों के लिए जो उपभोगरूप हों अर्थात् उनकी आवश्यकताओं की पूरी करने वाले वृक्ष कल्पवृक्ष कहलाते हैं। उनके दस भेद हैं–

१ मतंगा- शरीर के लिए पौष्टिक रस देने वाले।

२ भृंगा- (भृतांग)- पात्र आदि देने वाले।

३ तुडियगा (त्रुटितांगा)- बाजे (वादित्र) देने वाले।

४ दीवंगा (दीपांगा)- दीपक का काम देने वाले।

काल करके भवनपति वाणव्यन्तर देवों में उत्पन्न होते हैं *।

८. असोच्चा केवली का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक नौ, उद्देशा इकतीस)

केवली के श्रावक, + केवली की श्राविका, केवली के उपासक, केवली की उपासिका, केवली के पाक्षिक यानी स्वयंबुद्ध,

---

५ जोइयंगा (ज्योतिरंगा)-प्रकाश को ज्योति कहते हैं। सूर्य के समान प्रकाश देने वाले। अग्नि को भी ज्योति कहते हैं। अग्नि का काम देने वाले।
६ चित्तंगा (चित्रांगा)- विविध प्रकार के फूल देने वाले।
७ चित्तरसा (चित्ररसा)- विविध प्रकार के भोजन देने वाले।
८ मणियंगा (मण्यंगा)- आभूषण देने वाले।
९ गेहागारा (गेहाकारा)- मकान के आकार परिणत हो जाने वाले अर्थात् मकान की तरह आश्रय देने वाले।
१० अणियणा (अनग्ना)- वस्त्र देने वाले। इन दस प्रकार के कल्पवृक्षों से युगलियों की आवश्यकताओं पूरी हो जाती है। अतः ये कल्पवृक्ष कहलाते हैं।
** अन्तरद्वीपों का और युगलियों का विशेष विस्तार पूर्वक वर्णन श्री जीवाभिगमसूत्र में है।*
+ जिसने स्वयं केवलज्ञानी से पूछा है अथवा उनके समीप सुना है वह केवली के श्रावक। केवलज्ञानी की उपासना करते हुए, केवली द्वारा दूसरे को कहे जाने पर जिसने सुना हो वह केवली के उपासक। केवली के पाक्षिक से आशय स्वयंबुद्ध है।

स्वयंबुद्ध के श्रावक, स्वयंबुद्ध की श्राविका, स्वयंबुद्ध के उपासक, स्वयंबुद्ध की उपासिका से सुने बिना केवलीप्ररूपित श्रुतधर्म का लाभ प्राप्त करता है ? हे गौतम ! कोई जीव केवली यावत् स्वयंबुद्ध की उपासिका से सुने बिना ही केवलीप्ररूपित श्रुतधर्म का लाभ प्राप्त करता है और कोई जीव नहीं करता। अहो भगवन् ! आप ऐसा किस कारण से फरमाते हैं ? हे गौतम ! जिस जीव ने ज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम किया है, वह केवली यावत् स्वयंबुद्ध की उपासिका से सुने बिना भी केवलीप्ररूपित श्रुतधर्म का लाभ प्राप्त करता है और जिस जीव ने ज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम नहीं किया है, वह श्रुतधर्म का लाभ प्राप्त नहीं करता। हे गौतम ! इस कारण मैंने ऐसा कहा है।

२ - अहो भगवन् ! क्या कोई जीव केवली यावत् स्वयंबुद्ध की उपासिका से सुने बिना शुद्ध सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर सकता है ? हे गौतम ! केवली यावत् स्वयंबुद्ध की उपासिका से सुने बिना भी कोई जीव शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है और कोई जीव इनसे सुने बिना शुद्ध सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं कर सकता। हे भगवन् ! आप ऐसा किस कारण से फरमाते हैं ? हे गौतम ! जिस जीव ने दर्शनावरणीय यानी दर्शनमोहनीयकर्म का क्षयोपशम किया है वह केवली यावत् स्वयंबुद्ध की उपासिका से सुने बिना भी शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है और जिस जीव ने दर्शनावरणीय यानी दर्शनमोहनीयकर्म का क्षयोपशम नहीं किया है, वह शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं करता। हे गौतम ! इस कारण मैंने ऐसा कहा है।

३. - अहो भगवन् ! क्या कोई जीव, केवली यावत् स्वयं-बुद्ध की उपासिका से सुने बिना, गृहवास छोड़कर मुंड होकर शुद्ध अनगारपन की प्रव्रज्या स्वीकार करता है ? हे गौतम ! कोई जीव केवली यावत् स्वयंबुद्ध से सुने बिना भी गृहवास छोड़कर मुंड होकर शुद्ध अनगारपन की प्रव्रज्या स्वीकार करता है और कोई जीव नहीं करता है। हे भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से फरमाते हैं ? हे गौतम ! जिस जीव ने धर्मान्तरायकर्म यानी वीर्यान्तराय तथा चारित्रमोहनीय का क्षयोपशम किया है, वह केवली यावत् स्वयंबुद्ध की उपासिका से सुने बिना भी गृहवास को छोड़कर मुंड होकर शुद्ध अनगारपन की प्रव्रज्या को स्वीकार करता है और जिस जीव ने वीर्यान्तराय तथा चारित्रमोहनीयकर्म का क्षयोपशम नहीं किया है वह केवली यावत् स्वयंबुद्ध की उपासिका से सुने बिना गृहवास छोड़कर मुंड होकर शुद्ध अनगारपन की प्रव्रज्या स्वीकार नहीं करता । हे गौतम ! इस कारण मैंने यह कहा है।

४ - हे भगवान् ! क्या कोई जीव केवली यावत् स्वयंबुद्ध की उपासिका से सुने बिना शुद्ध ब्रह्मचर्यवास धारण करता है ? हे गौतम ! कोई जीव केवली यावत् स्वयंबुद्ध की उपासिका से सुने बिना भी शुद्ध ब्रह्मचर्यवास धारण करता है और कोई जीव इन से सुने बिना शुद्ध ब्रह्मचर्यवास धारण नहीं करता। हे भगवन् ! आप ऐसा किस कारण से फरमाते हैं ? हे गौतम ! जिस जीव ने चारित्रावरणीय कर्मों का क्षयोपशम किया है वह केवली यावत् स्वयंबुद्ध की उपासिका से सुने बिना भी शुद्ध ब्रह्मचर्यवास धारण करता है। जिस जीव ने चारित्रावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं

किया है वह शुद्ध ब्रह्मचर्यवास धारण नहीं करता। इस कारण हे
गौतम ! मैंने ऐसा कहा है।

५ - अहो भगवन् ! इन दस के पास केवलीप्ररूपित धर्म
को सुने बिना क्या कोई शुद्ध संयम के द्वारा संयमयतना * करता
है ? हे गौतम ! कोई संयमयतना करता है और कोई नहीं करता।
अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जिस जीव के
यतनावरणीय ÷ कर्म का क्षयोपशम हुआ हो वह शुद्ध संयम के
द्वारा संयमयतना करता है और जिस जीव के यतनावरणीय कर्म का
क्षयोपशम नहीं हुआ हो वह शुद्ध संयम के द्वारा संयमयतना नहीं
करता।

६ - अहो भगवन् ! इन दस के पास केवलीप्ररूपित
धर्म को सुने बिना क्या शुद्ध संवर के द्वारा आश्रवों को रोकता है ?
हे गौतम ! कोई रोकता है और कोई नहीं रोकता। अहो भगवन् !
इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जिस जीव के अध्यवसानावरणीय
(भावचारित्रावरणीय) कर्म का क्षयोपशम हुआ हो वह शुद्ध संवर के
द्वारा आश्रवों को रोकता है और जिस जीव के अध्यवसानावरणीय-
कर्म का क्षयोपशम नहीं हुआ हो वह शुद्ध संवर द्वारा आश्रव को
नहीं रोकता।

---

* संयम (चारित्र) को स्वीकार करके उसके दोष को त्याग करने
का प्रयत्न विशेष करना संयमयतना कहलाती है।

÷ चारित्र के विषय में प्रवृत्ति करना यतना कहलाती है। उसको
आच्छादित करने वाला कर्म यतनावरणीय (वीर्यान्तराय) कहलात
है। चारित्रावरणीय और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम क
यतनावरणीयकर्म का क्षयोपशम कहते हैं।

७ - अहो भगवन् ! इन दस के पास केवलीप्ररूपित धर्म को सुने बिना क्या कोई जीव शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान (मतिज्ञान) उत्पन्न करता है ? हे गौतम ! कोई करता है और कोई नहीं करता। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जिस जीव के आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम हुआ हो वह शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान उत्पन्न करता है और जिस जीव के आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम नहीं हुआ हो वह आभिनिबोधिकज्ञान उत्पन्न नहीं करता।

८ - १० - इसी तरह श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान का भी कह देना। किन्तु श्रुतज्ञान में श्रुतज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम कहना। अवधिज्ञान में अवधिज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम कहना और मन:पर्ययज्ञान में मन:पर्ययज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम कहना।

११ - अहो भगवन् ! इन दस के पास केवलीप्ररूपित धर्म को सुने बिना क्या कोई जीव केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है ? हे गौतम ! कोई जीव कर सकता है और कोई नहीं कर सकता। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जिस जीव के केवलज्ञानावरणीयकर्म का क्षय हुआ हो वह केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है और जिस जीव के केवलज्ञानावरणीयकर्म का क्षय नहीं हुआ हो वह केवलज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकता है।

९. असोच्चा केवली का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक नौ, उद्देशा इकतीस)

१ - अहो भगवन् केवली, केवली के श्रावक, श्राविका, केवली के उपासक, उपासिका, केवली पाक्षिक (स्वयंबुद्ध), केवली पाक्षिक के श्रावक, श्राविका, उपासक, उपासिका, इन दस के पास सुने बिना क्या किसी जीव को केवलीप्ररूपित धर्म का बोध यावत् * केवलज्ञान होता है ? हे गौतम ! किसी जीव को होता है और किसी को नहीं। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जिस जीव के ज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम हुआ हो यावत् केवलज्ञानावरणीयकर्म का क्षय हुआ हो उसको केवलीप्ररूपित धर्म का बोध यावत् केवलज्ञान होता है और जिस जीव के ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नहीं हुआ हो यावत् केवलज्ञानावरणीयकर्म का क्षय नहीं हुआ हो तो उसको केवलीप्ररूपित धर्म का बोध यावत् केवलज्ञान नहीं होता है।

२ - अहो भगवन् ! उस जीव को केवलज्ञान किस तरह उत्पन्न होता है ?

हे गौतम ! कोई बाल तपस्वी निरन्तर बेले बेले पारणा करे, दोनों हाथ ऊँचा करके सूर्य के सामने आतापना लेवे, उसे प्रकृति की भद्रता से, प्रकृति की उपशान्तता से, प्रकृति (स्वभाव) से

---

* जिस तरह पहले के 'असोच्चा केवली' के थोकड़े में कहा है उसी तरह यहां भी कह देना अर्थात् धर्मश्रवण (बोध) से लेकर केवलज्ञान उत्पन्न होने तक सारे बोल यहां भी कह देना चाहिये।

क्रोध-मान-माया-लोभ पतले होने से, प्रकृति की कोमलता और नम्रता से, कामभोगों में आसक्ति न होने से, भद्रता और विनीतता से किसी दिन शुभ अध्यवसाय से, शुभ परिणामों से, विशुद्ध लेश्या से, विभंगज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से, ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा करते हुए विभंगज्ञान पैदा होता है, जिससे जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग को जानता देखता है, उत्कृष्ट असंख्यात हजार योजन जानता देखता है, वह जीवों को जानता है, अजीवों को जानता है, पाखण्डी, आरम्भ वाले, परिग्रह वाले संक्लेश को प्राप्त हुए जीवों को जानता है और विशुद्ध जीवों को भी जानता है। इसके बाद वह समकित को प्राप्त करता है। फिर श्रमणधर्म पर रुचि करता है, रुचि करके चारित्र को अंगीकार करता है, फिर लिंग स्वीकार करता है। मिथ्यात्व के परिणाम घटते, घटते और सम्यग्दर्शन के परिणाम बढ़ते, बढ़ते वह विभंगज्ञान सम्यक्त्व युक्त होकर अवधिज्ञानपणे परिणमता है।

३ - अहो भगवन् ! वह अवधिज्ञानी जीव कितनी लेश्याओं में होते हैं ? हे गौतम ! तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या, इन तीन विशुद्ध लेश्याओं में होते हैं।

४ - अहो भगवन् ! वे अवधिज्ञानी जीव कितने ज्ञानों में होते हैं ? हे गौतम ! मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान, इन तीनों ज्ञान में होते हैं।

५ - अहो भगवन् ! वे अवधिज्ञानी जीव सयोगी होते हैं या अयोगी होते हैं ? हे गौतम ! सयोगी होते हैं, अयोगी नहीं होते। उनके मन, वचन और काया ये तीनों योग होते हैं।

६ - अहो भगवन् ! वे अवधिज्ञानी साकार (ज्ञान) उपयोग वाले होते हैं या अनाकार (दर्शन) उपयोग वाले होते हैं ? हे गौतम ! वे साकार उपयोग वाले भी होते हैं और अनाकार उपयोग वाले भी होते हैं।

७ - अहो भगवन् ! वे अवधिज्ञानी कौन से संहनन में होते हैं ? हे गौतम ! वे वज्रऋषभनाराचसंहनन में होते हैं।

८ - अहो भगवन् ! वे अवधिज्ञानी किस संस्थान में होते हैं ? हे गौतम ! वे छह संस्थानों में से किसी एक संस्थान में होते हैं।

९ - अहो भगवन् ! वे अवधिज्ञानी कितनी ऊंचाई वाले होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य सात हाथ, उत्कृष्ट ५०० धनुष की ऊँचाई वाले होते हैं ।

१० - अहो भगवन् ! वे कितनी आयुष्य वाले होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य आठ वर्ष से कुछ अधिक और उत्कृष्ट करोड़ पूर्व आयुष्य वाले होते हैं।

११ - अहो भगवन् ! वे वेदसहित होते हैं या वेदरहित होते हैं ? हे गौतम ! वे वेदसहित होते हैं, वेदरहित नहीं होते हैं।

१२ - अहो भगवन् ! वे वेदसहित होते हैं तो क्या स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, पुरुषनपुंसकवेदी * होते हैं ? हे गौतम ! वे स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी नहीं होते किन्तु पुरुषवेदी या पुरुषनपुंसकवेदी होते हैं।

---

* लिंग का छेद करने से जो नपुंसक बना है अर्थात् जो कृत्रिम नपुंसक है उसे पुरुषनपुंसक कहते हैं।

१३ - अहो भगवन्! वे अवधिज्ञानी सकषायी होते हैं या अकषायी होते हैं ? हे गौतम! वे सकषायी होते हैं, अकषायी नहीं होते।

१४ - अहो भगवन्! वे सकषायी होते हैं तो उनमें कितनी कषाय होती है ? हे गौतम! उनमें संज्वलन के क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय होती हैं।

१५ - अहो भगवन्! उनके कितने अध्यवसाय होते हैं ? हे गौतम! उनके असंख्याता अध्यवसाय होते हैं।

१६ - अहो भगवन्! उनके अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं या अप्रशस्त ? हे गौतम! उनके अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं, अप्रशस्त नहीं।

फिर बढ़ते हुए प्रशस्त अध्यवसायों से वे नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के अनन्त भवों से अपनी आत्मा को मुक्त करते हैं। क्रमशः अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी, संज्वलन के क्रोध मान माया लोभ का क्षय करते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय और मोहनीय का क्षय करते हैं, जिससे उनको अनन्त, अनुत्तर (प्रधान), व्याघातरहित, आवरणरहित, सर्वपदार्थों को ग्रहण करने वाला, प्रतिपूर्ण, श्रेष्ठ केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न होता है।

१७ - अहो भगवन्! क्या वे केवली भगवान् केवली-प्ररूपित धर्म का उपदेश देते हैं यावत् प्ररूपण करते हैं ? हे गौतम! णो इणट्ठे समट्ठे - वे केवली भगवान् धर्म का उपदेश नहीं देते

यावत् प्ररूपण नहीं करते किन्तु * एक न्याय (उदाहरण) अथवा एक प्रश्न उत्तर के सिवाय वे धर्म का उपदेश नहीं देते।

१८ - अहो भगवन् ! क्या वे केवली भगवान् किसी को प्रव्रज्या देते हैं, मुण्डित करते हैं ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे - वे केवली भगवान् किसी को प्रव्रज्या नहीं देते, मुण्डित नहीं करते परन्तु 'अमुक के पास दीक्षा लो' ऐसा उपदेश करते हैं (दूसरों के पास दीक्षा लेने के लिए कहते हैं)।

१९ - अहो भगवन् ! क्या वे केवली भगवान् उसी भव में सिद्ध बुद्ध मुक्त होकर सब दुःखों का अन्त करते हैं ? हां, गौतम ! उसी भव में सिद्ध बुद्ध मुक्त होकर सब दुःखों का अन्त करते हैं।

२० - अहो भगवन् ! वे केवली भगवान् क्या ऊर्ध्वलोक में होते हैं या अधोलोक में होते हैं या तिर्च्छालोक में होते हैं ? हे गौतम ! वे केवली भगवान् ऊर्ध्वलोक में भी होते हैं, अधोलोक में भी होते हैं और तिर्च्छालोक में भी होते हैं। ऊर्ध्वलोक में होते हैं तो सद्दावाई वियडावाई, गन्धावाई और माल्यवन्त नामक वृत्त (गोल) वैताढ्य पर्वत पर होते हैं, संहरण की अपेक्षा मेरु पर्वत के सोमनसवन और पाण्डुकवन में होते हैं। अधोलोक में होते हैं तो अधोलोकग्रामादि विजय में या गुफा में होते हैं, संहरण की अपेक्षा पाताल में तथा भवनपतियों के भवनों में होते हैं। तिर्च्छालोक में

* प्राचीन धारणा इस प्रकार की है कि असोच्चा केवली आयुष्य कम होने से वेष नहीं पलटते हैं, उपदेश भी नहीं देते हैं और शिष्य भी नहीं बनाते हैं। यदि आयुष्य लम्बा हो तो वेष पलट लेते हैं और पलटने के बाद उपदेश भी देते हैं और दीक्षा देकर शिष्य भी बनाते हैं।

होते हैं तो पन्द्रह कर्मभूमि में होते हैं, संहरण की अपेक्षा अढाई द्वीप समुद्रों के एक भाग में होते हैं।

२१ - अहो भगवन् ! वे केवली भगवान् एक समय में कितने होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य १, २, ३, उत्कृष्ट १० होते हैं।

१०. सोच्चा केवली का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र शतक नौ, उद्देशा इकतीस)

१ - अहो भगवन् ! क्या केवली, केवली के श्रावक श्राविका उपासक उपासिका, केवली पाक्षिक (स्वयंबुद्ध), केवली पाक्षिक के श्रावक श्राविका उपासक उपासिका, इन दस के पास केवली प्ररूपित धर्म सुन कर किसी जीव को धर्म का बोध होता है यावत् केवलज्ञान उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! किसी जीव को होता है और किसी जीव को नहीं होता है। यह सारा वर्णन ११ ही बोल 'असोच्चा' के समान कह देना किन्तु यहां पर 'सोच्चा' (सुनकर) ऐसा कहना। जिस जीव ने ज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम किया है उसको धर्म का बोध होता है यावत् जिस जीव ने केवलज्ञानावरणीयकर्म का क्षय किया है, उसको केवलज्ञान होता है।

कोई साधु निरन्तर तेले तेले पारणा करता हुआ आत्मा को भावित करता हुआ विचरता है। उसको प्रकृति की भद्रता, विनीतता आदि गुणों से यावत् अवधिज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाता है। वह उस अवधिज्ञान के द्वारा

जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग को जानता देखता है, उत्कृष्ट अलोक में लोक प्रमाण असंख्यात खण्डों को जानता देखता है।

२ - अहो भगवन् ! वे (अवधिज्ञानी) जीव कितनी लेश्याओं में होते हैं ? हे गौतम ! * कृष्ण यावत् शुक्ल छह ही लेश्या में होते हैं।

३ - अहो भगवन् ! वे अवधिज्ञानी कितने ज्ञानों में होते हैं ? हे गौतम ! मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, इन तीनों ज्ञानों में होते हैं अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान इन चार ज्ञानों में होते हैं।

४ - अहो भगवन् ! वे अवधिज्ञानी सयोगी होते हैं या अयोगी होते हैं ? हे गौतम ! वे सयोगी होते हैं, अयोगी नहीं होते। जिस तरह योग, उपयोग, संहनन, संस्थान, ऊंचाई और आयुष्य 'असोच्चा' में कहा, उसी तरह यहां 'सोच्चा' में भी कह देना चाहिए।

५ - अहो भगवन् ! वे अवधिज्ञानी सवेदी होते हैं या अवेदी होते हैं ? हे गौतम ! वे सवेदी होते हैं अथवा अवेदी होते हैं। सवेदी होते हैं तो स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, पुरुषनपुंसकवेदी होते हैं। यदि अवेदी होते हैं तो क्षीणवेदी होते हैं, उपशान्तवेदी नहीं होते।

६ - अहो भगवन् ! वे (अवधिज्ञानी) सकषायी भी होते हैं या अकषायी होते हैं ? हे गौतम ! सकषायी भी होते हैं,

---

* यहां तो छह लेश्या कही गई हैं, वे द्रव्यलेश्या की अपेक्षा समझना चाहिए। भावलेश्या की अपेक्षा तीन प्रशस्त भावलेश्या ही होती हैं, क्योंकि अवधिज्ञान प्रशस्त भावलेश्याओं में ही होता है।

अकषायी भी होते हैं। सकषायी होते हैं तो संज्वलन का चोक होता है, त्रिक (मान, माया, लोभ) होता है, द्विक (माया, लोभ) होता है, एक (लोभ) होता है। यदि अकषायी होते हैं तो क्षीणकषायी होते हैं, उपशान्तकषायी नहीं होते।

७ - अहो भगवन् ! उन अवधिज्ञानी के कितने अध्यवसाय होते हैं ? हे गौतम ! उनके असंख्यात प्रशस्त अध्यवसाय होते हैं। उन प्रशस्त अध्यवसाय के बढ़ने से यावत् केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हो जाते हैं।

८ - अहो भगवन् ! क्या वे 'सोच्चा' केवली भगवान् केवलीप्ररूपित धर्म का उपदेश करते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं ? हां गौतम ! वे केवलीप्ररूपित धर्म का उपदेश करते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं।

९ - अहो भगवन् ! क्या केवली भगवान् किसी को प्रव्रज्या (दीक्षा) देते हैं, मुण्डित करते हैं ? हां गौतम ! प्रव्रज्या देते हैं, मुण्डित करते हैं।

१० - अहो भगवन् ! क्या उन केवली भगवान् के शिष्य, प्रशिष्य भी किसी को प्रव्रज्या देते हैं, मुण्डित करते हैं ? हां गौतम ! उनके शिष्य, प्रशिष्य भी प्रव्रज्या देते हैं, मुण्डित करते हैं।

११ - अहो भगवन् ! क्या वे केवली भगवान् उसी भव में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होकर सब दु:खों का अन्त करते हैं। हां गौतम ! सिद्ध यावत् सब दु:खों का अन्त करते हैं।

१२ - अहो भगवन् ! क्या उन केवली भगवान् के शिष्य, प्रशिष्य भी सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होकर सब दु:खों का अन्त करते हैं ?

हां गौतम ! वे भी सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होकर सब दुःखों का अन्त करते हैं।

१३ – अहो भगवन् ! वे केवली भगवान् ऊर्ध्वलोक में होते हैं या अधोलोक में होते हैं या तिर्च्छालोक में होते हैं ? हे गौतम ! वे ऊर्ध्वलोक में भी होते हैं, अधोलोक में भी होते हैं, तिर्च्छालोक में भी होते हैं, यह सारा वर्णन 'असोच्चा' केवली की माफिक कह देना चाहिए।

१४ – अहो भगवान् ! वे केवली भगवान् ! एक समय में कितने सिद्ध होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य एक दो तीन, उत्कृष्ट एक सौ आठ सिद्ध होते हैं।

११. इरियावही बंध का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक आठवां, उद्देशा आठवां)

१. अहो भगवन् ! बन्ध कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! बन्ध दो प्रकार का है – इरियावही (ईर्यापथिक) बन्ध और साम्परायिक बन्ध।

२. अहो भगवन् ! क्या इरियावही बन्ध नारकी, तिर्यंच, तिर्यंचस्त्री, मनुष्य, मनुष्यस्त्री, देवता, देवांगना बान्धती है ? हे गौतम ! * पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा मनुष्य मनुष्यणी बांधती है, बाकी

---

* जिसने पहले ईर्यापथिककर्म का बंध किया हो, उसको पूर्वप्रतिपन्न कहते हैं। अर्थात् ईर्यापथिककर्म बंध के दूसरे तीसरे आदि समय में वर्तमान हो ऐसे बहुत पुरुष और स्त्रियां होती हैं, इसके लिए इसका

५ नहीं बांधते हैं। + प्रतिपद्यमान की अपेक्षा मनुष्य, मनुष्यणी बांधते हैं, उसके ८ भांगे होते हैं– असंजोगी ४, दो संजोगी ४। (१) मनुष्य एक, (२) मनुष्यणी एक, (३) मनुष्य बहुत, (४) मनुष्यणी बहुत, (५) मनुष्य एक मनुष्यणी एक, (६) मनुष्य एक मनुष्यणी बहुत, (७) मनुष्य बहुत, मनुष्यणी एक, (८) मनुष्य बहुत, मनुष्यणी बहुत।

३– अहो भगवन् ! ईर्यापथिक कर्म को क्या स्त्री बांधती है, या पुरुष बांधता है, या नपुंसक बांधता है, या बहुत स्त्रियां बांधती हैं, या बहुत पुरुष बांधते हैं, या बहुत नपुंसक बांधते हैं, या नोस्त्री–नोपुरुष–नोनपुंसक बांधता है ? हे गौतम ! स्त्री नहीं बांधती, पुरुष नहीं बांधता, नपुंसक नहीं बांधता, बहुत स्त्रियां नहीं बांधती, बहुत पुरुष नहीं बांधते, बहुत नपुंसक नहीं बांधते, नोस्त्री–नोपुरुष–नोनपुंसक बांधता है। पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा वेद–रहित (अवेदी) बहुत जीव बांधते हैं। वर्तमान प्रतिपन्न (प्रतिपद्यमान) की अपेक्षा वेदरहित एक जीव तथा बहुत जीव बांधते हैं। इसके (प्रतिपद्यमान के) २६ भांगे होते हैं– असंजोगी ६, दो संजोगी १२,

---

भांगा नहीं बनता, क्योंकि दोनों प्रकार के केवली (पुरुष और स्त्री केवली) सदा होते हैं। ईर्यापथिककर्म के बंधक वीतराग-उपशांत, क्षीणमोह और सयोगीकेवली गुणस्थान में रहने वाले जीव होते हैं। + जो जीव ईर्यापथिकबंध के प्रथम समय में वर्तमान होते हैं, उनको प्रतिपद्यमान कहते हैं। इनका विरह हो सकता है। इसलिए इनके असंजोगी ४ और द्विसंजोगी ४, ये ८ भांगे होते हैं।

तीन संजोगी ८। असंजोगी भांगा ६ इस प्रकार हैं—* (१) स्त्रीपच्छाकडा एक, (२) पुरुषपच्छाकडा एक, (३) नपुंसकपच्छाकडा एक, (४) पुरुषपच्छाकडा बहुत, (५) स्त्रीपच्छाकडा बहुत, (६) नपुंसकपच्छाकडा बहुत। दो संजोगी १२- (१) स्त्रीपच्छाकडा एक पुरुषपच्छाकडा एक, (२) स्त्रीपच्छाकडा एक पुरुषपच्छाकडा बहुत, (३) स्त्रीपच्छाकडा बहुत पुरुषपच्छाकडा एक, (४) स्त्रीपच्छाकडा बहुत पुरुषपच्छाकडा बहुत। (५-१२) जिस तरह ४ भांगे स्त्रीपच्छाकडा पुरुषपच्छाकडा के कहे हैं, उसी तरह ४ भांगे स्त्रीपच्छाकडा नपुंसकपच्छाकडा के और ४ भांगे पुरुषपच्छाकडा नपुंसकपच्छाकडा के कह देना चाहिए। तीन संजोगी ८ भांगे—आंक १११, ११३, १३१, १३३, ३११, ३१३, ३३१, ३३३ । जैसे (१) स्त्रीपच्छाकडा एक, पुरुषपच्छाकडा एक, नपुंसकपच्छाकडा एक। इसी तरह शेष ७ भांगे आंक के अनुसार बोल देना चाहिए। जहां १ का आंक है वहां एक कहना चाहिए और जहां ३ का आंक है वहां '...त' कहना चाहिए।

४—अहो भगवन् ! क्या जीव ने इरियावहीबंध (१) बांधा, ...ता है, बांधेगा, (२) बांधा, बांधता है, नहीं बांधेगा, (३) बांधा, ...हीं बांधता है, बांधेगा, (४) बांधा, नहीं बांधता है, नहीं बांधेगा, ...) नहीं बांधा, बांधता है, बांधेगा, (६) नहीं बांधा, बांधता है, ...हीं बांधेगा, (७) नहीं बांधा, नहीं बांधता है, बांधेगा, (८) नहीं

---

* जो जीव गतकाल के स्त्री था, अब वर्तमानकाल में अवेदी हो गया है, उसे स्त्रीपच्छाकडा कहते हैं। इसी तरह पुरुषपच्छाकडा और नपुंसकपच्छाकडा भी जान. लेना चाहिए।

बांधा, नहीं बांधता है, नहीं बांधेगा ? हे गौतम ! एक भव की अपेक्षा भांगा पाये जाते ७, छठा भांगा टला, बहुत भव की अपेक्षा भांगा पाये जाते ८ +। एक भव की अपेक्षा पहला भांगा तेरहवें गुणस्थान में

+ बहुत भव की अपेक्षा-(१) पहला भांगा-बांधा था, बांधता है, बांधेगा, उस जीव में पाया जाता है जिसने गतकाल (पूर्वभव) में उपशमश्रेणी की थी, उसने बांधा था, वर्तमान में उपशमश्रेणी में बांधता है और आगामी भव में श्रेणी करेगा, उसमें बांधेगा।

(२) दूसरा भांगा- बांधा था, बांधता है, नहीं बांधेगा, उस जीव में पाया जाता है जिसने पूर्वभव में उपशमश्रेणी की थी उसमें बांधा था, वर्तमान में क्षपकश्रेणी में बांधता है और फिर मोक्ष चला जायगा, इसलिए आगामी काल में नहीं बांधेगा।

(३) तीसरा भांगा-बांधा था, नहीं बांधता है, बांधेगा, उस जीव में पाया जाता है, जिसने पूर्वभव में उपशमश्रेणी की थी उसने बांधा था। वर्तमान भव में श्रेणी नहीं करता है, इसलिये नहीं बांधता है, आगामी भव में उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी करेगा इसलिये बांधेगा।

(४) चौथा भांगा-बांधा था, नहीं बांधता है, नहीं बांधेगा, उस जीव में पाया जाता है जो वर्तमान में चौदहवें गुणस्थान में है, उसने पूर्वभव में बांधा था, वर्तमान में नहीं बांधता है और आगामी काल में नहीं बांधेगा।

(५) पांचवा भांगा- नहीं बांधा था, बांधता है, बांधेगा, उस जीव में पाया जाता है जिसने पूर्व भव में नहीं बांधा, वर्तमान भव में उपशमश्रेणी में बांधा है, आगामी भव में उपशमश्रेणी या

दो समय बाकी रहते पाया जाता है। दूसरा भांगा तेरहवें गुणस्थान
में एक समय बाकी रहते (अन्तिम समय में) पाया जाता है।
तीसरा भांगा उपशमश्रेणी से गिरे हुये (पडिवाई) में पाया जाता है।
चौथा भांगा चौदहवें गुणस्थान के पहले समय में पाया जाता है।
पांचवां भांगा ग्यारहवें या बारहवें गुणस्थान के पहले समय में पाया
जाता है। छठा भांगा शून्य याने कहीं नहीं पाया जाता है। सातवां
भांगा दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय में पाया जाता है। आठवां
भांगा अभव्य आदि में पाया जाता है।

५-- अहो भगवन् ! क्या जीव इरियावहीबंध (१) अणाइया-
अपज्जवसिया (अनादि-अनन्त) बांधता है, (२) अणाइया-सपज्जवसिया

या क्षपकश्रेणी में बांधेगा।

(६) छठा भांगा- नहीं बांधता था, बांधता है, नहीं
बांधेगा, उस जीव में पाया जाता है जिसने पूर्व भव में नहीं बांधा
था, वर्तमान भव में क्षपकश्रेणी में बांधता है फिर मोक्ष चला जायगा
इसलिए आगामी काल में नहीं बांधेगा।

(७) सातवां भांगा-नहीं बांधा था, नहीं बांधता है, बांधेगा,
उस जीव में पाया जाता है जिसने पूर्वभव में नहीं बांधा था, वर्तमान
भव में नहीं बांधता है, आगामी भव में उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी
में बांधेगा।

(८) आठवां भांगा-नहीं बांधता था, नहीं बांधता है, नहीं
बांधेगा, अभवी जीव में पाया जाता है, क्योंकि उसने पूर्वभव में नहीं
बांधा था, वर्तमान भव में नहीं बांधता है और आगामी भव में नहीं
बांधेगा।

(अनादि-सान्त) बांधता है, (३) साइया-अपज्जवसिया (सादि-अनन्त) बांधता है, (४) साइया-सपज्जवसिया (सादि-सान्त) बांधता है ? हे गौतम ! साइया-सपज्जवसिया बांधता है, बाकी तीन (अणाइया-अपज्जवसिया, अणाइया-सपज्जवसिया, साइया- अपज्जवसिया) नहीं बांधता।

६– अहो भगवन् ! क्या इरियावहीबंध देश से देश बांधता है, देश से सर्व बांधता है, सर्व से देश बांधता है, सर्व से सर्व बांधता है ? हे गौतम ! देश से देश नहीं बांधता, देश से सर्व नहीं बांधता, सर्व से देश नहीं बांधता, किन्तु सर्व से सर्व बांधता है (जीव का आत्मप्रदेश भी सर्व, इरियावहीकर्म भी सर्व)।

१२. सम्परायबंध का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक आठवां, उद्देशा आठवां)

१– अहो भगवन् ! सम्परायकर्म कौन बांधता है ? हे गौतम ! नारकी, तिर्यंच, तिर्यंचणी, मनुष्य, मनुष्यणी, देवता, देवी सम्परायकर्म बांधते हैं ?

२– अहो भगवन् ! सम्परायबन्ध क्या स्त्री बांधती है या पुरुष बांधता है या नपुंसक बांधता है या बहुत स्त्रियां बांधती हैं या बहुत पुरुष बांधते हैं या बहुत नपुंसक बांधते हैं या नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बांधते हैं ? हे गौतम ! स्त्री भी बांधती है, पुरुष भी बांधता है, नपुंसक भी बांधता है, बहुत स्त्रियां भी बांधती हैं, बहुत पुरुष भी बांधते हैं, बहुत नपुंसक भी बांधते हैं। * अवेदी

** यहां एकवचन बहुवचन जो कहा है वह पूछने वाले की अपेक्षा से है, वैसे सभी सकषायी जीव संपरायकर्म बांधते ही हैं। तत्त्व केवलीगम्य।*

एक जीव भी बांधता है बहुत जीव भी बांधते हैं।

३ – अहो भगवन् ! अवेदी बांधते हैं तो स्त्रीपच्छाकड़ा बांधता है या पुरुषपच्छाकड़ा बांधता है या नपुंसकपच्छाकड़ा बांधता है या बहुत स्त्रीपच्छाकड़ा बांधते हैं या बहुत पुरुषपच्छाकड़ा बांधते हैं या बहुत नपुंसकपच्छाकड़ा बांधते हैं ? हे गौतम ! स्त्री-पच्छाकड़ा बांधता है, पुरुषपच्छाकड़ा बांधता है, नपुंसकपच्छाकड़ा बांधता है, बहुत स्त्रीपच्छाकड़ा बांधते हैं, बहुत पुरुषपच्छाकड़ा बांधते हैं, बहुत नपुंसकपच्छाकड़ा बांधते हैं जाव २६ भांगे इरियावही-बंध के माफक कह देना।

४ – अहो भगवन् ! क्या जीव ने सम्परायकर्म (१) बांधा है, बांधता है, बांधेगा ? (२) बांधा है, बांधता है, नहीं बांधेगा ? (३) बांधा है, नहीं बांधता है, बांधेगा ? (४) बांधा है, नहीं बांधता है, नहीं बांधेगा ? हे गौतम ! जीव सम्परायकर्म बांधा है, बांधता है, बांधेगा अभवी जीव की अपेक्षा। (२) बांधा है, बांधता है, नहीं बांधेगा भवी जीव की अपेक्षा। (३) बांधा है, नहीं बांधता है, बांधेगा उपशमश्रेणी की अपेक्षा। (४) बांधा है, नहीं बांधता है, नहीं बांधेगा क्षपकश्रेणी की अपेक्षा।

५ – अहो भगवन् ! क्या सम्परायकर्म साइया-सपज्जवसिया (आदि-अन्तसहित) बांधता है ? (२) साइया-अपज्जवसिया (आदि-सहित-अन्तरहित) बांधता है (३) अणाइया-सपज्जवसिया (अनादि-सान्त) बांधता है ? (४) अणाइया-अपज्जवसिया (अनादि-अनन्त) बांधता है ? हे गौतम ! साइया-अपज्जवसिया (सादि-अनन्त) को छोड़कर बाकी तीन भांगे बांधता है।

६ – अहो भगवन् ! क्या सम्परायबन्ध देश से देश बांधता है ? (२) देश से सर्व बांधता है ? (३) सर्व से देश बांधता है ? (४) सर्व से सर्व बांधता है ? हे गौतम ! सर्व से सर्व बांधता है बाकी तीन भांगे नहीं बांधता।

१३. कर्म और परीषह का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक आठवां, उद्देशा आठवां)

१– अहो भगवन् ! कर्म प्रकृतियां कितनी हैं ? हे गौतम ! कर्म प्रकृतियां आठ हैं– १. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ६. नाम, ७. गोत्र, ८ अन्तराय।

२ – अहो भगवन् ! परीषह कितने हैं ? हे गौतम ! परीषह २२ हैं – * १ क्षुधापरीषह, २ पिवासा (पिपासा) परीषह,

---

** १–क्षुधापरीषह–भूख का परीषह।*
२–पिवासापरीषह– प्यास का परीषह।
३–शीतपरीषह–ठण्ड का परीषह।
४–उष्णपरीषह–गरमी का परीषह।
५–दंशमशकपरीषह–डांस, मच्छर, खटमल आदि का परीषह।
६–अचेलपरीषह–नग्नता का परीषह अथवा प्रमाणोपेत (प्रमाणयुक्त) वस्त्रों का परीषह।
७–अरतिपरीषह–संयम में अरति–अरुचि उत्पन्न होने से आर्तध्यान हो जाता है, उससे होने वाला कष्ट (परीषह) ।

८-स्त्रीपरीषह-स्त्रियों से होने वाला कष्ट।
९-चर्यापरीषह-चलने-फिरने से या विहार में होने वाला कष्ट।
१०-निसीहियापरीषह-स्वाध्याय आदि करने की भूमि में किसी प्रकार का उपद्रव होने से होने वाला कष्ट। अथवा बैठे रहने में होने वाला कष्ट।
११-शय्यापरीषह-रहने के स्थान अथवा संस्तारक (संथारा) की प्रतिकूलता से होने वाला कष्ट।
१२-आक्रोशपरीषह-कठोर वचनों से होने वाला कष्ट।
१३-वधपरीषह-लकड़ी आदि से पीटे जाने पर होने वाला कष्ट।
१४-याचनापरीषह-भिक्षा मांगने में होने वाला कष्ट।
१५-अलाभपरीषह-भिक्षा आदि के न मिलने पर होने वाला कष्ट।
१६-रोगपरीषह-रोग के कारण होने वाला कष्ट।
१७-तृणस्पर्शपरीषह-घास पर सोते समय शरीर में चुभने से या मार्ग में चलते समय तृण आदि पैर में चुभ जाने से होने वाला कष्ट।
१८-जल्लपरीषह-शरीर और वस्त्र आदि में चाहे जितना मैल लगे किन्तु उद्वेग को प्राप्त न होना तथा स्नान की इच्छा न करना।
१९-सत्कार-पुरस्कारपरीषह-जनता द्वारा मान-पूजा मिलने पर हर्षित न होना, मान-पूजा न मिलने पर खेदित न होना।
२०-प्रज्ञापरीषह-प्रज्ञा-बुद्धि का गर्व न करना।
२१-अज्ञानपरीषह-विशिष्ट बुद्धि न होने पर खेदित न होना।
२२-दर्शनपरीषह-दूसरे मत वालों की ऋद्धि तथा आडम्बर को देख कर सम्यक्त्व से विचलित न होना।

३ शीतपरीषह, ४ उष्णपरीषह, ५ दंशमशकपरीषह, ६ अचेल-परीषह, ७ अरतिपरीषह, ८ स्त्रीपरीषह, ९ चर्यापरीषह, १० निसीहियापरीषह, ११ शय्यापरीषह, १२ आक्रोशपरीषह, १३ वधपरीषह, १४ याचनापरीषह, १५ अलाभपरीषह, १६ रोग-परीषह, १७ तृणस्पर्शपरीषह, १८ जल्लपरीषह, १९ सत्कार-पुरस्कारपरीषह, २० प्रज्ञापरीषह, २१ अज्ञानपरीषह २२ दर्शन-परीषह।

२ - अहो भगवन्! कितने कर्मों के उदय से परीषह आते हैं? हे गौतम! ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, अन्तराय, इन चार कर्मों के उदय से परीषह आते हैं। ज्ञानावरणीय के उदय से दो परीषह (प्रज्ञापरीषह और अज्ञानपरीषह) आते हैं। वेदनीय के उदय से ११ परीषह (क्षुधापरीषह, पिपासापरीषह, शीतपरीषह, उष्णपरीषह, दंशमशकपरीषह, चर्यापरीषह, शय्यापरीषह, वधपरीषह, रोगपरीषह, तृणस्पर्शपरीषह, जल्लपरीषह) आते हैं। मोहनीय कर्म के उदय से ८ परीषह आते हैं (दर्शनमोहनीय के उदय से एक - दर्शनपरीषह। चारित्रमोहनीय के उदय से सात परीषह-अचेल-परीषह, अरतिपरीषह, स्त्रीपरीषह, निसीहियापरीषह, आक्रोशपरीषह, याचनापरीषह, सत्कार-पुरस्कार-परीषह) अन्तरायकर्म के उदय से एक परीषह (अलाभ-परीषह) आता है।

३ - अहो भगवन्! एक जीव के एक साथ कितने परीषह होते हैं? हे गौतम! सात कर्म (तीसरा, आठवां, नवमा गुणस्थानवर्ती) आठ कर्म (तीसरे को छोड़कर सात गुणस्थान तक) बांधने वाले जीव के २२ परीषह होते हैं परन्तु वह एक समय में

२० परीषह वेदता है। शीत, उष्ण दोनों परीषहों में से एक वेदता है, चर्या, निसीहिया दोनों परीषहों में से एक वेदता है। छह कर्मों के (आयुष्य, मोह वर्ज कर) बन्धक सरागी छद्मस्थ ग्यारहवें बारहवें गुणस्थान में १४ परीषह (२२ परीषहों में से मोहनीयकर्म के ८ परीषहों को छोड़कर) होते हैं, किन्तु एक साथ १२ परीषह वेदते हैं (शीत, उष्ण में से एक और चर्या, शय्या में से एक वेदते हैं)। तेरहवें गुणस्थान में एक कर्म के बन्धक को और चौदहवें गुणस्थान में अबन्धक को वेदनीय के ११ परीषह होते हैं, एक साथ ९ वेदते हैं (शीत, उष्ण में से एक और चर्या, शय्या में से एक वेदते हैं)।

१४. बंध (प्रयोगबंध विस्रसाबंध) का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक आठवां, उद्देशा नौवां)

१ - अहो भगवन् ! बन्ध कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! बन्ध दो प्रकार के हैं - * प्रयोगबन्ध और विस्रसाबंध (वीससाबन्ध)।

२ - अहो भगवन् ! विस्रसाबन्ध के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! विस्रसाबन्ध के दो भेद हैं - सादिविस्रसाबन्ध, और अनादिविस्रसाबन्ध।

** जो मन वचन काया के योगों की प्रवृत्ति से बंधता है, उसे प्रयोगबन्ध कहते हैं। जो स्वाभाविक रूप से बंधता है उसको विस्रसा (बीससा) बन्ध कहते हैं।*

३ - अहो भगवन् ! अनादिविस्त्रसाबन्ध के कितने भेद हैं ?
हे गौतम ! अनादिविस्त्रसाबन्ध के ३ भेद हैं - धर्मास्तिकाय - अन्योन्य-अनादि-विस्त्रसाबन्ध, अधर्मास्तिकाय- अन्योन्य- अनादि - विस्त्रसाबन्ध, आकाशास्तिकाय- अन्योन्य -अनादि- विस्त्रसाबन्ध। ये तीनों देशबन्ध हैं, सर्वबन्ध नहीं। इन तीनों की स्थिति सव्वद्धा (सदा काल) है।

४ - अहो भगवन् ! सादिविस्त्रसाबन्ध के कितने भेद हैं ?
हे गौतम ! तीन भेद हैं - + बन्धनप्रत्ययिक, भाजनप्रत्ययिक और परिणामप्रत्ययिक।

बंधनप्रत्ययिकबंध- एक परमाणु से लेकर अनन्तप्रदेशी तक जघन्य गुण वर्जकर निद्ध-निद्ध (स्निग्ध स्निग्ध) का विषम बन्ध होता है समबन्ध नहीं होता। (रूक्ष रूक्ष) का जघन्य गुण वर्जकर विषमबन्ध होता है, समबन्ध नहीं होता। एक गुण वर्ज कर निद्ध रूक्ष का समबन्ध और विषमबन्ध दोनों होते हैं।

भाजनप्रत्ययिक (बर्तन सम्बन्धी) बंध-बर्तन में रखी हुई

+ स्निग्धता आदि गुणों से परमाणुओं का जो बन्ध होता है । उसे बंधनप्रत्ययिकबन्ध कहते हैं।

भाजन यानी आधार के निमित्त से जो बंध होता है उसे भाजन-प्रत्ययिकबंध कहते हैं। जैसे-घड़े में रखी हुई पुरानी मदिरा गाढ़ी हो जाती है, पुराना गुड़ या पुराने चावलों का पिण्ड बंध जाता है, यह भाजनप्रत्ययिकबंध कहलाता है।

परिणाम यानी रूपान्तर, उसके निमित्त से जो बंध होता है उसको परिणामप्रत्ययिकबंध कहते हैं।

पुरानी मदिरा गाढ़ी पड़ जाती है, पुराना गुड़ चावल आदि का पिण्ड बंध जाता है।

परिणामप्रत्ययिक बन्ध-अभ्र (बादल) अभ्रवृक्ष आदि का परिणाम से बन्ध हो जाता है।

५ - अहो भगवन् ! इन तीनों बन्धों की स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! बंधनप्रत्ययिकबंध की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट असंख्यातकाल की। भाजनप्रत्ययिकबंध की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट संख्याताकाल की। परिणामप्रत्ययिक-बंध की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट ६ मास की।

६ - अहो भगवन् ! प्रयोगबंध के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! तीन भेद हैं (१) अणाइया - अपज्जवसिया (अनादि - अनन्त), (२) साइया - अपज्जवसिया (सादि-अनन्त), (३) साइया-सपज्जवसिया (सादि-सान्त)। जीव के आठ मध्यप्रदेशों में से तीन तीन प्रदेशों में अणाइया-अपज्जवसिया बंध है। सिद्ध भगवान् के जीवप्रदेशों का बन्ध साइया-अपज्जवसिया है। साइया-सपज्जवसिया के ४ भेद - * १ अलावणबंध (आलापनबंध), २ अल्लियावणबंध

**आलापनबंध– रस्सी आदि से तृणादि को बांधना आलापन-बंध है।*

आलीनबंध– लाख आदि के द्वारा एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ के साथ बंध होना आलीनबंध है। शरीरबंध–समुद्घात करते समय विस्तारित और संकोचित जीवप्रदेशों के संबंध से तैजसादि शरीर प्रदेशों का संबंध शरीरबंध है अथवा समुद्घात करते समय संकुचित हुए आत्मप्रदेशों का संबंध शरीरबंध है।

(आलीनबंध), ३ शरीरबंध, ४ * शरीरप्रयोगबंध। घास का भार, लकड़ी का भार आदि को रस्सी आदि से बांधना अलावणबंध (आलापनबंध) है। अल्लियावणबंध (आलीनबंध) के ४ भेद – १ लेसणाबंध (श्लेष्णाबंध), २ उच्चयबंध ३ समुच्चयबंध, ४ संहनन-बंध। मिट्टी, चूना, लाख आदि से लेपन करना श्लेषणबंध है। तृण, काष्ठ, पत्र, भूसा, कचरा आदि के ढेर का उच्चपणे बंध होना उच्चयबंध है। कुआ, बावड़ी, तालाब, घर, हाट आदि बंधवाना सो समुच्चय बंध है। संहनन बंध के (दो भेद) - देशसंहननबंध और सर्वसंहननबंध। गाड़ी, रथ, पालकी आदि को बांधना देशसंहनन - बंध है। दूध और पानी का शामिल एकमेक हो जाना सर्वसंहनन-बंध है। आलापनबंध और आलीनबंध इन दोनों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट संख्याता काल की है।

शरीरबंध के २ भेद - पूर्वप्रयोगप्रत्ययिक और प्रत्युत्पन्न-प्रयोगप्रत्ययिक। नारकादि संसारी जीव वेदनीय कषायादि समुद्घात द्वारा तैजस कार्मण शरीर के प्रदेशों को लम्बा चौड़ा विस्तृत कर पीछा संकोच कर बांधे सो पूर्वप्रयोगप्रत्ययिक शरीरबंध है। केवली भगवान् के केवलीसमुद्घात करते हुए पांचवें समय में तैजस कार्मण शरीर का जो बंध होता है सो प्रत्युत्पन्न-प्रयोगप्रत्ययिक बंध है।

७ - अहो भगवन् ! शरीरप्रयोगबंध के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! शरीरप्रयोगबंध के ५ भेद हैं - १ औदारिकशरीर-प्रयोगबंध, २ वैक्रियशरीरप्रयोगबंध, ३ आहारकशरीरप्रयोगबंध, ४ तैजसशरीरप्रयोगबंध, ५ कार्मणशरीरप्रयोगबंध।

** शरीरप्रयोगबंध-औदारिकादि शरीर की प्रवृत्ति से शरीर के पुद्गलों का ग्रहण करने रूप बंध है।*

१५. देशबंध, सर्वबंध का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक आठवां, उद्देशा नौवां)

१ - अहो भगवन् ! औदारिकशरीर कितने बोलों से बंधता है ? हे गौतम ! आठ बोलों से बंधता है - १ वीर्य *, २ संयोग (मन आदि), ३ द्रव्य, ४ प्रमाद, ५ कर्म, ६ योग (काया आदि), ७ भव, ८ आयुष्य।

२ - अहो भगवन् ! औदारिकशरीर कितने ठिकाणे (स्थान में) पाया जाता है ? हे गौतम ! औदारिकशरीर १२

** यथा-हवेली का दृष्टान्त- १ द्रव्य-चूना, ईंट आदि, २ वीर्य सो खरीदने में पराक्रम, ३ संयोग सो वस्तु का संयोग मिलाना, ४ योग सो कारीगर आदि का व्यापार, ५ कर्म सो शुभ उदय हो तो हवेली बने, ६ आयुष्य सो हवेली बनाने वाले का आयुष्य पूरा हो तो हवेली पूरी होवे, ७ भव सो जिसमें शक्ति होती है वैसी हवेली बनाता है किन्तु मनुष्य बिना हवेली बन नहीं सकती। ८ काल सो तीसरे चौथे पांचवें आरे में हवेली बनती है। अब ये ८ बोल शरीर पर उतारे जाते हैं- १ द्रव्य सो पुद्गल, २ वीर्य सो इकट्ठा करना, ३ संयोग सो मन के परिणाम सहित, ४ योग सो काया का व्यापार, ५ कर्म सो जैसा शुभाशुभ कर्म किया हो वैसा शुभाशुभ शरीर बनता है। ६ आयुष्य सो यदि आयुष्य लम्बा हो तो शरीर पूरा बनता है, नहीं तो अपर्याप्त अवस्था में ही मरण हो जाता है। ७ भव सो तिर्यंच और मनुष्य के बिना शरीर नहीं बनता। ८ काल सो जो जो काल हो वैसी अवगाहना होती है।*

ठिकाणे पाया जाता है - १ समुच्चय जीव, २ समुच्चय एकेन्द्रिय, ३-७ पांच स्थावर (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय), ८-१० तीन विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय), ११ तिर्यंच पंचेन्द्रिय, १२ मनुष्य।

३ - अहो भगवन् ! बारह बोलों के + सर्वबंध की स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! जघन्य उत्कृष्ट एक समय की।

४ - अहो भगवन् ! बारह बोलों के देशबन्ध की स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! समुच्चय जीव, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य इन तीन बोलों की स्थिति जघन्य १ समय की, उत्कृष्ट तीन पल्योपम में एक समय ऊणी (कम)। समुच्चय एकेन्द्रिय और वायुकाय की स्थिति जघन्य एक-एक समय ऊणी। चार स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय के देशबन्ध की स्थिति जघन्य एक ÷ खुड्डागभव (क्षुल्लकभव) में तीन-तीन समय ऊणी, उत्कृष्ट अपनी-अपनी स्थिति से एक एक समय ऊणी।

५ - अहो भगवन् ! समुच्चय जीव के सर्वबंध का अन्तर (आन्तरा) कितना है ? हे गौतम ! जघन्य एक खुड्डागभव में तीन समय ऊणी, उत्कृष्ट ३३ सागर कोड़ पूर्व से एक समय

+ उत्पन्न होते समय जीव पहले समय जो आहार लेता है उसे सर्वबंध कहते हैं। पहले समय के बाद जो आहार लेता है, उसे देशबंध कहते हैं।

÷ एक अन्तर्मुहूर्त में ६५५३६ खुड्डागभव (क्षुल्लकभव) होते हैं। एक श्वासोच्छ्वास में १७ झाझेरा (कुछ ज्यादा) खुड्डागभव होते हैं।

अधिक +।

६ - अहो भगवन् ! समुच्चय जीव के देशबंध का अन्तर कितना है ? हे गौतम ! जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ३३ सागर से तीन समय अधिक *।

७ - अहो भगवन् ! ग्यारह बोलों का (समुच्चय एकेन्द्रिय, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य का) अन्तर कितना है ? हे गौतम ! इन ग्यारह बोलों का अन्तर दो प्रकार का है - सकाय (स्वकाय) की अपेक्षा, परकाय की अपेक्षा ÷। सकाय की अपेक्षा ग्यारह बोलों से सर्वबंध का अन्तर जघन्य एक खुड्डागभव में तीन समय ऊणा, उत्कृष्ट अपनी अपनी स्थिति में एक समय अधिक। सकाय की अपेक्षा देशबंध का अन्तर ४ बोलों का (समुच्चय एकेन्द्रिय, वायुकाय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और

+ पहला समय तो सर्वबंध में रहा। एक समय कम करोड़ पूर्व देशबंध में रहा और ३३ सागर देवता में रहा। देवता से चव कर वापिस आते हुए दो समय वाटेबहते (विग्रहगति में) लगे। इस प्रकार सर्वबंध का अन्तर एक समय अधिक पूर्व कोटि (करोड़ पूर्व) और ३३ सागर होता है।

* तेतीस सागर देवता में रहा। दो समय वाटेबहते (विग्रहगति में) लगे। एक समय सर्वबंध में लगा। इस तरह ३३ सागर से ३ समय अधिक हुए।

÷ एकेन्द्रिय मर कर वापिस एकेन्द्रिय में उत्पन्न होवे, उसे सकाय (स्वकाय) कहते हैं और एकेन्द्रिय मर कर एकेन्द्रिय को छोड़ कर दूसरी काया में उत्पन्न होवे, उसे परकाय कहते हैं।

मनुष्य का) जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का। बाकी ७ बोलों का सकाय की अपेक्षा देशबन्ध का अन्तर जघन्य एक समय का उत्कृष्ट तीन समय का। परकाय की अपेक्षा ११ बोलों में से समुच्चय एकेन्द्रिय के सर्वबंध का अन्तर जघन्य दो खुड्डागभव में ३ समय ऊणा, देशबंध का अन्तर जघन्य एक खुड्डागभव से एक समय अधिक, उत्कृष्ट २००० सागर झाझेरा (कुछ अधिक)। वनस्पतिकाय के सर्वबंध का अन्तर जघन्य दो खुड्डागभव में ३ समय ऊणा (कम), देशबंध का अन्तर जघन्य एक खुड्डागभव से एक समय अधिक, उत्कृष्ट असंख्यात काल (पुढवीकाल)। नव बोलों का (११ बोलों में से समुच्चय एकेन्द्रिय और वनस्पति को छोड़ कर बाकी ९ बोलों का) सर्वबंध का अन्तर जघन्य दो खुड्डागभव में तीन समय ऊणा (कम), उत्कृष्ट अनन्त काल (वनस्पतिकाल) का। देशबंध का अंतर जघन्य एक खुड्डागभव से एक समय अधिक, उत्कृष्ट अनंतकाल (वनस्पतिकाल) का।

८ - अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े औदारिकशरीर के सर्वबंधक, उससे अबंधक विशेषाहिया, उससे देशबंधक असंख्यातगुणा।

९ - अहो भगवन् ! वैक्रियशरीर कितने बोलों से बंधता है ? हे गौतम ! ९ बोलों से बंधता है – आठ बोल तो औदारिक-शरीर में कहे सो कह देना और नवमा बोल वैक्रियलब्धि कहनी।

१० - अहो भगवन् ! वैक्रियशरीर कितने ठिकाणे (स्थान में) पाया जाता है ? हे गौतम ! छह ठिकाणे पाया जाता है - १ समुच्चय जीव, २ नारकी, ३ देवता, ४ वायुकाय, ५ तिर्यंच पंचेन्द्रिय, ६ मनुष्य।

११ - अहो भगवन् ! वैक्रियशरीर के सर्वबंध की स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! समुच्चय जीव में जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट दो समय की। बाकी ५ बोलों (नारकी, देवता, वायुकाय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य) के सर्वबंध की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट एक समय की।

१२ - अहो भगवन् ! वैक्रियशरीर के देशबंध की स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! समुच्चय जीव में जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट ३३ सागर में एक समय ऊणी। वायुकाय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय के देशबंध की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की। नारकी, देवता के वैक्रियशरीर के देशबंध की स्थिति जघन्य १०००० वर्ष में ३ समय ऊणी, उत्कृष्ट ३३ सागर में एक समय ऊणी।

१३ - अहो भगवन् ! वैक्रियशरीर के सर्वबंध और देशबंध का अन्तर कितना है ? हे गौतम ! समुच्चय जीव में जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट अनंतकाल (वनस्पतिकाल) का। वायुकाय का सकाय (अपनी काय, याने वायुकाय) की अपेक्षा अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट असंख्यातकाल (क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भाग) का। परकाय (अन्य काय याने वायुकाय के सिवाय दूसरी काय) की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनंतकाल (वनस्पतिकाल) का। तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य का सकाय की अपेक्षा सर्वबंध और देशबंध का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट प्रत्येक करोड़ पूर्व का, परकाय की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनंतकाल (वनस्पतिकाल) का। नारकी, देवता का

सकाय की अपेक्षा अंतर नहीं, परकाय की अपेक्षा नारकी से लगा कर आठवें देवलोक तक सर्वबंध का अंतर जघन्य अपनी अपनी स्थिति से अंतर्मुहूर्त अधिक, उत्कृष्ट अनंतकाल (वनस्पतिकाल) का। देशबंध का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनंतकाल (वनस्पतिकाल) का। नवमें देवलोक से लगा कर नव ग्रैवेयक तक सर्वबंध का अंतर जघन्य अपनी अपनी स्थिति से प्रत्येक वर्ष अधिक, उत्कृष्ट अनंतकाल (वनस्पतिकाल) का। देशबंध का अन्तर जघन्य प्रत्येक वर्ष का, उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) का। चार अनुत्तर विमान का सर्वबंध का अंतर जघन्य अपनी अपनी स्थिति से प्रत्येक वर्ष अधिक, उत्कृष्ट संख्याता सागरोपम का। देशबंध का अन्तर जघन्य प्रत्येक वर्ष का, उत्कृष्ट संख्याता सागरोपम का। सर्वार्थसिद्ध का सर्वबंध और देशबंध का अन्तर नहीं।

१४ - अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े वैक्रियशरीर के सर्वबंधक, उससे देशबंधक असंख्यातगुणा, उससे अबंधक अनन्तगुणा।

१५ - अहो भगवन् ! आहारकशरीर कितने बोलों से बंधता है ? हे गौतम ! ९ बोलों से बंधता है - आठ तो औदारिक माफक कह देना, नवमा बोल आहारकलब्धि कहना।

१६ - अहो भगवन् ! आहारकशरीर कितने ठिकाणे (स्थान में) पाया जाता है ? हे गौतम दो ठिकाणे पाया जाता है – समुच्चय जीव और मनुष्य में ।

१७ - अहो भगवन् ! आहारकशरीर के सर्वबंध और देशबंध की स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! सर्वबंध की स्थिति

जघन्य उत्कृष्ट एक समय की, देशबंध की जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की।

१८ - अहो भगवन् ! आहारकशरीर के सर्वबंध और देशबंध का अंतर कितना है ? हे गौतम ! आहारकशरीर के सर्वबंध और देशबंध का अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट देश ऊणा (कुछ कम) अर्द्धपुद्गलपरावर्तनकाल का।

१९ - अल्पबहुत्व - सब से थोड़े आहारकशरीर के सर्वबंधक, उससे देशबंधक संख्यातगुणा, उससे अबंधक अनन्तगुणा।

२० - अहो भगवन् ! तैजस-कार्मणशरीर कितने बोलों से बंधता है ? हे गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य इन आठ बोलों से तैजसकार्मणशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से तैजस-कार्मणशरीर का बंध होता है।

२१ - अहो भगवन् ! तैजस-कार्मणशरीर कितने स्थानों में पाया जाता है ? हे गौतम ! चौबीस ही दण्डक के जीवों में पाया जाता है।

२२ - अहो भगवन् ! तैजस-कार्मणशरीर (प्रयोगबंध) क्या देशबंध है या सर्वबंध है ? हे गौतम ! देशबंध है, सर्वबंध नहीं है।

२३ - अहो भगवन् ! तैजस-कार्मणशरीरदेशबंध की स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! तैजस-कार्मणशरीर के दो भांगे होते हैं – अणाइया-अपज्जवासिया (अनादि-अनन्त) अभवी की अपेक्षा से। अणाइया-सपज्जवसिया (अनादि-सांत) भवी की अपेक्षा से।

२४ - अहो भगवन् ! तैजस-कार्मणशरीर का अन्तर कितना है ? हे गौतम ! तैजस-कार्मणशरीर का अन्तर नहीं होता है।

२५ - अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े तैजस-कार्मणशरीर के अबंधक, उससे देशबंधक अनन्तगुणा।

२६ - पांच शरीरों के देशबंध, सर्वबंध और अबंध की शामिल अल्पबहुत्व - १. सबसे थोड़े आहारकशरीर के सर्वबंधक, २. उससे आहारकशरीर के देशबंधक संख्यातगुणा, ३. उससे वैक्रियशरीर के सर्वबंधक असंख्यातगुणा, ४. उससे वैक्रियशरीर के देशबंधक असंख्यातगुणा, ५. उससे तैजस-कार्मण के अबंधक अनन्तगुणा, ६. उससे औदारिकशरीर के सर्वबंधक अनन्तगुणा, ७. उससे औदारिकशरीर के अबंधक विशेषाधिक, ८. उससे औदारिकशरीर के देशबंधक असंख्यातगुणा, ९ उससे तैजस-कार्मणशरीर के देशबंधक विशेषाधिक, १०. उससे वैक्रियशरीर के अबंधक विशेषाधिक, ११. उससे आहारकशरीर के अबंधक विशेषाधिक।

१६. क्रियापद का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, २२ वां पद)

(१) नामद्वार - कर्मबन्ध की कारणभूत चेष्टा को क्रिया कहते हैं। क्रिया के पांच भेद हैं - कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया।

(२) अर्थ और भेद द्वार - कायिकी (काइया) क्रिया -

काया अर्थात् शरीर में अथवा शरीर से होने वाली क्रिया कायिकी
क्रिया कहलाती है। कायिकीक्रिया के दो भेद - अनुपरतकायिकी
(अणुवरयकाइया) और दुष्प्रयुक्तकायिकी (दुप्पउत्तकाइया)। देश
अथवा सर्वप्रकार से जो सावद्य योग से विरत नहीं है ऐसे चौथे
गुणस्थान तक के जीव को अव्रत से लगने वाली क्रिया अनुपरत-
कायिकी क्रिया है। योगों के दुष्ट प्रयोग से लगने वाली क्रिया
दुष्प्रयुक्तकायिकी क्रिया है। यह क्रिया छठे गुणस्थान तक होती है।
आधिकरणिकी (अहिगरणिया) क्रिया अनुष्ठान विशेष को अथवा
बाह्य शस्त्रादि को अधिकरण कहते हैं। अधिकरण में अथवा
अधिकरण से होने वाली क्रिया को आधिकरणिकी क्रिया कहते हैं।
आधिकरणिकी क्रिया के दो भेद - संयोजनाधिकरणिकी (संजोयणा)
और निवर्तनाधिकरणिकी (निवर्तना)। पहले बने हुए शस्त्रादि के
पृथक्-पृथक् अंगों को जोड़ना संयोजनाधिकरणिकी क्रिया है। नये
शस्त्रादि बनाना निवर्तनाधिकरणिकी क्रिया है। पांच प्रकार का
शरीर बनाना भी आधिकरणिकी क्रिया है क्योंकि दुष्प्रयुक्त शरीर भी
संसारवृद्धि का कारण है। प्राद्वेषिकी (पाउसिया) क्रिया मत्सरभाव
जीव के अकुशल परिणाम विशेष को प्रद्वेष कहते हैं। प्रद्वेष में
अथवा प्रद्वेष से होने वाली क्रिया प्राद्वेषिकी क्रिया कहलाती है। स्व,
पर और उभय के भेद से प्राद्वेषिकी क्रिया तीन प्रकार की है।
स्वप्राद्वेषिकी - अपनी आत्मा पर प्रद्वेष करना, अकुशल परिणाम
रखना। परप्राद्वेषिकी-दूसरे पर प्रद्वेष करना। उभयप्राद्वेषिकी -
अपनी आत्मा पर तथा दूसरे पर प्रद्वेष करना। पारितापनिकी
(परितावणिया) क्रिया - परिताप का अर्थ कष्ट देना है। परिताप

में अथवा परिताप से होने वाली क्रिया पारितापनिकी क्रिया है। पारितापनिकी क्रिया भी स्व, पर और उभय के भेद से तीन प्रकार की है। जैसे - अपनी आत्मा को कष्ट देना, दूसरे को कष्ट देना और स्व और पर दोनों को कष्ट देना। इन्द्रिय आदि प्राण हैं उनका नाश करना अर्थात् प्राणी की घात करना प्राणातिपात (पाणाइवाइया) है। प्राणातिपात से लगने वाली क्रिया प्राणातिपात-क्रिया है। अपनी घात करना, दूसरे की घात करना और स्व तथा पर दोनों की घात करना इस तरह प्राणातिपातक्रिया भी स्व, पर और उभय के भेद से तीन प्रकार की है।

(३) सक्रिय-अक्रिय द्वार – हे भगवन् ! जीव सक्रिय है या अक्रिय ? हे गौतम ! जीव सक्रिय भी है और अक्रिय भी है। जीव के दो भेद – संसारी और सिद्ध । सिद्ध अक्रिय हैं। संसारी जीव के दो भेद – शैलेशीप्रतिपन्न और अशैलेशीप्रतिपन्न। शैलेशी का अर्थ अयोगी अवस्था अर्थात् चौदहवां गुणस्थान है। शैलेशी अवस्था में जीव योगों का निरोध करते हैं इस कारण वे अक्रिय हैं। अशैलेशीप्रतिपन्न जीव सयोगी होते हैं, अतः वे सक्रिय हैं।

(४) 'क्रिया किससे लगती है ?' द्वार–जीव को प्राणातिपात-क्रिया छह जीवनिकाय से लगती है। समुच्चय जीव की तरह चौबीस दंडक कहना। जीव को मृषावाद की क्रिया सभी द्रव्यों से लगती है। इसी तरह चौबीस दण्डक कहना। जीव को अदत्ता - दान क्रिया ग्रहण धारण योग्य द्रव्यों से लगती है। इसी तरह चौबीस दंडक कहना। जीव को मैथुन क्रिया रूप एवं रूप वाले द्रव्यों से लगती है। इसी तरह चौबीस दंडक कहना। जीव को परिग्रह की

परिग्रह क्रिया की तरह क्रोधादि यावत् मिथ्यादर्शनशल्य की क्रिया भी समुच्चय जीव और चौबीस दंडक को सभी द्रव्यों से लगती है। इस तरह प्राणातिपात, अदत्तादान और मैथुन देशद्रव्य वाले हैं और शेष पन्द्रह पापस्थान सर्वद्रव्य वाले यानी सभी द्रव्यों से लगते हैं। १८ X २५ = ४५० भंग एक जीव की अपेक्षा और ४५० भंग बहुत जीवों की अपेक्षा कुल ४५० + ४५० = ९०० भंग हुए।

क्रिया सभी द्रव्यों से लगती है। इसी तरह चौबीस दंडक कहना।

(५) 'क्रिया करते हुए कितने कर्म बंधते हैं ?' द्वार– एक जीव प्राणातिपातक्रिया करते हुए कभी सात, कभी आठ कर्म बांधता है। इसी तरह चौबीस दंडक एक वचन की अपेक्षा कहना। प्राणातिपात की तरह शेष १७ पापस्थान कहना। बहुत जीव की अपेक्षा १९ दंडक (पांच स्थावर वर्ज कर) में तीन भंग हैं – १. सभी सात कर्म बांधते हैं, २. सात कर्म बांधने वाले बहुत और आठ कर्म बांधने वाला एक, ३. सात कर्म बांधने वाले बहुत और आठ कर्म बांधने वाले बहुत। इस तरह १९ X ३ = ५७ भंग हुए और १८ पापस्थान से ५७ X १८ = १०२६ भंग हुए। पांच स्थावर के बहुत जीव प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य क्रिया करते हुए सात कर्म भी बांधते हैं और आठ कर्म भी बांधते हैं। अभंग यानी भंग बनाता नहीं।

(६) 'कर्म बांधते हुए कितनी क्रिया लगती है ?' द्वार– एक जीव को ज्ञानावरणीयकर्म बांधते हुए कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं। समुच्चय जीव की तरह चौबीस दंडक एक जीव की अपेक्षा कहना। बहुत जीव ज्ञानावरणीयक

बांधते हुए तीन क्रिया वाले, चार क्रिया वाले और पांच क्रिया वाले भी होते हैं। इसी तरह चौबीस दंडक बहुवचन से कहना। एकवचन की अपेक्षा २५ भंग और बहुवचन की अपेक्षा २५ भंग यानी ५० भंग ज्ञानावरणीयकर्म के हुए। इसी तरह शेष सात कर्म कह देना। ५० X ८ = ४०० भंग हुए।

(७) 'जीव को जीव से कितनी क्रिया लगती है ?' द्वार– समुच्चय एक जीव को समुच्चय एक जीव की अपेक्षा कभी (सिय) तीन क्रिया, कभी चार क्रिया, कभी पांच क्रिया लगती हैं और कभी अक्रिय होता है अर्थात् कोई क्रिया नहीं लगती। ये क्रियाएं वर्तमान भव की अपेक्षा समझनी चाहिये। समुच्चय एक जीव को औदारिक के दस दंडक की अपेक्षा कभी तीन, कभी चार, कभी पांच क्रियाएं लगती हैं और कभी क्रिया रहित होता है। समुच्चय एक जीव को नारकी देवता के चौदह दंडक की अपेक्षा कभी तीन और कभी चार क्रियाएं लगती हैं और कभी क्रिया नहीं लगती। नारकी और देवता के चौदह दंडक वाले जीव को नारकी, देवता के चौदह दंडक की अपेक्षा कभी तीन, कभी चार क्रियाएं लगती हैं। नारकी देवता के चौदह दंडक के जीव को समुच्चय जीव और औदारिक के दस दंडक की अपेक्षा कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं। मनुष्य के सिवाय औदारिक के नौ दंडक के जीव को नारकी, देवता के चौदह दंडक की अपेक्षा कभी तीन, कभी चार क्रियाएं लगती हैं तथा समुच्चय जीव और औदारिक के दस दंडक की अपेक्षा कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं। मनुष्य समुच्चय जीव की तरह कहना। इसी तरह एक जीव को

बहुत जीवों की अपेक्षा कहना तथा बहुत जीवों को एक जीव और बहुत जीवों की अपेक्षा कहना। किन्तु इतना अन्तर है कि 'बहुत जीवों को बहुत जीव की अपेक्षा इस चौथे आलापक में 'कभी (सिय)' नहीं बोलना किन्तु तीन क्रिया भी लगती हैं, चार क्रिया भी लगती हैं और पांच क्रिया भी लगती हैं, इस प्रकार कहना तथा समुच्चय और मनुष्य में अक्रिय भी कहना। समुच्चय जीव और चौबीस दंडक के प्रत्येक के चार भंग होने से २५ X ४ = १०० भंग हुए। समुच्चय और चौबीस दंडक की अपेक्षा १०० X २५ = २५०० भंग हुए।

(८) 'जीव को पांच क्रियाएं लगती हैं' द्वार– पांच क्रिया के नाम कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया। समुच्चय जीव और चौबीस दंडक में पांच क्रियाएं पायी जाती हैं २५ X ५ = १२५ भंग हुए। क्रिया का नियमा और भजना द्वार (१) जिसे कायिकी क्रिया लगती है उसे नियमपूर्वक आधिकरणिकी क्रिया लगती है और जिसे आधिकरणिकी क्रिया लगती है उसे नियमपूर्वक कायिकी क्रिया लगती है। (२) जिसे कायिकी क्रिया लगती है उसे नियमपूर्वक प्राद्वेषिकी क्रिया लगती है और जिसे प्राद्वेषिकी क्रिया लगती है उसे नियमपूर्वक कायिकी क्रिया लगती है। (३) कायिकी क्रिया में पारितापनिकी क्रिया की भजना है अर्थात् जिसे कायिकी क्रिया लगती है उसे पारितापनिकी क्रिया लगती भी है और नहीं भी लगती। जिसे पारितापनिकी क्रिया लगती है उसे नियमपूर्वक कायिकी क्रिया लगती है। (४) कायिकी क्रिया में प्राणातिपात क्रिया की भजना है, प्राणातिपात क्रिया वाले को कायिकी

क्रिया नियमपूर्वक लगती है। (५) जिसे आधिकरणिकी क्रिया लगती है उसे प्राद्वेषिकी क्रिया नियमपूर्वक लगती है। (६) आधिकरणिकी क्रिया वाले में पारितापनिकी क्रिया की भजना है और पारितापनिकी क्रिया वाले को आधिकरणिकी क्रिया नियमपूर्वक लगती है। (७) आधिकरणिकी क्रिया वाले में प्राणातिपात क्रिया की भजना है और प्राणातिपात क्रिया वाले को आधिकरणिकी क्रिया नियमपूर्वक लगती है। (८) प्राद्वेषिकी क्रिया वाले में पारितापनिकी क्रिया की भजना है और पारितापनिकी क्रिया वाले को प्राद्वेषिकी क्रिया नियमपूर्वक लगती है। (९) प्राद्वेषिकी क्रिया वाले में प्राणातिपात क्रिया की भजना है और प्राणातिपात क्रिया वाले को प्राद्वेषिकी क्रिया नियमपूर्वक लगती है। (१०) पारितापनिकी क्रिया वाले में प्राणातिपात क्रिया की भजना है और प्राणातिपात क्रिया वाले को पारितापनिकी क्रिया नियमपूर्वक लगती है।

इसी तरह जिस समय, जिस देश और जिस प्रदेश की अपेक्षा भी कहना। जैसे जिस समय कायिकी क्रिया की जाती है उस समय आधिकरणिकी क्रिया नियमपूर्वक की जाती है और जिस समय आधिकरणिकी क्रिया की जाती है उस समय कायिकी क्रिया नियमपूर्वक की जाती है। इसी तरह जिस देश में कायिकी क्रिया की जाती है उस देश में नियमपूर्वक आधिकरणिकी क्रिया की जाती है और जिस देश में आधिकरणिकी क्रिया की जाती है उस देश में नियमपूर्वक कायिकी क्रिया की जाती है। जिस प्रदेश में कायिकी क्रिया की जाती है उस प्रदेश में नियमपूर्वक आधिकरणिकी क्रिया की जाती है और जिस प्रदेश में आधिकरणिकी क्रिया की जाती है उस प्रदेश में

नियमपूर्वक कायिकी क्रिया की जाती है। इस तरह नियमा और भजना द्वार में कहे अनुसार समय, देश और प्रदेश की अपेक्षा दस दस भंग कहना। इस तरह १० भंग समुच्चय के, १० भंग समय के, १० भंग देश के और १० भंग प्रदेश के, कुल ४० भंग हुए। समुच्चय जीव और २४ दंडक इन २५ से गुणा करने से २५ x ४० = १००० भंग हुए।

(९) आयोजिका (आयोजिया) क्रिया - जो क्रिया जीव को संसार के साथ जोड़ती है उसे आयोजिका क्रिया कहते हैं। आयोजिका क्रिया के कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया - ये पांच भेद हैं। आयोजिका क्रिया के भी ८ वें द्वार में कहे अनुसार १००० भंग कहना।

स्पृष्ट द्वार – जीव जिस समय कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी इन तीन क्रियाओं से स्पृष्ट होता है उस समय क्या पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया से भी स्पृष्ट होता है ? उत्तर में चार भंग बताते हैं – (१) कोई जीव जिस समय कायिकी आदि तीन क्रियाओं से स्पृष्ट होता है उस समय पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया से भी स्पृष्ट होता है। (२) कोई जीव जिस समय कायिकी आदि तीन क्रियाओं से स्पृष्ट होता है उस समय पारितापनिकी क्रिया से स्पृष्ट होता है और प्राणातिपात क्रिया से स्पृष्ट नहीं होता। (३) कोई जीव जिस समय कायिकी आदि तीन क्रियाओं से स्पृष्ट होता है उस समय पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया से स्पृष्ट नहीं होता। (४) कोई जीव जिस समय कायिकी आदि तीन क्रियाओं से स्पृष्ट नहीं होता उस समय पारितापनिकी

और प्राणातिपात क्रिया से भी स्पृष्ट नहीं होता।

(१०) क्रिया के पांच भेद - आरंभिकी (आरंभिया), पारिग्रहिकी (परिग्गहिया), मायाप्रत्यया (मायावत्तिया), अप्रत्याख्यान क्रिया (अपच्चक्खाणकिरिया) और मिथ्यादर्शनप्रत्यया (मिच्छादंसणवत्तिया)। आरंभिकी क्रिया प्रमत्तसंयत (छठे गुणस्थान वाले) को तथा नीचे के (पहले से पांचवें) गुणस्थानों में रहे हुए जीवों को लगती है। पारिग्रहिकी क्रिया संयतासंयत यानी पांचवें गुणस्थान वाले को तथा नीचे के गुणस्थान वालों को लगती है। मायाप्रत्ययाक्रिया अप्रमत्त संयत (सातवें से दसवें गुणस्थान वाले को) तथा नीचे के गुणस्थान वालों को लगती है। अप्रत्याख्यान क्रिया प्रत्याख्यान न करने वाले को यानी अविरतसम्यग्दृष्टि - चौथे गुणस्थान वाले को तथा नीचे के गुणस्थान वालों को लगती है। मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया मिथ्यादृष्टि को तथा मिश्रगुणस्थान वाले को लगती है।

पावणद्वार – समुच्चय जीव और चौबीस दंडक में पांच क्रियाएं पाई जाती हैं।

नियमा-भजनाद्वार – (१) आरंभिकी क्रिया में पारिग्रहिकी क्रिया की भजना है, पारिग्रहिकी क्रिया में आरंभिकी क्रिया नियमपूर्वक होती है। (२) आरंभिकी क्रिया में मायाप्रत्यया क्रिया नियमपूर्वक होती है, मायाप्रत्यया क्रिया में आरंभिकी क्रिया की भजना है। (३) आरंभिकी क्रिया में अप्रत्याख्यान क्रिया की भजना है, अप्रत्याख्यान क्रिया में आरंभिकी क्रिया नियमपूर्वक होती है। (४) आरंभिकी क्रिया में मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया की भजना है, मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया में आरंभिकी क्रिया नियमपूर्वक होती है। (५) पारिग्रहिकी

क्रिया में मायाप्रत्यया क्रिया नियमपूर्वक होती है, मायाप्रत्यया क्रिया में पारिग्रहिकी क्रिया की भजना है। (६) पारिग्रहिकी क्रिया में अप्रत्याख्यान क्रिया की भजना है, अप्रत्याख्यान क्रिया में पारिग्रहिकी क्रिया नियमपूर्वक होती है। (७) पारिग्रहिकी क्रिया में मिथ्यादर्शन-प्रत्यया क्रिया की भजना है, मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया में पारिग्रहिकी क्रिया नियमपूर्वक होती है। (८) मायाप्रत्यया क्रिया में अप्रत्याख्यान क्रिया की भजना है, अप्रत्याख्यान क्रिया में मायाप्रत्यया क्रिया नियमपूर्वक होती है। (९) मायाप्रत्यया क्रिया में मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया की भजना है, मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया में मायाप्रत्यया क्रिया नियमपूर्वक होती है। (१०) अप्रत्याख्यान क्रिया में मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया की भजना है, मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया में अप्रत्याख्यान क्रिया नियमपूर्वक होती है।

नारकी और देवता के चौदह दंडक में चार क्रिया नियमपूर्वक होती हैं, मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया होने पर पांच क्रिया नियमपूर्वक होती हैं। पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय में पांच क्रिया नियमपूर्वक होती हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय में तीन क्रिया नियमपूर्वक होती हैं, अप्रत्याख्यान क्रिया होवे तो चार क्रियाएं नियमपूर्वक होती हैं, मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया की भजना है, मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रि[illegible] होने पर पांच क्रिया नियमपूर्वक होती हैं। समुच्चय की त[illegible] मनुष्य कहना। इसी तरह जिस देश और जिस प्रदेश की अपे[illegible] कहना।

आरंभिकी आदि पांच क्रिया का नियमा और भजना द्वार

क्रिया के नाम-	आरंभिकी	पारिग्रहिकी	मायाप्रत्यया	अप्रत्याख्यान	मिथ्यादर्शन
आरंभिकी	*नियमा	भजना	नियमा	भजना	भजना
पारिग्रहिकी	नियमा	नियमा	नियमा	भजना	भजना
मायाप्रत्यया	भजना	भजना	नियमा	भजना	भजना
अप्रत्याख्यान	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा	भजना
मिथ्यादर्शन-प्रत्यया	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा

(११) 'प्राणातिपातादि अठारह पाप से निवर्तनद्वार' – समुच्चय जीव अठारह पाप से निवृत्त होता है। पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय ये आठ दंडक के जीव अठारह पाप से निवृत्त नहीं होते। नारकी, देवता और तिर्यंच पंचेन्द्रिय , ये पन्द्रह दंडक के जीव सत्रह पाप से निवृत्त नहीं होते, एक मिथ्यात्व से निवृत्त हो सकते हैं। मनुष्य अठारह पाप से निवृत्त हो सकता है।

(१२) "प्राणातिपात आदि अठारह पाप से निवृत्त जीव कितने कर्म बांधते हैं ?" द्वार – समुच्चय एक जीव अठारह पाप से निवृत्त होता हुआ कभी सात कर्म बांधता है, कभी आठ कर्म, कभी छह कर्म, कभी एक कर्म बांधता है और कभी अबंध होता है अर्थात् कोई कर्म नहीं बांधता। नारकी, देवता और तिर्यंच पंचेन्द्रिय, इन पन्द्रह दंडक का एक जीव मिथ्यात्व से निवृत्त होता

** नियमा शब्द आया है, वहां नियमपूर्वक समझना।*

हुआ कभी सात कर्म बांधता है और कभी आठ कर्म बांधता है। मनुष्य समुच्चय जीव की तरह कहना।

समुच्चय बहुत जीव अठारह पाप से निवृत्त होते हुए सात कर्म बांधते हैं, आठ कर्म बांधते हैं, छह कर्म बांधते हैं, एक कर्म बांधते हैं और अबन्धक होते हैं। सात कर्म बांधने वाले और एक कर्म बांधने वाले शाश्वत होते हैं और आठ कर्म बांधने वाले, छह कर्म बांधने वाले और अबन्धक अशाश्वत होते हैं। इनके २७ भंग होते हैं–

असंयोगी एक भंग

(१) सभी सात कर्म और एक कर्म बांधने वाले।

दो संयोगी छह भंग

(२) सात कर्म और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक।

(३) सात कर्म और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत।

(४) सात कर्म और एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक।

(५) सात कर्म और एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत।

(६) सात कर्म और एक कर्म बांधने वाले बहुत, अबन्धक एक।

(७) सात कर्म और एक कर्म बांधने वाले बहुत अबन्धक बहुत।

तीन संयोगी बारह भंग

(८) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, छह कर्म का बन्धक एक।

(९) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, छह कर्म के बन्धक बहुत।

(१०) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म का बन्धक एक।

(११) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म के बन्धक बहुत।

(१२) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, अबन्धक एक।

(१३) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, अबन्धक बहुत।

(१४) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म के बन्धक बहुत, अबन्धक एक।

(१५) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म के बन्धक बहुत, अबन्धक बहुत।

(१६) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म का बन्धक एक, अबन्धक एक।

(१७) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म का बन्धक एक, अबन्धक बहुत।

(१८) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म के बन्धक बहुत, अबन्धक एक।

(१९) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म के बन्धक बहुत, अबन्धक बहुत।

चार संयोगी आठ भंग

(२०) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, छह कर्म का बन्धक एक, अबन्धक एक।

(२१) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, छह कर्म का बन्धक एक, अबन्धक बहुत।

(२२) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, छह कर्म के बन्धक बहुत, अबन्धक एक।

(२३) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, छह कर्म के बन्धक बहुत, अबन्धक बहुत।

(२४) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म का बन्धक एक, अबन्धक एक।

(२५) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म का बन्धक एक, अबन्धक बहुत।

(२६) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म के बन्धक बहुत, अबन्धक एक।

(२७) सात कर्म और एक कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म के बन्धक बहुत, छह कर्म के बन्धक बहुत, अबन्धक बहुत।

समुच्चय जीव की तरह मनुष्य के २७ भंग कहना। समुच्चय जीव और मनुष्य के २७ सत्ताईस भांगे २७ + २७ =५४ भंग हुए। अठारह पाप से कहने से ५४ x १८ = ९७२ भंग हुए।

नारकी, देवता और तिर्यंच पंचेन्द्रिय, इन पन्द्रह दंडक के बहुत से जीव मिथ्यात्व से निवृत्त होते हुए सात कर्म बांधते हैं और आठ कर्म बांधते हैं। इनके तीन भंग होते हैं – (१) सभी सात कर्म के बन्धक, (२) सात कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म का बन्धक एक, (३) सात कर्म के बन्धक बहुत, आठ कर्म के बन्धक बहुत। १५ x ३ = ४५ भंग हुए। कुल ९७२ + ४५ =१०१७ भंग हुए।

(१३) "प्राणातिपात आदि अठारह पाप से निवृत्त होने वाले को कितनी क्रिया लगती है ?" द्वार– प्राणातिपात से निवृत्त होने वाले समुच्चय जीव में दो क्रिया - आरंभिकी और मायाप्रत्यया की भजना, पारिग्रहिकी, अप्रत्याख्यान क्रिया और मिथ्यादर्शनप्रत्यया, ये तीन क्रिया उसके नहीं लगती। इसी तरह मिथ्यात्व के सिवाय शेष १७ पाप स्थान से निवृत्त होने वाले जीव के लिए कहना, मिथ्यात्व से निवृत्त होने वाले जीव के मिथ्यात्व क्रिया नहीं लगती, शेष चार क्रिया की भजना। समुच्चय जीव की तरह मनुष्य कहना। तेईस दंडक के जीव १८ पाप से निवृत्त नहीं होते। इतना विशेष जानना कि मिथ्यात्व से निवृत्त होने वाले नारकी व देवता के १४ दंडक के जीव के मिथ्यात्व की क्रिया नहीं लगती, शेष चार क्रियाएं लगती हैं। मिथ्यात्व से निवृत्त होने वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय के मिथ्यात्व की क्रिया नहीं लगती, अप्रत्याख्यान क्रिया की भजना है और शेष तीन क्रियाएं लगती हैं। समुच्चय जीव और चौबीस दंडक को १८ पाप से गुणा करने से २५ x १८ = ४५० भंग होते हैं।

(१४) अल्पबहुत्वद्वार– (१) सबसे थोड़े मिथ्यात्व की

क्रिया वाले जीव, (२) अप्रत्याख्यानक्रिया वाले विशेषाधिक, (३) पारिग्रहिकी क्रिया वाले विशेषाधिक, (४) आरंभिकी क्रिया वाले विशेषाधिक, (५) मायाप्रत्यया क्रिया वाले विशेषाधिक।

(१५) शरीर * इन्द्रिय योग उत्पत्तिद्वार – श्री भगवती सूत्र शतक १७ उद्देशा १ में कहा है कि ५ शरीर, ५ इन्द्रिय और तीन योग ये तेरह बोल उत्पन्न करने वाले एक जीव के कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं। उक्त तेरह बोल उत्पन्न करने वाले बहुत जीवों के तीन क्रिया भी लगती हैं, चार क्रिया भी लगती हैं और पांच क्रिया भी लगती है।

(१६) (क) कोई वस्तु चोर चुरा ले, उसे ढूंढते हुए आरंभिकी आदि चार क्रियाएं नियमपूर्वक लगती हैं, मिथ्यादर्शन-प्रत्यया क्रिया की भजना है। ढूंढते हुए ये क्रियाएं भारी लगती हैं और वस्तु मिल जाने पर ये क्रियाएं हल्की लगती हैं।
(भगवतीसूत्र शतक ५ उद्देशा ६)।

(१६) (ख) किराणा लेने बेचने में किसे कैसी क्रिया लगती

** समुच्चय जीव और मनुष्य में तेरह बोल पाये जाते हैं- ५ शरीर, ५ इन्द्रिय और ३ योग। नारकी देवता में ११ बोल हैं- औदारिक, आहारक शरीर नहीं। चार स्थावर में पांच बोल हैं- ३ शरीर, स्पर्शनेन्द्रिय और कांययोग। वायुकाय में छह बोल हैं- वैक्रियशरीर बढ़ा। द्वीन्द्रिय में सात बोल हैं-३ शरीर, २ इन्द्रिय और २ योग। त्रीन्द्रिय में आठ बोल हैं-घ्राणेन्द्रिय बढ़ी। चतुरिन्द्रिय में नौ बोल हैं- चक्षुरिन्द्रिय बढ़ी। तिर्यंच पंचेन्द्रिय में आहारकशरीर के सिवाय बारह बोल पाये जाते हैं।*

है द्वार - श्रीं भगवतीसूत्र शतक ५ उद्देशा ६ में बताया है कि कोई व्यापारी किराणा बेचता है और खरीददार खरीद लेता है। किन्तु व्यापारी जब तब माल नहीं तोलता है और खरीददार रुपये नहीं देता है तब तक दोनों को चार - चार क्रियाएं लगती हैं, मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया की भजना है। व्यापारी को किराणें की क्रिया भारी और रुपयों की हल्की लगती है और खरीददार को रुपयों की क्रिया भारी और किराणे की क्रिया हल्की लगती है। जब व्यापारी खरीददार को माल तोल देता है पर खरीददार से रुपये नहीं लेता है, उस हालत में व्यापारी को किराणे और रुपये दोनों की क्रिया हल्की लगती है और खरीददार को दोनों की क्रिया भारी लगती है। जब खरीददार व्यापारी को किराणे के रुपये दे देता है पर व्यापारी माल तोलकर खरीददार को नहीं देता है तब खरीददार को किराणे और रुपये दोनों की क्रिया हलकी लगती है और व्यापारी को दोनों की क्रिया भारी लगती है। जब व्यापारी किराणा तोलकर खरीददार को दे देता है और खरीददार किराणे के रुपये व्यापारी को दे देता है तब व्यापारी को किराणे की क्रिया हल्की और रुपयों की क्रिया भारी लगती है और खरीददार को किराणे की क्रिया भारी और रुपयों की क्रिया हल्की लगती है।

(१७) धनुष से बाण चलाने में जीवों की जो हिंसा होती है उससे किसको कितनी क्रियाएं लगती हैं ? द्वार–श्री भगवतीसूत्र के पांचवें शतक के छठे उद्देशा में बताया गया है कि कोई धनुर्धारी धनुष बाण ग्रहण कर, धनुष चलाने के आसन से बैठकर, धनुष पर बाण चढ़ाकर, बाण को कान तक खींचकर ऊपर आकाश

में बाण फेंकता है, उसमें प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों की हिंसा होती है। इससे बाण चलाने वाले को आरंभिकी आदि पांच क्रियाएं लगती हैं। धनुष ज्या (धनुष बांधने की डोरी), धनुष का पृष्ठभाग, स्नायु (चमड़े की डोरी जिससे ज्या बांधी जाती है), बाण, बाण के अवयव-शर, पत्र (बाण का मूल भाग), फल (बाण का अग्रभाग) और स्नायु (बाण बांधने की चमड़े की डोरी) ये जिन जीवों के शरीर से बने हैं उन जीवों को भी पांच क्रियाएं लगती हैं। ऊपर फेंका हुआ बाण भारी होने से स्वभावतः नीचे गिरता है और उससे प्राण, भूत, जीव, सत्त्वों की हिंसा होती है। इस हिंसा से धनुष-बाण चलाने वाले को, धनुष, ज्या, धनुष का पृष्ठ भाग और स्नायु - जिन जीवों के शरीर से बने हैं उन जीवों को चार क्रियाएं लगती हैं, प्राणातिपात क्रिया नहीं लगती। बाण और बाण के अवयव शर, पत्र, फल और स्नायु - जिन जीवों के शरीर से बने हैं उन जीवों को पांच क्रियाएं लगती हैं। नीचे गिरते हुए बाण के अवग्रह में जो जीव होते हैं उन्हें भी पांच क्रियाएं लगती हैं। बाण लगने से जीव मर कर नीचे गिरा, उससे जीवों की हिंसा होती है, इसलिए गिरने वाले जीव को भी पांच क्रियाएं लगती हैं।

(१८) अग्नि जलाने वाले और अग्नि बुझाने वाले इन दोनों में कौन महाकर्म, महाक्रिया, महाआश्रव और महतीवेदना वाला है और कौन अल्पकर्म, अल्पक्रिया, अल्पआश्रव और अल्पवेदना वाला है ? श्री भगवतीसूत्र सातवें शतक के दसवें उद्देशे में इस प्रश्न के उत्तर में बतलाया है कि अग्नि जलाने वाला महाकर्म, महाक्रिया, महाआश्रव और महतीवेदना वाला है और अग्नि बुझाने

वाला अल्पकर्म, अल्पक्रिया, अल्पआश्रव और अल्पवेदना वाला है। कारण यह है कि अग्नि जलाने वाला अग्निकाय का अल्प आरंभ करता है और पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय का महा आरम्भ करता है और बुझाने वाला अग्निकाय का महा आरम्भ करता है और शेष पांच काय का अल्प आरंभ करता है।

(१९) श्री भगवतीसूत्र शतक १, उ० ८ से क्रिया विषयक प्रश्न यहां दिये जाते हैं। कोई पुरुष कच्छ पर्वत वन आदि किसी स्थान में जाकर मृग मारने के इरादे से जाल गूंथता है उसे कितनी क्रिया लगती हैं ? उत्तर – जब तक वह पुरुष जाल गूंथ कर धारण करता है, मृग को बांधता नहीं है, मारता नहीं है तब तक उसे कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी – ये तीन क्रियाएं लगती हैं। जब वह जाल फैला कर उसमें मृग को बांधता है पर मारता नहीं है तब उसे उक्त तीन क्रियाएं और पारितापनिकी - ये चार क्रियाएं लगती हैं। जब वह जाल में बन्धे मृग को मारता है तब उसे प्राणातिपात क्रिया समेत पांच क्रियाएं लगती हैं।

कोई पुरुष कच्छादि में जाकर तृण इकट्ठे कर उनमें आग डालता है, उस पुरुष को कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं। जब तृण इकट्ठे करता है पर उनमें आग नहीं डालता तब उसे तीन – कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी क्रिया लगती है। जब वह तृणों में आग डाल देता है पर जलाता नहीं है तब उसे उक्त तीन और पारितापनिकी ये चार क्रियाएं लगती हैं। जब वह उन तृणों को जला देता है, तब उसे प्राणातिपात क्रिया

सहित पांचों क्रियाएं लगती हैं।

कोई पुरुष कच्छादि में जाकर मृग मारने के लिये बाण चलाता है उसे कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं। जब वह बाण चलाता है पर मृग को बींधता और मारता नहीं है तब उसे तीन क्रियाएं लगती हैं। जब वह बाण चलाकर मृग को बींध देता है पर मारता नहीं, तब उसे चार क्रिया लगती हैं। जब वह मृग को बाण से बींध कर मार देता है तब उसे पांचों क्रियाएं लगती हैं।

कोई पुरुष मृग मारने के लिये कान तक बाण खींच कर खड़ा है। इतने में दूसरा पुरुष आकर तलवार से उसका मस्तक काट देता है। बाण पहले से खिंचा होने से छूटता है और मृग को बींध देता है। यहां प्रश्न यह होता है कि दूसरा पुरुष मृग के वैर से स्पृष्ट है या पुरुष के वैर से ? उत्तर – 'कज्जमाणे कडे' अर्थात् किया जा रहा है वह किया इस न्याय से मृग को मारने वाला पहला पुरुष मृग के वैर से स्पृष्ट है और पुरुष को मारने वाला दूसरा पुरुष, पुरुष के वैर से स्पृष्ट है। मरने वाला यदि छह माह के अन्दर मर जाता है तो मारने वाले को पांच क्रियाएं लगती हैं। यदि वह छह माह बाद मरता है तो मारने वाले को चार क्रियाएं लगती हैं, प्राणातिपात क्रिया नहीं लगती।

कोई पुरुष बर्छी अथवा तलवार से दूसरे पुरुष का मस्तक काटता है तो उसे कितनी क्रिया लगती हैं ? बर्छी अथवा तलवार से दूसरे पुरुष का मस्तक काटने वाले को चार क्रियाएं लगती है और वह पुरुष वैर से स्पृष्ट होता है। यह व्यक्ति दूसरे के प्राण के प्रति लापरवाह होता है और उस वैर के कारण बध्य अथवा अन

से उसका भी वध भी जल्दी ही होता है। (भगवतीसूत्र श० १ उ० ८)।

कोई पुरुष किसी पुरुष को मारता हुआ पुरुष को मारता है अथवा नोपुरुष-पुरुष के सिवाय अन्य जीवों को मारता है ? श्री भगवतीसूत्र श० ९ उ० ३४ में श्री गौतम स्वामी के इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् फरमाते हैं – हे गौतम ! पुरुष को मारने वाला वह पुरुष, पुरुष और नोपुरुष-पुरुष के सिवाय दूसरे जीव लीख, जूं, चरमिया, कृमि आदि दोनों को मारता है।

इसी तरह अश्व, हाथी, बाघ, सिंह यावत् चील (चिल्ल) तक १८ (अठारह) बोल कहना।

इसी प्रकार त्रस प्राणी विशेष को मारता हुआ पुरुष उस त्रस प्राणी को और उसके सिवाय दूसरे त्रस प्राणियों को भी मारता है।

ऋषि को मारता हुआ पुरुष क्या ऋषि को मारता है या नोऋषि यानी ऋषि के सिवाय दूसरे जीवों को भी मारता है ? उत्तर – ऋषि को मारता हुआ पुरुष ऋषि को मारता है और ऋषि के सिवाय अनन्त जीवों को मारता है। कारण यह है कि ऋषि के मर जाने पर वह अविरत हो जाता है और अनन्त जीवों का घातक होता है। अथवा ऋषि जीते हुए अनेक प्राणियों को प्रतिबोध देते हैं। प्रतिबोध पाकर वे जीव क्रमशः मोक्ष प्राप्त करते हैं और मुक्त होकर वे अनन्त संसारी जीवों के अहिंसक होते हैं। उन अनन्त जीवों की अहिंसा में वह ऋषि कारण होता है। इसलिये ऋषि को मारने वाले को ऋषि का और अनन्त जीवों का घातक बतलाया है।

एक भंग हुआ। ये २० भंग एक जीव के हुए।

पुरुष को मारने वाला पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है या पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है ? उत्तर– पुरुष को मारने वाला (१) पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है अथवा (२) एक पुरुष के वैर से और एक नोपुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है अथवा (३) एक पुरुष के वैर से और बहुत नोपुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है। इस तरह ऋषि के सिवाय शेष १९ बोल के तीन - तीन भंग कहना। १९ x ३ = ५७ भंग हुए। एक ऋषि को मारने वाला ऋषि के वैर से और ऋषि ऋषि के सिवाय अनन्त जीवों के वैर से स्पृष्ट होता है = १ भंग ही होता है। ५७ + १ = ५८ भंग हुए। ये ५८ और २० समुच्चय के कुल ७८ भंग हुए।

क्या पृथ्वीकाय, पृथ्वीकाय यावत् वनस्पतिकाय को श्वासोच्छ्वास रूप में ग्रहण करता और छोड़ता है ? उत्तर – पृथ्वीकाय, पृथ्वीकाय यावत् वनस्पतिकाय को श्वासोच्छ्वास रूप में ग्रहण करता और छोड़ता है। इसी तरह अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय का कहना। ५ x ५ = २५ भंग हुए। इन पच्चीस बोल के श्वासोच्छ्वास लेने और छोड़ने वाले जीव को कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रियाएं लगती हैं। २५ भंग हुए।

वृक्ष के मूल, कन्द यावत् बीज तक के दस बोलों को चलायमान करती, गिराती हुई वायु को कितनी क्रिया लगती हैं ? उत्तर –कभी तीन, कभी चार और कभी पांच क्रिया लगती हैं। ये १० भंग हुए। सब मिलाकर ७८+२५+२५+१० = १३८ भंग हुए।

श्री भगवतीसूत्र श० ३ उ० ३ में श्री मंडितपुत्र पूछते हैं – हे भगवन् ! क्रिया कितनी प्रकार की होती हैं ? उत्तर – हे मंडितपुत्र ! क्रिया के पांच भेद हैं – कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात क्रिया। कायिकी क्रिया के दो भेद – अनुपरतकायिकी और दुष्प्रयुक्तकायिकी। विरति रहित यानी अविरत जीव के शरीर से होने वाली क्रिया अनुपरतकायिकी क्रिया है। दुष्टरूप से प्रयुक्त काय की क्रिया दुष्प्रयुक्तकायिकी क्रिया है अथवा दुष्ट योग वाले व्यक्ति के शरीर की क्रिया दुष्प्रयुक्त-कायिकी क्रिया है। यह क्रिया छठे गुणस्थान वाले को लगती है। प्रमाद होने से साधु के भी शरीर का दुष्ट प्रयोग होता है। आधिकरणिकी क्रिया के दो भेद – संयोजनाधिकरणिकी और निवर्तनाधिकरणिकी। पहले से बने हुए शस्त्रों के अवयवों को मिलाना संयोजनाधिकरणिकी क्रिया है। नये सिरे से शस्त्र बनाना निवर्तनाधिकरणिकी क्रिया है। प्राद्वेषिकी क्रिया के दो भेद – जीव-प्राद्वेषिकी और अजीवप्राद्वेषिकी। जीव अर्थात् स्व पर उभय की आत्मा पर द्वेष करना जीवप्राद्वेषिकी क्रिया है। अजीव-कांटा, पत्थर आदि जड़ पदार्थों पर द्वेष करना अजीवप्राद्वेषिकी क्रिया है। पारितापनिकी क्रिया के दो भेद – स्वहस्तपारितापनिकी और परहस्तपारितापनिकी। अपने हाथ से स्व, पर और उभय को परिताप उपजाना स्वहस्तपारितापनिकी क्रिया है। दूसरे के हाथ से स्व, पर और उभय को परिताप उपजाना परहस्तपारितापनिकी क्रिया है। प्राणातिपात क्रिया के भी दो भेद हैं – स्वहस्तप्राणातिपात क्रिया और परहस्तप्राणातिपात क्रिया। इन दोनों के भी तीन तीन

भेद पारितापनिकी की तरह होते हैं।

हे भगवन् ! पहले क्रिया होती है फिर वेदना होती है या पहले वेदना होती है फिर क्रिया होती है ? हे मंडितपुत्र ! पहले क्रिया होती है फिर वेदना होती है किन्तु पहले वेदना फिर क्रिया नहीं होती है।

अहो भगवन् ! श्रमण निर्ग्रंथ को क्रिया लगती है ? हे मंडितपुत्र ! हां लगती है। अहो भगवन् ! किस कारण ? हे मंडितपुत्र ! प्रमाद और योग के निमित्त से श्रमण निर्ग्रंथ को भी क्रिया लगती है।

श्री मंडितपुत्र भगवान् महावीर स्वामी से प्रश्न करते हैं — हे भगवन् ! कम्पन, विकम्पन (विविध प्रकार के कम्पन), चलन, स्पन्दन, क्षोभन (क्षुब्ध करना, पृथ्वी में प्रवेश करना अथवा पृथ्वी को भय पैदा करना), उदीरण (प्रबल रूप से प्रेरित करना) तथा उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण आदि भिन्न भिन्न रूप से परिणमन - इन सात क्रियाओं में प्रवृत्ति करता हुआ सयोगी जीव क्या सकल कर्मक्षय रूप अन्तक्रिया करता है ? उत्तर — हे मंडितपुत्र ! यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि सयोगी जीव जब इन सात प्रकार की क्रियाओं को करता है उस समय १. * आरंभ करता है, २. संरम्भ करता है और ३. समारम्भ करता है तथा ४. आरंभ, ५. संरम्भ और ६. समारम्भ में वर्तता है, ७. आरंभ, ८.

** पृथिवी आदि जीवों की हिंसा का संकल्प करना संरम्भ है, उन्हें परिताप उपजाना समारम्भ है और उनकी हिंसा करना, उन्हें मारना आरम्भ है।*

संरम्भ और ९. समारम्भ करता हुआ और १०. आरम्भ, ११. संरम्भ १२. समारम्भ में वर्तता हुआ जीव, १३. प्राणी, १४. भूत, १५. जीव और १६. सत्त्व को १७. दुःख पहुंचाता है, १८. शोक कराता है, १९. अधिक शोक पैदा कर उन्हें झुराता है, उनके २०. आंसू गिरवाता है, उन्हें २१. पीटता है - पीड़ा उपजाता है और २२. परिताप उत्पन्न करता है। इस कारण २२ बोलों में प्रवर्तता हुआ उपर्युक्त सात क्रियाएं करता हुआ जीव अन्तक्रिया नहीं करता। इसके विपरीत इन सात क्रियाओं को नहीं करता हुआ और उपर्युक्त २२ बोलों में नहीं प्रवर्तता हुआ जीव अन्तक्रिया करता है। इसे दृष्टान्त देकर समझाते हैं। जैसे कोई पुरुष सूखे घास के पुलों में आग डाले तो आग डालने के साथ घास के पुले जलकर भस्म हो जाते हैं। जैसे तपे हुए लोहे के तवे पर कोई जलबिन्दु डाले तो वह तत्काल जलकर नष्ट हो जाती है। जैसे कोई तालाब पानी से पूरा भरा है, उसमें कोई पुरुष छिद्रों वाली नाव प्रवेश कराता है। छिद्रों से पानी आकर नाव शीघ्र ही पानी से भर जाती है और नीचे बैठने लगती है। यदि कोई चतुर पुरुष नाव के सभी छिद्र बन्द कर दे और नाव में भरा हुआ पानी उलीच कर नाव से बाहर फेंक दे तो नाव शीघ्र ही ऊपर आकर तैरने लगती है। इसी प्रकार, हे मंडितपुत्र ! आत्मा का गोपन करने वाले, ईर्यासमितिवन्त गुप्त ब्रह्मचारी मुनिराज उपयोगपूर्वक यतना से जाने आने वाले, उपयोगपूर्वक यतना से उठने बैठने, सोने वाले, उपयोगपूर्वक यतना से वस्त्र, पात्र, आदि उपकरणों को ग्रहण करने और रखने वाले, यहां तक कि नेत्र की निमेषोन्मेष (पलक खोलने की) क्रिया भी यतना से करने वाले

होते हैं। ऐसे मुनिराज को सूक्ष्म ईर्यापथिकी क्रिया लगती है, जिसे पहले समय में बांधते हैं, दूसरे समय में वेदते हैं और तीसरे समय उसकी निर्जरा होती है। ऐसे मुनिराज उक्त कम्पन विकम्पन आदि क्रिया नहीं करते हुए अन्त समय में अन्तक्रिया करते हैं।

प्रमत्त संयती की स्थिति एक जीव की अपेक्षा जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व की तथा अनेक जीवों की अपेक्षा सर्वकाल (सव्वद्धा) की। अप्रमत्त संयति की स्थिति एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त + की, उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व की तथा अनेक जीवों की अपेक्षा सर्वकाल की।

अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन लवण-समुद्र का पानी बढ़ता, घटता क्यों है ? उत्तर - लवणसमुद्र के मध्य में चारों दिशाओं में लाख-लाख योजन प्रमाण वाले चार महापाताल कलश हैं। इनके नीचे के तीसरे भाग में वायु है, बीच के तीसरे भाग में वायु और जल है और ऊपर के तीसरे भाग में जल है। इन चार महापाताल कलशों के अतिरिक्त ७८८४ क्षुद्र-पातालकलश हैं, जो एक-एक हजार योजन प्रमाण हैं। क्षुद्र (छोटे) कलशों के भी नीचे के तीसरे भाग में वायु, बीच के तीसरे भाग में वायु और जल और ऊपर के तीसरे भाग में जल है। महापाताल कलशों और क्षुद्रपाताल कलशों में वायु क्षुब्ध होती है तब लवण-समुद्र का पानी बढ़ता है और जब वायु क्षुब्ध नहीं होती तब पानी घटता है।

आचारांगसूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध के दूसरे अध्ययन के

+ धारणा से " एक समय " भी कहते हैं।

दूसरे उद्देशे में नौ क्रिया बताई हैं, जो साधु के रहने के स्थान सम्बन्धी हैं अथवा साधु के रहने की वे नौ विशेषण वाली वसतियां हैं। वे इस प्रकार हैं – (१) कालातिक्रांतक्रिया , (२) उपस्थान-क्रिया, (३) अभिक्रांतक्रिया, (४) अनभिक्रांतक्रिया, (५) वर्ज्यक्रिया, (६) महावर्ज्यक्रिया, (७) सावद्यक्रिया, (८) महासावद्यक्रिया, (९) अल्पसावद्यक्रिया।

(१) कालातिक्रांतक्रिया – किसी स्थान विशेष में चातुर्मास अथवा मासकल्प बिताकर, विशेष कारण बिना कल्प के बाद भी फिर वहीं रहना कालातिक्रांत दोष है।

(२) उपस्थानक्रिया – स्थान विशेष में चातुर्मास अथवा मासकल्प पर्यन्त रहकर फिर जितना काल रहे उससे कम से कम दुगुना समय बाहर बिताये बिना उसी स्थान में आकर रहना उपस्थानक्रिया दोष है।

(३) अभिक्रांतक्रिया – गृहस्थ द्वारा श्रमण ब्राह्मण आदि के लिये बनाये हुए मकान में शाक्यादि श्रमण ब्राह्मण आदि के रहने के बाद साधु का रहना अभिक्रांतक्रिया है।

(४) अनभिक्रांतक्रिया – गृहस्थ द्वारा श्रमण ब्राह्मणादि के लिये बनाये हुए मकान में श्रमण ब्राह्मण के रहने से पहले ही साधु का रहना अनभिक्रांतक्रियादोष है।

(५) वर्ज्यक्रिया – साधु अपने लिये बनाये हुए मकान में नहीं रहते, इसलिये गृहस्थ अपने लिये बनाये हुए मकान को साधु के लिये दे दे और अपने लिये नया मकान बना ले तो वह मकान पश्चात्कर्मदोष वाला होने वर्ज्यक्रियादोष वाला है।

(६) महावर्ज्यक्रिया – श्रमण ब्राह्मण अतिथि आदि का अलग-अलग नाम लेकर उनके उदे्श्य से बनाये हुए मकान में रहना महावर्ज्यक्रियादोष है।

(७) सावद्यक्रिया – जो मकान श्रमण ब्राह्मण आदि का नाम लेकर उनके उद्देश्य से सही बनाया गया है, उसमें रहना सावद्यक्रियादोष है।

(८) महासावद्यक्रिया – साधु के निमित्त बनाये गये मकान में रहना महासावद्यक्रियादोष है।

(९) अल्प + सावद्यक्रिया – गृहस्थ द्वारा अपने खुद के लिये बनाये हुए मकान में रहना अल्पसावद्यक्रिया है।

इन नौ स्थानों में से अभिक्रांतक्रिया और अल्पसावद्यक्रिया वाले स्थान साधु के रहने योग्य हैं। शेष सदोष होने से साधु के रहने योग्य नहीं हैं।

सूत्रकृतांगसूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध के दूसरे अध्ययन में तेरह क्रियास्थानों का वर्णन है – (१) अर्थदण्ड (२) अनर्थदण्ड, (३) हिंसादण्ड, (४) अकस्माद्दण्ड, (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड, (६) मृषावादप्रत्ययिक, (७) अदत्तादानप्रत्ययिक (८) अध्यात्मप्रत्ययिक, (९) मानप्रत्ययिक, (१०) मित्रद्वेषप्रत्ययिक, (११) मायाप्रत्ययिक, (१२) लोभप्रत्ययिक, (१३) ईर्यापथिक।

(१) अर्थदण्ड - प्रयोजनवश त्रस स्थावर जीवों की हिंसा से लगने वाला पाप। (२) अनर्थदण्ड - बिना प्रयोजन त्रस स्थावर जीवों की हिंसा से लगने वाला पाप। (३) हिंसादण्ड - इन

+ अल्प शब्द यहां अभाव का परिबोधक है।

जीव ने मुझे मारा, मेरे स्वजनों को अथवा औरों को मारा, यह हमें मारता है अथवा मारेगा, इस कारण उस जीव की हिंसा करना। (४) अकस्माद्दण्ड– प्राणी विशेष को मारना चाहते हुए अचानक किसी दूसरे प्राणी को मार देना, उससे लगने वाला पाप। (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड - भ्रान्तिवश प्राणी विशेष के बदले अन्य प्राणी को मारने से लगने वाला पाप। (६) मृषावादप्रत्ययिक - अपने लिये, परिवार के लिये, जाति के लिये अथवा मकान के लिये झूठ बोलने से लगने वाला पाप। (७) अदत्तादानप्रत्ययिक - अपने लिये, परिवार के लिये अथवा जाति के लिये चोरी करने से लगने वाला पाप। (८) अध्यात्मप्रत्ययिक - पुत्रशोक, धननाश, पशुनाश अथवा अपमान आदि कोई कारण न होने पर भी अपने आप हीन दीन दु:खी तथा चिन्ताग्रस्त होकर आर्तध्यान करना। ऐसे व्यक्ति के हृदय में क्रोध, मान, माया, लोभ की प्रबलता रहती है। ये चारों भाव आत्मा में उत्पन्न होते हैं, इसलिए आध्यात्मिक कहलाते हैं। इस प्रकार आर्तध्यान करने से लगने वाला पाप अध्यात्मप्रत्ययिक कहा जाता है। (९) मानप्रत्ययिक - जाति, कुल, बल, रूप, तप, श्रुत (शास्त्र), लाभ, ऐश्वर्य अथवा बुद्धि के मद से मत्त होकर दूसरे की अवहेलना, निंदा करना, दूसरे का पराभव करना, अपने को उत्कृष्ट समझना और दूसरे को हीन, तुच्छ समझना, इस प्रकार मान करने से लगने वाला पाप मानप्रत्ययिक है। (१०) मित्रद्वेष-प्रत्ययिक-परिवार में माता, पिता, भाई, बहन, पत्नी, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू आदि के साथ रहते हुए उनके छोटे से अपराध करने पर भी सख्त दण्ड देना, उन्हें अनेक तरह से तंग करना, दु:ख

पहुंचाना, इससे लगने वाला पाप मित्रद्वेषप्रत्ययिक है। ऐसा व्यक्ति जब तक घर में रहता है घर वाले दु:खी रहते हैं। उसके बाहर जाने पर वे सुख मानते हैं। वह इस लोक में अपना अहित करता है, परलोक में क्रोधी होता है, सदा जलता रहता है तथा चुगलखोर होता है। (११) मायाप्रत्ययिक - विश्वास देकर लोगों को ठगना, छिप कर पापाचरण करना, अतिशय तुच्छ होते हुए भी अपने को महान् समझना, आर्य होते हुए भी अनार्य भाषा बोलना, अन्यथा होते हुए भी अपने को अन्य रूप, प्रकार समझना, प्रश्नकर्त्ता के कुछ पूछने पर सही उत्तर न देकर और ही उत्तर देना, इस प्रकार माया से लगने वाला पाप मायाप्रत्ययिक कहलाता है। (१२) लोभ-प्रत्ययिक-कई पाखंडी लोग स्वार्थसाधन के लिये बहुत सी कल्पित बातें करते हैं। प्राण, भूत, जीव, सत्त्व के सम्बंध में मिश्र वचन बोलते हैं। मैं हनन, अज्ञापन, परिताप और उपद्रव योग्य नहीं हूं, दूसरे प्राणी हनन, अज्ञापन, परिताप, और उपद्रव योग्य हैं। ये लोग कामिनी और कामभोगों में आसक्त रहते हैं। पांच दस वर्ष या कुछ अधिक काल तक कामभोगों का सेवन कर स्थिति पूरी होने पर काल करते हैं और किल्विषी देव होते हैं। वहां से निकल कर वे जन्मान्ध होते हैं, मूक (गूंगे) होते हैं। इस प्रकार लोभ के कारण जो पाप लगता है वह लोभप्रत्ययिक कहलाता है। (१३) ईर्यापथिकी - आत्मस्वरूप की प्राप्ति हेतु आश्रव का निरोध कर संवर क्रिया में प्रवृत्ति करने वाले, पांच समिति, तीन गुप्ति की आराधना करने वाले, शरीर एवं इन्द्रियों का गोपन करने वाले गुप्त ब्रह्मचारी अनागर उपयोग पूर्वक यतना के साथ गमनादि क्रिया

करते हैं, उन्हें सूक्ष्म ईर्यापथिकी क्रिया लगती है। इस क्रिया में पहले समय बंध होता है, दूसरे समय में वेदन होता है और तीसरे समय में निर्जरा होती है। इस प्रकार लगने वाला पाप ईर्यापथिकी कहलाता है।

प्रश्नव्याकरणसूत्र के दूसरे संवरद्वार में आत्मप्रशंसा एवं परनिन्दा रूप वचन बोलने का निषेध किया है। जैसे - तू मेधावी नहीं है, तू धन्य नहीं है, तू प्रियधर्मा नहीं है, तू कुलीन नहीं है, तू दानी नहीं है, तू शूरवीर नहीं है, तू रूपवान नहीं है, तू सौभाग्यशाली नहीं है, तू पंडित नहीं है, तू बहुश्रुत नहीं है, तू तपस्वी नहीं है, परलोक के विषय में तेरी बुद्धि निश्चित नहीं है। इस प्रकार जाति, कुल, रूप, व्याधि और रोग को प्रगट करने वाला निन्दाकारी वचन वर्जनीय है, ऐसा वचन द्रव्य और भाव की अपेक्षा अपकार करने वाला है। इस प्रकार का वचन सत्य होने पर भी नहीं बोलना चाहिये।

पचीस क्रिया के नाम - १. कायिकी, २. आधिकरणिकी, ३. प्राद्वेषिकी, ४. पारितापनिकी, ५. प्राणातिपातक्रिया, ६. आरंभिकी (आरभिया), ७. पारिग्रहिकी, ८. मायाप्रत्ययिकी, ९. प्रत्याख्यान-क्रिया, १०. मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी, ११. दृष्टिजा (दिट्ठिया), १२. स्पृष्टिजा-पृष्टिकी (पुट्ठिया), १३. प्रातीत्यिकी (पाडुच्चिया), १४. सामन्तोपनिपातिकी (सामन्तोवणिकाइया), १५. नैसृष्टिकी (णेसत्थिया), १६. स्वहस्तिकी (साहत्थिया), १७. आज्ञापनिकी या आनयनिकी (आणवणिया), १८. वैदारणिकी (वियारणिया), १९. अनाभोगप्रत्ययिकी (अणाभोगवत्तिया), २०. अनवकांक्षाप्रत्ययिकी (अणवकंखवत्तिया), २१.

प्रेमप्रत्ययिकी (पिज्जवत्तिया), २२. द्वेषप्रत्ययिकी (दोसवत्तिया), २३. अनुप्रयोगक्रिया (अणउपयोगवत्तिया), २४. समुदानक्रिया, २५. ईर्यापथिकीक्रिया।

पहली पांच क्रियाओं का स्वरूप और उनके भेद ऊपर बता चुके हैं। ६. आरंभिकी (आरंभिया) क्रिया - पृथ्वीकाय आदि छह काय के जीवों की हिंसा करना आरम्भ है। आरम्भ से लगने वाली क्रिया को आरंभिकी क्रिया कहते हैं। इसके दो भेद हैं - जीव - आरंभिकी और अजीव-आरंभिकी। जीव की हिंसा से लगने वाली क्रिया जीव-आरंभिकी है। अजीव में जीव का आरोप कर भावों में उसकी हिंसा करना अजीव-आरंभिकी क्रिया है। ७. पारिग्रहिकी - जीव अजीव पर ममत्व मूर्छा से लगने वाली क्रिया पारिग्रहिकी क्रिया है। इसके दो भेद हैं - जीवपारिग्रहिकी और अजीवपारिग्रहिकी। द्विपद दास, दासी और चतुष्पद गाय, घोड़े आदि का संग्रह कर उन पर ममत्व मूर्छा भाव रखना जीवपारिग्रहिकी है। धन, धान्य, क्षेत्र, वास्तु, सोने, चांदी आदि अजीव पदार्थों का संग्रह कर उन पर ममत्व मूर्छा रखना अजीवपारिग्रहिकी है। ८. मायाप्रत्ययिकी - माया के आचरण से लगने वाली क्रिया मायाप्रत्ययिकी है। इसके दो भेद – आत्मभाववंचनता, परभाववंचनता। अन्तर के कुटिल भावों को छिपा कर बाहर सरलता का प्रदर्शन करना, धर्माचरण में प्रमत्त होते हुए भी अपने को क्रियान्वित दिखाना आत्मभाववंचनता है। जाली लेख, झूठे तोल माप आदि से दूसरों को ठगना परभाव-वंचनता है। ९. अप्रत्याख्यान क्रिया - त्याग प्रत्याख्यान नहीं करने से लगने वाली क्रिया अप्रत्याख्यान क्रिया है। त्याग प्रत्याख्यान जीव

विषयक और अजीव विषयक होते हैं, इसलिये इस क्रिया के जीव-प्रत्याख्यान क्रिया और अजीवप्रत्याख्यान क्रिया – ये दो भेद हैं। १०. मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी (मिच्छांदसणवत्तिया) तत्त्व में अतत्त्व का और अतत्त्व में तत्त्व का श्रद्धान रखना अथवा हीन अधिक मानना मिथ्यादर्शन है। मिथ्यादर्शन से लगने वाली क्रिया मिथ्यादर्शन-प्रत्ययिकी है। इसके दो भेद– अनभिगृहीत मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी और अभिगृहीत मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी। जिन जीवों ने अन्यतीर्थियों के मत को बिल्कुल नहीं जाना है और न ग्रहण किया है, ऐसे संज्ञी या असंज्ञी जीवों के अनभिगृहीत मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया होती है। अभिगृहीत मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया के दो भेद - हीनातिरिक्त मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी (ऊणाइरित्त मिच्छादंसणवत्तिया) और तद्व्यतिरिक्त मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी (तव्वइरित्त मिच्छादंसणवत्तिया)। सर्वज्ञ भगवान् ने जो वस्तु का स्वरूप बताया है उससे हीन, अधिक मानना हीनातिरिक्त मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया है। जैसे आत्मा तिल, जौ अथवा अंगुष्ठ प्रमाण है अथवा आत्मा सर्वव्यापक है, इस प्रकार आत्मा का प्रमाण हीन, अधिक मानना। वस्तु का जैसा स्वरूप है उससे भिन्न-विपरीत श्रद्धान करना तद्व्यतिरिक्त मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया है, जैसे कुदेव, कुगुरु, कुधर्म को सच्चे देव, गुरु, धर्म समझना। ११. दृष्टिजा (दिट्ठिया) - राग, द्वेषपूर्वक वस्तुओं को देखने से लगने वाली क्रिया दृष्टिजा है। इसके दो भेद - जीवदृष्टिजा और अजीवदृष्टिजा। हाथी, घोड़े आदि को देखकर राग-द्वेष करना, जीवदृष्टिजा क्रिया है। चित्र, महल आदि अजीव जड़ वस्तुओं को देखकर उनमें राग-द्वेष करना अजीवदृष्टिजा क्रिया

है। १२. स्पृष्टिजा, पृष्टिकी (पुट्ठिया) - राग-द्वेष के वश होकर जीव अजीव का स्पर्श करने से लगने वाली क्रिया स्पृष्टिजा क्रिया है। अथवा राग-द्वेष के वश होकर जीव अजीव विषयक प्रश्न पूछने से लगने वाली क्रिया पृष्टिकी क्रिया है। इसके दो भेद हैं - जीव-स्पृष्टिजा और अजीव-स्पृष्टिजा अथवा जीव-पृष्टिकी और अजीव-पृष्टिकी। १३. प्रातीत्यिकी (पाडुच्चिया) - जीव, अजीव के आश्रय से जो राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है उससे लगने वाली क्रिया प्रातीत्यिकी क्रिया है। जीव के आश्रय से राग द्वेष होकर लगने वाली क्रिया जीवप्रातीत्यिकी है और अजीव के आश्रय से राग-द्वेष होकर लगने वाली क्रिया अजीवप्रातीत्यिकी है। इस प्रकार प्रातीत्यिकी क्रिया के दो भेद हैं। १४. सामंतोपनिपातिकी (सामंतोवणिवाइया) - चारों ओर से लोग आकर किसी के हाथी, घोड़े, गाय आदि जीव की अथवा रथ, मकान, वस्त्र, आभूषण आदि अजीव वस्तु की प्रशंसा करते हैं, उसे सुनकर स्वामी खुश होता है, इससे लगने वाली क्रिया सामन्तोपनिपातिकी क्रिया है। जीव की प्रशंसा सुनकर हर्षित होने से लगने वाली क्रिया जीवसामन्तोपनिपातिकी है और अजीव की प्रशंसा सुनकर हर्षित होने से लगने वाली क्रिया अजीव-सामन्तोपनिपातिकी है। इस तरह इस क्रिया के दो भेद हैं। घी, तैल आदि के पात्रों को प्रमादवश खुला छोड़ देने से उसमें चारों ओर से जीव गिर कर मर जाते हैं, इससे लगने वाली क्रिया सामन्तोपतिपानिकी क्रिया कहलाती है। १५. नैसृष्टिकी (नेसत्थिया) - अयतना से जीव अजीव वस्तु को फैंकने से लगने वाली क्रिया नैसृष्टिकी क्रिया है। इसके दो भेद हैं - जीवनैसृष्टिकी और

अजीवनैसृष्टिकी। फव्वारे से जल छोड़ना अथवा वनस्पति में पानी डालना इससे लगने वाली क्रिया जीवनैसृष्टिकी क्रिया है। गोफन से पत्थर फैंकना, धनुष से बाण छोड़ना, इससे लगने वाली क्रिया अजीवनैसृष्टिकी है। १६. स्वहस्तिकी (साहत्थिया) - अपने हाथ में लिये हुए जीव अथवा अजीव शस्त्र आदि द्वारा किसी जीव को मारने से अथवा अपने हाथ से जीव अथवा अजीव वस्त्र पात्रादि के ताड़न से लगने वाली क्रिया स्वहस्तिकी क्रिया है। जीव और अजीव की अपेक्षा इसके दो भेद हैं - जीवस्वहस्तिकी और अजीवस्वहस्तिकी। १७. आज्ञापनिकी अथवा आनयनिकी (आणवणिया) - जीव अथवा अजीव के सम्बन्ध में आज्ञा देने से लगने वाली क्रिया आज्ञापनिकी क्रिया है। जीव अथवा अजीव को मंगाने से लगने वाली क्रिया आज्ञापनिकी क्रिया है। जीव, अजीव रूप विषय के भेद से इसके दो भेद हैं - जीवआज्ञापनिकी और अजीवआज्ञापनिकी। १८. वैदारणिकी क्रिया (विदारणिया) - जीव अजीव का छेदन, भेदन, चीर-फाड़ से लगने वाली क्रिया वैदारणिकी क्रिया है। इसके दो भेद हैं - जीववैदारणिकी और अजीववैदारणिकी। जीव के छेदन, भेदन, चीर-फाड़ से लगने वाली क्रिया जीववैदारणिकी क्रिया है। अजीव के चीर-फाड़ से लगने वाली क्रिया अजीववैदारणिकी क्रिया है। व्यापार में भाव का फर्क होने पर दलाल भाव ऊंचा-नीचा कर सौदा करा देता है, उससे लगने वाली क्रिया भी वैदारणिकी क्रिया कहलाती है। अथवा ठगने की बुद्धि से जीव अजीव के असत् गुणों की प्रशंसा से लगने वाली क्रिया भी वैदारणिकी क्रिया कही जाती है। १९. अनाभोगप्रत्ययिकी (अणाभोगवत्तिया) - बिना उपयोग असाव-

धानी से वस्त्र पात्र ग्रहण करने और और रखने से, बिना उपयोग प्रमार्जन से तथा बिना उपयोग चलने फिरने आदि से लगने वाली क्रिया अनाभोगप्रत्ययिकी क्रिया है। इसके दो भेद – अनायुक्त आदानता और अनायुक्त प्रमार्जनता। बिना उपयोग के असावधानी से देखे बिना वस्तु ग्रहण करने से लगने वाली क्रिया अनायुक्त आदानता है। बिना उपयोग के प्रमार्जन से लगने वाली क्रिया अनायुक्त प्रमार्जनता है। २०. अनवकांक्षाप्रत्ययिकी – (अणवकंखवत्तिया)– यह लोक परलोक की परवाह न कर दोनों लोक विरोधी हिंसा, चोरी आदि के आचरण से लगने वाली क्रिया अनवकांक्षाप्रत्ययिकी क्रिया है। स्व पर शरीर की परवाह किये बिना उसे क्षति पहुंचाने वाले व्यापार से लगने वाली क्रिया अनवकांक्षाप्रत्ययिकी क्रिया है। इसके इहलोक परलोक की अपेक्षा इहलोक अनवकांक्षा-प्रत्ययिकी और परलोक अनवकांक्षाप्रत्ययिकी, ये दो भेद हैं। इसी प्रकार स्व पर शरीर की अपेक्षा आत्मशरीर अनवकांक्षाप्रत्ययिकी और परशरीर अनवकांक्षाप्रत्ययिकी यह दो भेद हैं। २१. प्रेमप्रत्ययिकी (पिज्जवत्तिया) – रागवश माया और लोभ से प्रेम उत्पन्न करने वाला वचन बोलना प्रेमप्रत्ययिकी क्रिया है। इसके दो भेद हैं - मायाप्रेमप्रत्ययिकी और लोभप्रेमप्रत्ययिकी। २२. द्वेषप्रत्ययिकी (दोसवत्तिया) - द्वेषवश होकर स्वयं क्रोध मान करने से तथा सामने वाले को क्रोध मान उत्पन्न हो ऐसा व्यवहार करने से लगने वाली क्रिया द्वेषप्रत्ययिकी है। इसके दो भेद हैं – क्रोधद्वेषप्रत्ययिकी और मानद्वेषप्रत्ययिकी। २३. प्रयोगक्रिया -प्रयोगप्रत्ययिकी (अणउपयोगवत्तिया) आर्त रौद्र ध्यान करना, तीर्थकरों द्वारा गर्हित

सावद्य भाषा बोलना तथा प्रमादपूर्वक गमनागमनादि क्रियाएं करना, इस प्रकार के मन, वचन, काया के व्यापारों से लगने वाली क्रिया प्रयोगक्रिया कहलाती है। मन, वचन, काया के भेद से इस क्रिया के मनप्रयोगक्रिया, वचनप्रयोगक्रिया और कायप्रयोगक्रिया, ये तीन भेद हैं। २४. समुदानक्रिया -(समुदाणकिरिया) जिस क्रिया से आठ कर्मों का समूह ग्रहण किया जाता है अथवा नाटक, सिनेमा, मेले आदि में एकत्रित जीवों के सरीखे अध्यवसायों तथा हंसने, खेलने आरम्भ की प्रशंसा करने रूप शरीर की क्रियाओं से एक साथ समुदाय रूप में सभी के जो सरीखा कर्मबन्ध होता है, उसे समुदानक्रिया कहते हैं। ये सभी जीव जन्मान्तर में एक साथ इन कर्मों का फल भोगते हैं। २५. ईर्यापथिकी (इरियावहिया) - अप्रमत्त संयमी, उपशांतमोह, क्षीणमोह और केवली भगवान् के उपयोगपूर्वक गमनागमन करते, सोते-बैठते, खाते-पीते, भाषण करते, वस्त्र-पात्रादि रखते, ग्रहण करते समय योगवश जो साता-वेदनीय कर्म का बन्ध होता है उसे ईर्यापथिकी क्रिया कहते हैं। यह क्रिया पहले समय में बंधती है, दूसरे समय में वेदी जाती है और तीसरे समय में उसकी निर्जरा होती है।

१७. उत्पल - कमल का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक ग्यारहवां, उद्देशा पहला)

गाथा -

उववाओ परिमाणं, अवहारुच्चत्तबंधवेदे य ।
उदए उदीरणाए, लेस्सा दिट्ठि य णाणे य।। १।।

ऊसासगे य आहारे।
जोगुवओगे वण्ण रसमाई,
विरई किरिया बंधे, सन्न कसायित्थि बंधे य।। २।।
सण्णिदिय अणुबंधे, संवेहाहार ठिइ समुग्घाए।
चयणं मूलादिसु य, उववाओ सव्व जीवाणं।। ३।।

अर्थ - १ उपपात, २ परिमाण, ३ अपहार, ४ ऊंचाई अवगाहना, ५ बन्ध, ६ वेदक, ७ उदय, ८ उदीरणा, ९ लेश्या, १० दृष्टि, ११ ज्ञान, १२ योग, १३ उपयोग, १४ वर्ण, १५ रसादि, १६ उच्छ्वास, १७ आहार, १८ विरति, १९ क्रिया, २० बन्धक, २१ संज्ञा, २२ कषाय, २३ स्त्रीवेदादि, २४ बंध, २५ संज्ञी, २६ इन्द्रिय, २७ अनुबन्ध, २८ संवेध, २९ आहार, ३० स्थिति, ३१ समुद्घात, ३२ च्यवन, ३३ सब जीवों का मूलादि में उपपात जन्म।

१ उपपात- अहो भगवन्! उत्पल-कमल के मूल में एक जीव है और मूल की नेश्राय में अनेक जीव हैं। अहो भगवन्! कितने स्थानों से आकर उत्पन्न होते हैं? हे गौतम * ७४ स्थानों से आकर उत्पन्न होते हैं।

२ परिमाणद्वार- अहो भगवन्! उत्पल-कमल में एक कितने जीव हैं? हे गौतम! उत्पल-कमल के मूल में

* स्थानों का खुलासा-तिर्यंच के ४६ लिए हैं। वनस्पति के ६ भेद होते हैं, उनको यहां ४ भेदों में ही गर्भित कर दिया है। जैसे कि सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त ये ४ भेद ही लिये हैं, मनुष्य के ३ (संज्ञी मनुष्य के पर्याप्त और अपर्याप्त, तथा सम्मूर्च्छिम), देवता के २५ (१० भवनपति, ८ वाणव्यन्तर, ५ ज्योतिषी, पहला दूसरा देवलोक), इन ७४ स्थानों से आकर उपजते हैं।

समय में कितने जीव उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट संख्याता असंख्याता उपजते हैं।

३ अपहारद्वार- अहो भगवन् ! उत्पल-कमल में एक एक समय में एक एक जीव अपहरते (निकालते हुए) कितना समय लगता है ? हे गौतम ! असंख्याता अवसर्पिणी उत्सर्पिणी के समय होवें, उतना काल लगता है। (किसी ने अपहरा नहीं, अपहरता नहीं, अपहरेगा नहीं, यह तो सिर्फ उपमा बतलाई गई है)।

४ अवगाहनाद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल की अवगाहना कितनी होती है ? हे गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट १००० योजन झाझेरी (कमल की नाल की अपेक्षा से)।

५ बन्धद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल में ज्ञानावरणीय - कर्म के बन्धक कितने हैं ? हे गौतम ! ज्ञानावरणीयकर्म का बन्धक एक है तथा बन्धक बहुत हैं। इसी तरह आयुष्य के सिवाय ६ कर्म और कह देना। सात कर्म के ये १४ भांगे हुए। आयुष्य-कर्म के ८ भांगे - असंजोगी चार, दो संजोगी चार। (१) बन्धक एक, अथवा (२) अबन्धक एक, अथवा (३) बन्धक बहुत, अथवा (४) अबन्धक बहुत, अथवा (५) बन्धक एक अबन्धक एक, अथवा (६) बन्धक एक अबन्धक बहुत, अथवा, (७) बन्धक बहुत अबन्धक एक, अथवा, (८) बन्धक बहुत अबन्धक बहुत। सर्वभांगा २२ (१४ + ८ = २२) हुए।

६ वेदकद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल में ज्ञानावरणीयकर्म के वेदक कितने हैं ? हे गौतम ! ज्ञानावरणीय-

र्म का वेदंक एक तथा वेदक बहुत। इसी तरह ७ कर्म और कह देना, ये आठ कर्म के १६ भांगे हुए, नवरं (किन्तु) वेदनीयकर्म में सातावेदनीय, असातावेदनीय के ८ भांगे कहना, कुल भांगे २४ हुए।

७ उदयद्वार - अहो भगवन्! उत्पल-कमल में ज्ञानावरणीयकर्म के उदय वाले कितने जीव पाये जाते हैं ? हे गौतम ! एक जीव तथा बहुत जीव पाये जाते हैं। इसी तरह ७ कर्म के उदय वाले जीव कह देना, सर्व १६ भांगे (८ X २ = १६) हुए।

८ उदीरणाद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल में ज्ञानावरणीयकर्म के उदीरक (उदीरणा करने वाले) जीव कितने पाये जाते हैं ? हे गौतम ! एक जीव तथा बहुत जीव पाये जाते हैं। इसी तरह वेदनीय और आयुष्य को छोड़कर बाकी पांच कर्म और कह देना। वेदनीयकर्म और आयुष्यकर्म के आठ आठ भांगे कह देना। सर्व २८ भांगे (६ X २ = १२+८+८ = २८) हुए।

९ लेश्याद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल में कितनी लेश्याएं पाई जाती हैं ? हे गौतम ! चार लेश्याएं पाई जाती हैं। जिनके ८० भांगे होते हैं, असंजोगी ८, द्विसंजोगी २४, तीनसंजोगी ३२, चारसंजोगी १६। ये सब ८० भांगे (८+२४+३२+१६=८०) हुए।

असंजोगी ८ भांगे

१ कृष्ण का एक,
२ नील का एक,
३ कापोत का एक,

४ तेजो का एक,
५ कृष्ण के बहुत,
६ नील के बहुत,
७ कापोत के बहुत,
८ तेजो के बहुत

द्विकसंजोगी के २४ भांगे

१ कृष्ण का एक, नील का एक,
२ कृष्ण का एक, नील के बहुत,
३ कृष्ण के बहुत, नील का एक,
४ कृष्ण के बहुत, नील के बहुत,
५ कृष्ण का एक, कापोत का एक,
६ कृष्ण का एक, कापोत के बहुत,
७ कृष्ण के बहुत, कापोत का एक,
८ कृष्ण के बहुत, कापोत के बहुत,
९ कृष्ण का एक, तेजो का एक,
१० कृष्ण का एक, तेजो के बहुत,
११ कृष्ण के बहुत, तेजो का एक,
१२ कृष्ण के बहुत, तेजो के बहुत,
१३ नील का एक, कापोत का एक,
१४ नील का एक, कापोत के बहुत,
१५ नील के बहुत, कापोत का एक,
१६ नील के बहुत, कापोत के बहुत,
१७ नील का एक, तेजो का एक,

१८ नील का एक, तेजो के बहुत,
१९ नील के बहुत, तेजो का एक,
२० नील के बहुत, तेजो के बहुत,
२१ कापोत का एक, तेजो का एक,
२२ कापोत का एक, तेजो के बहुत,
२३ कापोत के बहुत, तेजो का एक,
२४ कापोत के बहुत, तेजो के बहुत।

त्रिकसंजोगी ३२ भांगे

१ कृष्ण का एक, नील का एक, कापोत का एक,
२ कृष्ण का एक, नील का एक, कापोत के बहुत,
३ कृष्ण का एक, नील के बहुत, कापोत का एक,
४ कृष्ण का एक, नील के बहुत, कापोत के बहुत,
५ कृष्ण के बहुत, नील का एक, कापोत का एक,
६ कृष्ण के बहुत, नील का एक, कापोत के बहुत,
७ कृष्ण के बहुत, नील के बहुत, कापोत का एक,
८ कृष्ण के बहुत, नील के बहुत, कापोत के बहुत,
९ कृष्ण का एक, नील का एक, तेजो का एक,
१० कृष्ण का एक, नील का एक, तेजो के बहुत,
११ कृष्ण का एक, नील के बहुत, तेजो का एक,
१२ कृष्ण का एक, नील के बहुत, तेजो के बहुत,
१३ कृष्ण के बहुत, नील का एक, तेजो का एक,

१४ कृष्ण के बहुत, नील का एक, तेजो के बहुत,
१५ कृष्ण के बहुत, नील के बहुत, तेजो का एक,
१६ कृष्ण के बहुत, नील के बहुत, तेजो के बहुत,
१७ कृष्ण का एक, कापोत का एक, तेजो का एक,
१८ कृष्ण का एक, कापोत का एक, तेजो के बहुत,
१९ कृष्ण का एक, कापोत के बहुत, तेजो का एक,
२० कृष्ण का एक, कापोत के बहुत, तेजो के बहुत,
२१ कृष्ण के बहुत, कापोत का एक, तेजो का एक,
२२ कृष्ण के बहुत, कापोत का एक, तेजो के बहुत,
२३ कृष्ण के बहुत, कापोत के बहुत, तेजो का एक,
२४ कृष्ण के बहुत, कापोत के बहुत, तेजो के बहुत,
२५ नील का एक, कापोत का एक, तेजो का एक,
२६ नील का एक, कापोत का एक, तेजो के बहुत,
२७ नील का एक, कापोत के बहुत, तेजो का एक,
२८ नील का एक, कापोत के बहुत, तेजो के बहुत,
२९ नील के बहुत, कापोत का एक, तेजो का एक,
३० नील के बहुत, कापोत का एक, तेजो के बहुत,
३१ नील के बहुत, कापोत के बहुत, तेजो का एक,
३२ नील के बहुत, कापोत के बहुत, तेजो के बहुत।

*** चारसंजोगी १६ भांगे**

१ कृष्ण का एक, नील का एक, कापोत का एक, तेजो का एक,

** द्विकसंजोगी के आंक- ११, १३, ३१, ३३*

त्रिकसंजोगी के आंक-१११, ११३, १३१, १३३, ३११, ३१३, ३३१,

२ कृष्ण का एक, नील का एक, कापोत का एक, तेजो के बहुत,
३ कृष्ण का एक, नील का एक, कापोत के बहुत, तेजो का एक,
४ कृष्ण का एक, नील का एक, कापोत के बहुत, तेजो के बहुत,
५ कृष्ण का एक, नील के बहुत, कापोत का एक, तेजो का एक,
६ कृष्ण का एक, नील के बहुत, कापोत का एक, तेजो के बहुत,
७ कृष्ण का एक, नील के बहुत, कापोत के बहुत, तेजो का एक,
८ कृष्ण का एक, नील के बहुत, कापोत के बहुत, तेजो के बहुत,
९ कृष्ण के बहुत, नील का एक, कापोत का एक, तेजो का एक,
१० कृष्ण के बहुत, नील का एक, कापोत का एक, तेजो के बहुत,
११ कृष्ण के बहुत, नील का एक, कापोत के बहुत, तेजो का एक,
१२ कृष्ण के बहुत, नील का एक, कापोत के बहुत, तेजो के बहुत,
१३ कृष्ण के बहुत, नील के बहुत, कापोत का एक, तेजो का एक,
१४ कृष्ण के बहुत, नील के बहुत, कापोत का एक, तेजो के बहुत,
१५ कृष्ण के बहुत, नील के बहुत, कापोत के बहुत, तेजो का एक,
१६ कृष्ण के बहुत, नील के बहुत, कापोत के बहुत, तेजो के बहुत।
ये सब ८० भांगे हुए।

३३३।

चारसंजोगी के आंक– ११११, १११३, ११३१, ११३३, १३११, १३१३, १३३१, १३३३, ३१११, ३११३, ३१३१, ३१३३, ३३११, ३३१३, ३३३१, ३३३३।

नोट–अंकों में जहां १ है वहां 'एक' कहना चाहिए और जहां ३ है वहां 'बहुत' कहना चाहिए। इस तरह अंकों पर ध्यान देने से भांगे अच्छी तरह बोले जा सकते हैं।

१० दृष्टिद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल में दृष्टि कितनी होती हैं ? हे गौतम ! एक - मिथ्यादृष्टि एक, मिथ्यादृष्टि बहुत।

११ ज्ञानद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल के जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? हे गौतम ! ज्ञानी नहीं, अज्ञानी हैं - अज्ञानी एक, अज्ञानी बहुत।

१२ योगद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल के जीव क्या मनयोगी हैं, वचनयोगी हैं या काययोगी हैं ? हे गौतम ! मनयोगी नहीं, वचनयोगी नहीं, काययोगी हैं - काययोगी एक, काययोगी बहुत।

१३ उपयोगद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल के जीव साकार-उपयोग वाले हैं या अनाकार-उपयोग वाले हैं ? हे गौतम ! साकार-उपयोग वाले भी हैं और अनाकार-उपयोग वाले भी हैं। इनके ८ भांगे होते हैं - असंजोगी ४, द्विसंजोगी ४। (१) साकार-उपयोग वाला एक, (२) अनाकार-उपयोग वाला एक, (३) साकार-उपयोग वाले बहुत, (४) अनाकार-उपयोग वाले बहुत। (५) साकार-उपयोग वाला एक, अनाकार उपयोग वाला एक। (६) साकार-उपयोग वाला एक, अनाकार उपयोग वाले बहुत। (७) साकार-उपयोग वाले बहुत, अनाकार उपयोग वाला एक। (८) साकार-उपयोग वाले बहुत, अनाकार-उपयोग वाले बहुत।

(१४,१५) वर्णादिद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल में कितने वर्ण, कितने गंध, कितने रस, कितने स्पर्श होते हैं ? हे गौतम ! उत्पल-कमल के जीव की अपेक्षा वर्ण नहीं, गंध नहीं, रस

नहीं, स्पर्श नहीं। उत्पल-कमल के औदारिक तैजस शरीर की अपेक्षा ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श होते हैं और कार्मण शरीर की अपेक्षा ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ४ स्पर्श होते हैं।

१६ उच्छ्वास -निःश्वासद्वार - अहो भगवन्! उत्पल-कमल के जीव उच्छ्वास (श्वास लेने वाले) हैं या निःश्वासक (श्वास छोड़ने वाले) हैं या नोउच्छ्वासक-निःश्वासक हैं ? हे गौतम ! उत्पल-कमल में तीनों ही हैं। इनके २६ भांगे होते हैं - असंजोगी ६, द्विकसंजोगी १२, त्रिकसंजोगी ८। वे इस प्रकार हैं -

असंजोगी ६ भांगे

१ उच्छ्वासक एक, अथवा,

२ निःश्वासक एक, अथवा,

३ नोउच्छ्वासक-निःश्वासक एक, अथवा,

४ उच्छ्वासक बहुत, अथवा,

५ निःश्वासक बहुत, अथवा,

६ नोउच्छ्वासक-निःश्वासक बहुत।

द्विकसंजोगी १२ भांगे

१ उच्छ्वासक एक, निःश्वासक एक, अथवा

२ उच्छ्वासक एक, निःश्वासक बहुत, अथवा

३ उच्छ्वासक बहुत, निःश्वासक एक, अथवा

४ उच्छ्वासक बहुत, निःश्वासक बहुत, अथवा

५ उच्छ्वासक एक, नोउच्छ्वासक-निःश्वासक एक, अथवा

६ उच्छ्वासक एक, नोउच्छ्वासक-निःश्वासक बहुत, अथवा

७ उच्छ्वासक बहुत, नोउच्छ्वासक-निःश्वासक एक, अथवा

८ उच्छ्वासक बहुत, नोउच्छ्वासक-नि:श्वासक बहुत, अथवा
९ नि:श्वासक एक, नोउच्छ्वासक-नि:श्वासक एक, अथवा
१० नि:श्वासक एक, नोउच्छ्वासक-नि:श्वासक बहुत, अथवा
११ नि:श्वासक बहुत, नोउच्छ्वासक-नि:श्वासक एक, अथवा
१२ नि:श्वासक बहुत, नोउच्छ्वासक-नि:श्वासक बहुत।

त्रिकसंजोगी ८ भांगे

१ उच्छ्वासक एक, नि:श्वासक एक, नोउच्छ्वासक-नि:श्वासक एक, अथवा

२ उच्छ्वासक एक, नि:श्वासक एक, नोउच्छ्वासक-नि:श्वासक बहुत, अथवा

३ उच्छ्वासक एक, नि:श्वासक बहुत, नोउच्छ्वासक-नि:श्वासक एक, अथवा

४ उच्छ्वासक एक, नि:श्वासक बहुत, नोउच्छ्वासक-नि:श्वासक बहुत, अथवा

५ उच्छ्वासक बहुत, नि:श्वासक एक, नोउच्छ्वासक-नि:श्वासक एक, अथवा

६ उच्छ्वासक बहुत, नि:श्वासक एक, नोउच्छ्वासक-नि:श्वासक बहुत, अथवा

७ उच्छ्वासक बहुत, नि:श्वासक बहुत, नोउच्छ्वासक-नि:श्वासक एक, अथवा

८ उच्छ्वासक बहुत, नि:श्वासक बहुत, नो-उच्छ्वासक-नि:श्वासक बहुत।

१७ आहारकद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल का जीव

आहारक है या अनाहारक ? हे गौतम ! आहारक भी है, अनाहारक भी है। इसके ८ भांगे होते हैं - असंजोगी ४, द्विकसंजोगी ४। (साकार-उपयोग, अनाकार-उपयोग की तरह कह देना)

१८ विरतिद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल का जीव विरति है या अविरति है या विरताविरति (देशविरति) है ? हे गौतम ! उत्पल-कमल का जीव अविरति है - अविरति एक, अविरति बहुत।

१९ क्रियाद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल का जीव सक्रिय है या अक्रिय ? हे गौतम ! सक्रिय है - सक्रिय एक, सक्रिय बहुत।

२० बन्धकद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल का जीव सात कर्मबन्धक है या आठ कर्मबन्धक है ? हे गौतम ! सात कर्मबन्धक भी है, आठ कर्मबन्धक भी है। इसके आठ भांगे होते हैं, असंजोगी ४, द्विकसंजोगी ४ (साकार-उपयोग अनाकार-उपयोग की तरह कह देना)।

२१ संज्ञाद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल के जीवों में कितनी संज्ञाएं पाई जाती हैं ? हे गौतम ! चारों संज्ञाएं (आहार-संज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा) पाई जाती हैं। इसके ८० भांगे होते हैं, सो लेश्याद्वार के अनुसार कह देना।

२२ कषायद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल के जीवों में कितनी कषाय पाई जाती हैं ? हे गौतम ! चारों ही कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) पाई जाती हैं। इसके ८० भांगे होते हैं सो लेश्याद्वार के अनुसार कह देना।

२३ वेदद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल के जीव स्त्रीवेदी हैं या पुरुषवेदी हैं या नपुंसकवेदी हैं ? हे गौतम ! नपुंसकवेदी हैं, नपुंसकवेदी एक, नपुंसकवेदी बहुत।

२४ वेदबन्धद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल के जीव स्त्रीवेद के बन्धक हैं या पुरुषवेद के बन्धक हैं या नपुंसकवेद के बन्धक हैं ? हे गौतम ! तीनों वेद के बन्धक हैं। इनके २६ भांगे होते हैं - असंजोगी ६, द्विकसंजोगी १२, त्रिकसंजोगी ८। उच्छ्वासक-नि:श्वासक की तरह कह देना।

२५ संज्ञीद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल के जीव संज्ञी हैं या असंज्ञी ? हे गौतम ! असंज्ञी हैं - असंज्ञी एक, असंज्ञी बहुत।

२६ इन्द्रियद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल के जीव सइन्द्रिय हैं या अनिन्द्रिय ? हे गौतम ! सइन्द्रिय हैं - स्पर्शेन्द्रिय वाले एक, स्पर्शेन्द्रिय वाले बहुत।

२७ अनुबन्धद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल का अनुबन्धकाल कितना है ? (उत्पल-कमल का जीव उत्पलपने कितने काल तक रहता है ?) हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट असंख्याता काल का है।

२८ संवेधद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल का कायसंवेध (कायसंवेहा) कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! दो प्रकार का -१ भवादेसेणं (भव की अपेक्षा-अर्थात् कितना भव करता है), २ कालादेसेणं (काल की अपेक्षा-अर्थात् कितने काल तक गमनागमन करता है)। उत्पल-कमल का जीव चार स्थावरपने

(पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय) भवादेसेणं (चार स्थावर में जावे, फिर उत्पल में आवे) जघन्य दो भव, उत्कृष्ट असंख्यात भव करता है। कालादेसेणं जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट असंख्यात काल। उत्पल-कमल का जीव वनस्पतिपने भवादेसेणं जघन्य दो भव, उत्कृष्ट अनंत भव करता है। कालादेसेणं जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्त काल (वनस्पतिकाल)। उत्पल-कमल का जीव तीन विकलेन्द्रियपणे भवादेसेणं जघन्य दो भव, उत्कृष्ट संख्याता भव करता है। कालादेसेणं जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट संख्यातकाल। उत्पल-कमल का जीव तिर्यंच पंचेन्द्रियपने और मनुष्य पंचेन्द्रियपने भवादेसेणं जघन्य दो भव, उत्कृष्ट आठ भव करता है। कालादेसेणं जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट प्रत्येक करोड़ पूर्व।

२९ आहारकद्वार- अहो भगवन् ! उत्पल-कमल का जीव कितनी दिशा का आहार लेता है ? हे गौतम ! द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव यावत् २८८ बोल नियमा ६ छह दिशा का आहार लेता है।

३० स्थितिद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल के जीवों की स्थिति कितने काल की है ? हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है।

३१ समुद्घातद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल के जीवों में कितनी समुद्घात पाई जाती हैं ? हे गौतम ! तीन समुद्घात पाई जाती हैं (वेदनीयसमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात)।

समोहिया-असमोहियाद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल के जीव समोहिया (समुद्घात करके) मरण मरते हैं या असमोहिया

(समुद्घात करे बिना) मरण मरते हैं ? हे गौतम ! समोहिया मरण भी मरते हैं और असमोहिया मरण भी मरते हैं।

३२ च्यवनद्वार - अहो भगवन् ! उत्पल-कमल के जीव मर कर कितने स्थान में उपजते हैं ? हे गौतम ! ४९ स्थान में उपजते हैं (४६ तिर्यंच के भेद * ३ मनुष्य के भेद– पर्याप्त अपर्याप्त और संमूर्च्छिम) = ४९।

३३ उपपातद्वार - अहो भगवन् ! क्या सब प्राण, भूत, जीव, सत्त्व उत्पल-कमल के मूलपणे, कंदपणे, नालपणे, पत्तापणे, केसरापणे, कर्णिकापणे, थिभुगपणे (पत्ता का उत्पत्ति स्थान) पहले उत्पन्न हुए हैं ? हे गौतम ! अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं।

श्री भगवतीसूत्र के ग्यारहवें शतक के उद्देशा २ से ८ तक में शालू, पलाश, कुंभी, नाली, पद्म, कर्णिका, नलिन का थोकड़ा इस प्रकार है –

१ ग्यारहवें शतक के दूसरे उद्देशे में - शालूक-एक पत्ते वाला शालूक (उत्पलकन्द) उद्देशा उत्पल-कमल की तरह कह देना, किन्तु इतनी विशेषता है कि अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक धनुष की होती है।

२ ग्यारहवें शतक के तीसरे उद्देशे में पलाश (एक जाति का वृक्ष) उद्देशा उत्पल-कमल की तरह कह देना किन्तु इतनी विशेषता है कि देवता नहीं उपजते हैं, आगत ४९ की, लेश्या ३,

---

** यहां वनस्पति के ६ भेद न कर सूक्ष्म बादर के पर्याप्त और अपर्याप्त ये चार भेद करने से तिर्यंच के ४६ भेद होते हैं।*

भांगा २६, अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक गाऊ (२ से ९ कोस तक) की होती है।

३ ग्यारहवें शतक के चौथे उद्देशे में कुम्भी (वनस्पति विशेष) का उद्देशा पलाश की तरह कह देना किन्तु इतनी विशेषता है कि स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट प्रत्येक वर्ष की होती है।

४ ग्यारहवें शतक के पांचवें उद्देशे में नाली का (एक प्रकार की वनस्पति) उद्देशा कुम्भी की तरह कह देना।

५ ग्यारहवें शतक के छठे, सातवें, आठवें उद्देशे में पद्म (एक पत्ते वाला कमल), कर्णिका (वनस्पति विशेष), नलिन का (एक प्रकार का कमल) उद्देशा उत्पल-कमल की तरह कह देना चाहिए।

१८. लोक का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक ग्यारहवां, उद्देशा दसवां)

१ - अहो भगवन् ! लोक कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! लोक चार प्रकार का है - द्रव्यलोक, क्षेत्रलोक, काललोक, भावलोक।

२ - अहो भगवन् ! क्षेत्रलोक कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! क्षेत्रलोक तीन प्रकार का है - अधोलोक, तिर्यग्लोक, ऊर्ध्वलोक।

३ - अहो भगवन् ! अधोलोक कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! सात प्रकार का है - रत्नप्रभापृथ्वी यावत् अधःसप्तमपृथ्वी

(तमस्तमापृथ्वी)। (अधोलोक के ८४ लाख नरकावास हैं। ७ करोड़ ७२ लाख भवनपति देवों के भवन हैं)।

४ - अहो भगवन् ! तिर्यग्लोक कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! असंख्यात प्रकार का है। जम्बूद्वीप आदि असंख्याता द्वीप हैं। लवणसमुद्र से लेकर स्वयंभूरमण समुद्र तक असंख्याता समुद्र हैं।

५ - अहो भगवन् ! ऊर्ध्वलोक कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! पन्द्रह प्रकार का है - सौधर्म देवलोक से अच्युत देवलोक तक १२ देवलोक, नव ग्रैवेयक विमान, अनुत्तरविमान, ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी (सिद्धशाला)।

६ - अहो भगवन् ! अधोलोक का कैसा संठाण (संस्थान-आकार) है ? हे गौतम ! अधोलोक तिपाई के आकार का है।

७ - अहो भगवन् ! तिर्यग्लोक का कैसा संठाण है ? हे गौतम ! झालर के आकार का है।

८ - अहो भगवन् ! ऊर्ध्वलोक का कैसा संठाण है ? हे गौतम ! ऊर्ध्वलोक खड़ी मृदंग के आकार का है।

९ - अहो भगवन् ! लोक का कैसा संठाण है ? हे गौतम ! सुप्रतिष्ठक (सरावला-एक उल्टा (ऊंधा), उसके ऊपर एक सीधा और उसके ऊपर एक उल्टा) के आकार का है।

१० - अहो भगवन् ! अलोक का कैसा संठाण है ? हे गौतम ! अलोक पोले गोले के आकार का है।

११ - अहो भगवन् ! अधोलोक में क्या जीव है या जीव

का देश है या जीव का प्रदेश है ? अजीव है या अजीव का देश है या अजीव का प्रदेश है ? हे गौतम ! अधोलोक में जीव भी है, जीव का देश भी है, जीव का प्रदेश भी है। अजीव भी है, अजीव का देश भी है, अजीव का प्रदेश भी है।

१२ - अहो भगवन् ! अधोलोक में जीव है तो क्या एकेन्द्रिय है या द्वीन्द्रिय है या त्रीन्द्रिय है या चतुरिन्द्रिय है या पंचेन्द्रिय है या अनिन्द्रिय है ? हे गौतम ! एकेन्द्रिय भी है यावत् अनिन्द्रिय भी है। इन छह के देश भी हैं, प्रदेश भी हैं, ये १८ बोल जीव के हुए।

अजीव के २ भेद - रूपी और अरूपी। रूपी के ४ भेद– स्कन्ध, देश, प्रदेश, परमाणुपुद्गल। अरूपी के ७ भेद– धर्मास्तिकाय का देश एक, प्रदेश बहुत। अधर्मास्तिकाय का देश एक, प्रदेश बहुत। आकाशास्तिकाय का देश एक, प्रदेश बहुत और श्रद्धा-समय (काल)। ये ११ वोल अजीव के हुए। १८ + ११ =२९ बोल हुये।

१३ - अधोलोक नें कहे उसी तरह २९ बोल तिर्यग्लोक में कह देना चाहिये।

१४ - अधोलोक में कहे उसी तरह २८ बोल (काल वर्ज कर) ऊर्ध्वलोक में कह देना चाहिये।

१५ - अहो भगवन् ! लोक में कितने वोल पाये जाते हैं ? हे गौतम ! २९ वोल पावे जाते हैं, अधोलोक की तरह कह देना किन्तु इतनी विशेषता है कि धर्मास्तिकाय आदि के देश की जगह 'स्कन्ध' कहना।

१६ - अहो भगवन् ! अलोक में क्या जीव हैं या जीव के देश हैं या जीव के प्रदेश हैं ? अजीव हैं या अजीव के देश हैं या अजीव के प्रदेश हैं ? हे गौतम ! जीव भी नहीं, जीव के देश भी नहीं, जीव के प्रदेश भी नहीं। अजीव भी नहीं, अजीव के * देश भी नहीं, अजीव के प्रदेश भी नहीं। एक अजीव द्रव्य का देश है, वह भी अगुरुलघु, अनन्त अगुरुलघु गुणों से संयुक्त सर्व आकाश के अनन्तवें भाग ऊणा (कम) है।

१७ - अहो भगवन् ! अधोलोक के एक आकाशप्रदेश पर क्या जीव है या जीव का देश है या जीव का प्रदेश है ? अजीव है या अजीव का देश है या अजीव का प्रदेश है ? हे गौतम ! जीव नहीं, जीव का देश है, जीव का प्रदेश है। अजीव है, अजीव का देश है, अजीव का प्रदेश है। जीव के भांगे २३, अजीव के भांगे ९, सर्व मिला कर ३२ भांगे होते हैं। एक एकेन्द्रिय के बहुत देश (सव्वे वि ताव हुज्जा एगिंदिय देसा), १ बहुत एकेन्द्रियों के बहुत देश, एक द्वीन्द्रिय का एक देश, २ बहुत एकेन्द्रियों के बहुत देश, बहुत द्वीन्द्रियों के बहुत देश। इसी तरह २ त्रीन्द्रियों के, २ चतुरिन्द्रियों के, २ पंचेन्द्रिय के, २ अनिन्द्रिय के, ये ११ भांगे हुए। एकेन्द्रिय के बहुत प्रदेश (सव्वे वि ताव हुज्जा एगिंदिय पएसा), १ बहुत एकेन्द्रियों के बहुत प्रदेश, एक द्वीन्द्रिय के बहुत प्रदेश, २ बहुत एकेन्द्रियों के बहुत प्रदेश, बहुत द्वीन्द्रियों के बहुत प्रदेश। इसी तरह २ त्रीन्द्रिय का, २ चतुरिन्द्रिय का, २ पंचेन्द्रिय का कह देना

यहां अजीव के देश और प्रदेश का निषेध किया है सो बहुवचन की अपेक्षा से है।

चाहिए। १ बहुत एकेन्द्रियों के बहुत प्रदेश, एक अनिन्द्रिय का एक
प्रदेश। २ बहुत एकेन्द्रियों के बहुत प्रदेश, एक अनिन्द्रिय के बहुत
प्रदेश। ३ बहुत एकेन्द्रियों के बहुत प्रदेश, बहुत अनिन्द्रियों के बहुत
प्रदेश। ये प्रदेश की अपेक्षा १२ भांगे हुए। जीव की अपेक्षा सर्व २३
भांगे हुए। धर्मास्तिकाय का स्कंध नहीं है, धर्मास्तिकाय का देश
एक, प्रदेश एक। इसी तरह २ भांगे अधर्मास्तिकाय के कह देना।
पांचवा अद्धासमय। ये पांच भांगे अरूपी के हुए और चार रूपी
पुद्गल के- स्कन्ध, देश, प्रदेश, परमाणु। ये अजीव के ९ भांगे
हुए। देश के ११, प्रदेश के १२ और अजीव के ९, ये सब मिलाकर
३२ भांगे हुए।

१८ - इसी तरह तिर्यग्लोक के एक प्रदेश में ३२ भांगे
कह देना चाहिये।

१९ - इसी तरह ऊर्ध्वलोक के एक प्रदेश में ३१ भांगे
(काल छोड़ कर) कह देना चाहिये।

२० - इसी तरह समुच्चय लोक के एक प्रदेश में ३२ भांगे
कह देना चाहिए।

२१ - अहो भगवन्! अलोक के एक आकाश प्रदेश पर
क्या जीव हैं या जीव देश हैं या जीव के प्रदेश हैं ? अजीव हैं या
अजीव के देश हैं या अजीव के प्रदेश हैं ? हे गौतम ! जीव नहीं,
जीव के देश नहीं, जीव के प्रदेश नहीं। अजीव नहीं, अजीव के
देश नहीं, अजीव के प्रदेश नहीं। केवल एक अजीव का प्रदेश है,
वह अनन्त अगुरुलघु गुण से संयुक्त है। सब आकाश के अनन्तवें
भाग है।

२२ - अहो भगवन् ! द्रव्य से अधोलोक में क्या है ? हे गौतम ! अनन्ता जीवद्रव्य हैं, अनन्ता अजीवद्रव्य हैं, अनन्ता जीव-अजीवद्रव्य हैं।

२३ - इसी तरह तिर्यग्लोक कह देना चाहिये।

२४ - इसी तरह ऊर्ध्वलोक कह देना चाहिये।

२५ - इसी तरह समुच्चय लोक कह देना चाहिये।

२६ - अहो भगवन् ! द्रव्य से अलोक में क्या है ? हे गौतम ! जीवद्रव्य भी नहीं है, अजीवद्रव्य भी नहीं है। जीव-अजीव-द्रव्य भी नहीं है। सिर्फ एक अजीव का एक देश है। वह भी अनन्त अगुरुलघु गुण से संयुक्त है यावत् सर्व आकाश के अनन्तवें भाग न्यून (कम) है।

२७ - अहो भगवन् ! अधोलोक काल की अपेक्षा कब से है ? हे गौतम ! अधोलोक काल की अपेक्षा आदि अन्त रहित है (अनादि-अनन्त है) यावत् नित्य है।

२८ - इसी तरह तिर्यग्लोक कह देना चाहिये।

२९ - इसी तरह ऊर्ध्वलोक कह देना चाहिये।

३० - इसी तरह लोक कह देना चाहिये।

३१ - इसी तरह अलोक कह देना चाहिये।

३२ - अहो भगवन् ! अधोलोक में भाव की अपेक्षा क्या है ? हे गौतम ! अनन्त, वर्णपर्याय, अनन्ता गंधपर्याय, अनन्ता रसपर्याय, अनन्ता स्पर्शपर्याय, अनन्ता अगुरुलघुपर्याय, अनन्ता गुरु-लघुपर्याय हैं।

३३ - इसी तरह तिर्यग्लोक कह देना चाहिये।

३४ - इसी तरह ऊर्ध्वलोक कह देना चाहिये।

३५ - इसी तरह लोक कह देना चाहिये।

३६ - अहो भगवन्! अलोकाकाश में भाव की अपेक्षा क्या है? हे गौतम! वर्णपर्याय भी नहीं यावत् स्पर्शपर्याय भी नहीं। सिर्फ एक अजीव का देश है, वह भी अनन्ता अगुरुलघुगुण से संयुक्त है, सर्व आकाश से अनन्तवें भाग न्यून है।

३७ - अहो भगवन्! लोक कितना बड़ा है? हे गौतम! यथा दृष्टांत - महिड्ढिया (मोटी ऋद्धि वाले) छह देवता इस जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत की चूलिका के चारों तरफ खड़े होवें। नीचे चार दिशाकुमारी देवियां हाथ में बलिपिण्ड लेकर जम्बूद्वीप की जगती पर चारों दिशाओं में बाहर की तरफ मुंह करके खड़ी होवें। फिर वे देवियां एक साथ बलिपिण्ड को बाहर फैंके। उसी समय उन छहों देवताओं में से कोई भी एक देवता चारों ही बलिपिण्डों को नीचे न पड़ने देवे, हाथ में ही ग्रहण कर लेवे, ऐसी शीघ्र गति वाले वे छहों देवता लोक का नाप करने के लिए छहों दिशाओं में (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे) जावें। उसी दिन उसी समय एक गाथापति के हजार वर्ष की आयुष्य वाला एक बालक उत्पन्न हुआ। बाद में उस बालक के माता पिता कालधर्म को प्राप्त हो गये (मर गये)। उतने समय में भी वे देवता लोक का अन्त प्राप्त नहीं कर सके। वह बालक स्वयं कालधर्म को प्राप्त हो गया। उतने समय में भी वे देवता लोक का अन्त प्राप्त नहीं कर सके। उस बालक के हाड, हाड की मींजी क्षय हो गये तो वे लोक का अन्त प्राप्त नहीं कर सके। उस बालक की सात पीढ़ी तक कुल

वंश नष्ट हो गया तो भी वे देवता लोक का अन्त प्राप्त नहीं कर सके। पीछे उस बालक के नाम गोत्र तक नष्ट हो गये, उतने समय में भी वे देवता लोक का अन्त प्राप्त नहीं कर सके।

अहो भगवन् ! उन देवों का गत (गया हुआ) क्षेत्र अधिक है या अगत (नहीं गया हुआ) क्षेत्र अधिक है ? हे गौतम ! गतक्षेत्र अधिक है, अगतक्षेत्र थोड़ा है, गतक्षेत्र से अगतक्षेत्र असंख्यातवें भाग है। अगतक्षेत्र से गतक्षेत्र असंख्यातगुणा है।

३८ - *अहो भगवन् ! अलोक कितना बड़ा है ? हे गौतम !* यथा दृष्टान्त - जैसे - दस महिड्ढिया (मोटी ऋद्धि वाले) देव पहले कहे मुताबिक इस जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत की चूलिका के चारों तरफ दस ही दिशाओं में खड़े होवें। आठ दिशाकुमारी देवियां हाथ में बलिपिण्ड लेकर मानुषोत्तर पर्वत की चार दिशा में और चार विदिशा में बाहर मुख करके खड़ी होवें। फिर वे देवियां एक साथ बलिपिण्ड फैंकें। उन दस देवताओं में से एक देवता उन आठों ही बलिपिण्डों को नीचे न गिरने देवे, ग्रहण कर लेवे। ऐसी शीघ्रगति वाले वे दस ही देवता अलोक का नाप करने के लिए (असत्कल्पना से चार देव तो चार दिशाओं में और चार देव चार विदिशाओं में, एक ऊर्ध्वदिशा में, एक अधोदिशा में) गये। उसी दिन उसी समय एक गाथापति के एक लाख वर्ष की आयुष्य वाला एक बालक उत्पन्न हुआ। फिर उस बालक के माता पिता कालधर्म को प्राप्त हो गये, यावत् उसके नाम गोत्र तक नष्ट हो गये, तो भी वे देव अलोक का अन्त प्राप्त नहीं कर सके।

अहो भगवन् ! गतक्षेत्र (गया क्षेत्र) अधिक है या अगत-

त्र अधिक है ? हे गौतम ! गतक्षेत्र थोड़ा है, अगतक्षेत्र अधिक है। गतक्षेत्र से अगतक्षेत्र अनन्तगुणा है, अगतक्षेत्र से गतक्षेत्र अनन्तवें भाग है।

३९ - अहो भगवन् ! लोक के एक आकाश प्रदेश पर एकेन्द्रिय के यावत् पन्चेन्द्रिय के और अनिन्द्रिय के प्रदेश हैं, वे परस्पर बद्ध (बंध हुए), स्पृष्ट (स्पर्शे हुए) यावत् अन्योन्यसंबद्ध हैं तो क्या वे आपस में बाधा पीड़ा उत्पन्न करते हैं यावत् अवयव का छेद करते हैं ? हे गौतम ! नो इणट्ठे समट्ठे (बाधा, पीड़ा उत्पन्न नहीं करते यावत् अवयव का छेद नहीं करते हैं)। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! यथा दृष्टान्त - किसी नगर में रंगमहल में कोई नर्तकी (नाटक करने वाली) नाटक करे। उसे सैकड़ों हजारों लाखों मनुष्य देखें। देखने वालों की दृष्टियां नर्तकी पर पड़ें तो हे गौतम ! क्या दृष्टियां उस नर्तकी को बाधा पीड़ा उत्पन्न करती हैं, यावत् अवयव का छेद करती हैं ? अहो भगवन् ! नहीं करतीं। हे गौतम ! क्या वे सैकड़ों लाखों दृष्टियां इकट्ठी होने से आपस में एक दूसरे को बाधा पीड़ा उत्पन्न करती हैं यावत् अवयव का छेद करती हैं ? अहो भगवन् ! नहीं करतीं। इसी तरह हे गौतम ! एक आकाश प्रदेश के ऊपर एकेन्द्रिय के यावत् पन्चेन्द्रिय के और अनिन्द्रिय के प्रदेश बद्ध, स्पृष्ट, परस्पर संबद्ध हैं परन्तु परस्पर बाधा पीड़ा उत्पन्न नहीं करते हैं यावत् अवयव का छेद नहीं करते हैं।

४० - अहो भगवन् ! एक आकाश प्रदेश पर रहे हुए जीव-प्रदेशों में कौन किससे अल्प, बहुत, विशेषाधिक हैं ? हे

गौतम ! * सबसे थोड़े लोक के एक आकाश प्रदेश पर जघन्य पद से रहे हुए जीवप्रदेश, (२) उससे सर्वजीव असंख्यात गुणा, (३) ÷ उससे एक आकाश प्रदेश पर उत्कृष्ट पद से रहे हुए जीवप्रदेश विशेषाधिक हैं।

१९. लवणसमुद्र का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक उन्नीसवां, उद्देशा छठा)

१ - अहो भगवन् ! लवणसमुद्र का आकार कैसा है ? हे गौतम ! लवणसमुद्र गोतीर्थ, नाव, शीप, अश्वस्कन्ध (घोड़े का कन्धा), वलभीवट (वटवृक्ष के चारों तरफ की हुई पाल) और वलय (चूड़ी) के आकार है।

२ - अहो भगवन् ! लवणसमुद्र की चौड़ाई, परिधि आदि अन्य वर्णन कैसा है ? हे गौतम ! लवणसमुद्र की समचक्रवाल चौड़ाई दो लाख योजन की है। उसकी परिधि १५ लाख ८१ हजार १३९ योजन किंचित् न्यून है। पूर्व से पश्चिम के चरमान्त में और दक्षिण से उत्तर के चरमान्त के बीच ५ लाख योजन का अन्तर है। लवणसमुद्र में ८ वेलंधर नागराज के पर्वत हैं। पूर्व में कनकमय (सोनामय) गोस्तूभ पर्वत है। उस पर गोस्तूभ नाम का देव रहता

** तीन दिशा में अलोक आने से उस तरफ से जीव के प्रदेश नहीं आते। सिर्फ तीन दिशा से आते हैं, इसलिए सबसे थोड़े हैं।*

÷ छह दिशा से जीव के प्रदेश आते हैं इसलिए सब जीवों से विशेषाधिक हैं।

है। दक्षिण में उदकभास नाम का पर्वत है। वह शंखमय है, उसका शिवक देव मालिक है। पश्चिम में शंख नामक पर्वत है वह रूपामय (चांदीमय) है, उसका शंख देवता मालिक है। उत्तर में दगसीम नाम का पर्वत है, वह स्फटिकमय है, उसका मणिशिलक देवता मालिक है। चार दिशाओं में ये चार पर्वत वेलंधर नागराजों के हैं। इसी प्रकार चार विदिशाओं में रत्नमय चार पर्वत अनुवेलंधर नागराज देवों के हैं। करकोटक, कर्दम, कैलाश, अरुणप्रभ, ये इन देवों के नाम हैं और इनके जैसे ही पर्वतों के नाम हैं।

जम्बूद्वीप की जगती से ४२००० योजन आगे लवणसमुद्र में जाने पर चार दिशा में और चार विदिशा में आठ पर्वत हैं। हरेक पर्वत १७२१ योजन का ऊंचा है, मूल में १०२२ योजन का लम्बा-चौड़ा है, बीच में ७२३ योजन और ऊपर ४२४ योजन का लम्बा-चौड़ा है, तीन गुणी झाझेरी परिधि है। उनका संठाण (संस्थान) गाय के पूंछ के समान है। एक एक पद्मवरवेदिका और एक एक वनखण्ड से घिरे हुए हैं। पर्वत के ऊपर सम रमणीक भूमिभाग है। वहां उनके एक एक मालिक देवों का एक एक प्रासादावतंसक (महल) है। वह ६२।। योजन का ऊंचा और ३१। योजन का चौड़ा है। वहां उन देवों के सिंहासन हैं।

उनकी स्थिति एक एक पल्योपम की है। वहां वे देव अपने परिवार सहित रहते हैं। उनकी राजधानी अपनी अपनी दिशा से असंख्याता समुद्र उलंघ कर जाने पर दूसरा लवणसमुद्र आता है, वहां पर है। राजधानी की लम्बाई-चौड़ाई १२००० योजन की है।

३ - अहो भगवन् ! लवणसमुद्र का अधिपति 'सुस्थित' देव कहां रहता है ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप की जगती से १२००० योजन आगे लवणसमुद्र में जाने पर गौतम द्वीप आता है, वह १२००० योजन का लम्बा-चौड़ा है। उसकी परिधि ३७९४८ योजन झाझेरी है, उस द्वीप पर सुस्थित देव का क्रीड़ास्थान है। उसकी राजधानी असंख्याता समुद्र उलंघ कर जाने पर दूसरा लवणसमुद्र आता है, वहां पर है।

४ - अहो भगवन् ! पातालकलश कहां हैं ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप की जगती से ९५००० योजन आगे लवणसमुद्र में जाने पर चारों ही दिशा में चार पातालकलश हैं। उनके नाम ये हैं - वलयमुख, केतुमुख, यूप, अश्वईश्वर। वे पातालकलश एक लाख योजन जमीन में ऊंडे हैं, बीच में एक लाख योजन चौड़े हैं, १० हजार योजन नीचे चौड़े हैं। उनका मुख १० हजार योजन का चौड़ा है और १००० योजन की जाड़ी (मोटी) ठीकरी है। काल, महाकाल, वेलंभ और प्रभंजन ये चार देवता उन चार पाताल-कलशों के मालिक हैं। इन चार पातालकलशों के बीचोंबीच (चारों कलशों के बीच के आतरों में) ७८८४ छोटे कलश हैं। वे प्रत्येक एक हजार योजन के ऊंडे हैं, एक हजार योजन के बीच में चौड़े हैं, एक सौ योजन के नीचे चौड़े हैं। उनका मुख एक सौ योजन का चौड़ा है, दस योजन की जाड़ी (मोटी) ठीकरी है, वज्रमय हैं। एक-एक कलश के बीच में २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३ छोटे कलशों की नौ नौ लड़ियां हैं। इस तरह चारों ही कलशों के बीच में नौ नौ लड़ियां हैं। ये सब मिलाकर

७८८४ छोटे कलश हैं और ४ कलशे बड़े हैं, कुल ७८८८ कलशे हैं, इन कलशों के एक एक देवता मालिक हैं। उनकी एक एक पल्योपम की स्थिति है। इन सब कलशों के तीन भाग हैं - ऊपर, नीचे और बीच का भाग। नीचे के भाग में वायु है, बीच के भाग में वायु और पानी है, ऊपर के भाग में पानी है। नीचे वायु उत्पन्न होती है जिससे जल उछल कर बढ़ता है। जब वायु शांत होती है तब जल शांत हो जाता है और नीचे बैठ जाता है।

लवणसमुद्र के जल में एक डगमाला (उदकमाला-जल का घेरा) उठी है जो १६००० हजार योजन ऊंची है और चौतरफ १०००० योजन चौड़ी है। उसमें पानी की वेल दो गाऊ (कोस) ऊंची उछलती है उसको १७४००० देवता दबाते हैं। ४२००० देव तो जम्बूद्वीप की तरफ से दबाते हैं, ६०००० देव ऊपर से दबाते हैं और ७२००० देव धातकीखण्ड की तरफ से दबाते हैं।

जम्बूद्वीप की जगती से लवणसमुद्र में ९५ बालाग्र (केश का अग्रभाग) जाने पर लवणसमुद्र एक बालाग्र ऊंडा है। इसी तरह ९५ अंगुल जाने पर एक अंगुल ऊंडा है, ९५ हाथ जाने पर एक हाथ, ९५ गाऊ जाने पर एक गाऊ और ९५ योजन जाने पर एक योजन ऊंडा है और ९५००० योजन जाने पर एक हजार योजन ऊंडा है।

लवणसमुद्र में ५०० योजन के माछले (मछलियां) हैं। पांच लाख कुलकोडी जलचर की हैं। एक अहोरात्रि में यानी ३० मुहूर्त में दो बार जल की हानि और वृद्धि होती है। लवणसमुद्र के विजय आदि चार दरवाजे हैं। उन चार दरवाजों के चार देवता

३ - अहो भगवन् ! लवणसमुद्र का अधिपति 'सुस्थित' देव कहां रहता है ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप की जगती से १२००० योजन आगे लवणसमुद्र में जाने पर गौतम द्वीप आता है, वह १२००० योजन का लम्बा-चौड़ा है। उसकी परिधि ३७९४८ योजन झाझेरी है, उस द्वीप पर सुस्थित देव का क्रीड़ास्थान है। उसकी राजधानी असंख्याता समुद्र उलंघ कर जाने पर दूसरा लवणसमुद्र आता है, वहां पर है।

४ - अहो भगवन् ! पातालकलश कहां हैं ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप की जगती से ९५००० योजन आगे लवणसमुद्र में जाने पर चारों ही दिशा में चार पातालकलश हैं। उनके नाम ये हैं - वलयमुख, केतुमुख, यूप, अश्वईश्वर। वे पातालकलश एक लाख योजन जमीन में ऊंडे हैं, बीच में एक लाख योजन चौड़े हैं, १० हजार योजन नीचे चौड़े हैं। उनका मुख १० हजार योजन का चौड़ा है और १००० योजन की जाड़ी (मोटी) ठीकरी है। काल, महाकाल, वेलंभ और प्रभंजन ये चार देवता उन चार पाताल-कलशों के मालिक हैं। इन चार पातालकलशों के बीचोंबीच (चारों कलशों के बीच के आतरों में) ७८८४ छोटे कलश हैं। वे प्रत्येक एक हजार योजन के ऊंडे हैं, एक हजार योजन के बीच में चौड़े हैं, एक सौ योजन के नीचे चौड़े हैं। उनका मुख एक सौ योजन का चौड़ा है, दस योजन की जाड़ी (मोटी) ठीकरी है, वज्रमय हैं। एक-एक कलश के बीच में २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३ छोटे कलशों की नौ नौ लड़ियां हैं। इस तरह चारों ही कलशों के बीच में नौ नौ लड़ियां हैं। ये सब मिलाकर

अर्थ - ८ कर्म, ५ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ भाषा, ४ मन, ४ कषाय, ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श, ६ संस्थान, ४ संज्ञा, ६ लेश्या, ३ दृष्टि, ५ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ योग, २ उपयोग, ये कुल ८२ बोल हुए।

१ - अहो भगवन् ! समुच्चय जीव में और २४ दण्डक के जीवों में इन ८२ बोलों में से कितने कितने बोल पाये जाते हैं ? हे गौतम ! समुच्चय जीव में बोल पाये जाते हैं ८२। नारकी में बोल + ७० (८ कर्म, ३ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ भाषा, ४ मन, ४ कषाय, वर्णादि २०, संस्थान १ हुण्डक, ४ संज्ञा, ३ लेश्या, ३ दृष्टि, ३ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ योग, २ उपयोग = ७०) भवनपति, और वाणव्यन्तर देवों में बोल पाये जाते हैं ७१ । (ऊपर जो ७० बोल कहे उनमें एक तेजोलेश्या बढ़ी)। ज्योतिषी और १२ देवलोक में बोल पाये जाते हैं ६८ (ऊपर जो ७१ बोल कहे उनमें ३ लेश्या कम हुई)। नव ग्रैवेयक में बोल पाये जाते हैं ६७ (६८ में से १ निश्रदृष्टि कम हुई)। पांच अनुत्तर विमान में बोल पाये जाते हैं ६३ (६७ में से ३ अज्ञान, १ मिथ्यादृष्टि ये ४ बोल कम हो गये)। पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में बोल पाये जाते हैं ५१ (८ कर्म, ३ शरीर, १ इन्द्रिय, ४ कषाय, २० वर्णादि, १ संस्थान हुण्डक, ४ संज्ञा, ४ लेश्या, १ दृष्टि-मिथ्यादृष्टि, २ अज्ञान, १ योग, २ उपयोग = ५१)। तेउकाय में बोल पाये जाते हैं ५० (५१ में से १ लेश्या कम हुई)। वायुकाय में बोल ५१ (५० में एक वैक्रिय

+ २ शरीर, ५ संस्थान, ३ लेश्या, २ ज्ञान, ये १२ बोल समुच्चय ८२ में से कम हुए।

शरीर बढ़ा)। द्वीन्द्रिय में बोल पाये जाते हैं ५६ (८ कर्म, ३ शरीर, २ इन्द्रिय, १ भाषा-व्यवहारभाषा, ४ कषाय, २० वर्णादि, १ संस्थान, ४ संज्ञा, ३ लेश्या, २ दृष्टि, २ ज्ञान, २ अज्ञान, २ योग २ उपयोग = ५६)। त्रीन्द्रिय में बोल ५७ (५६ में एक इन्द्रिय बढ़ी)। चतुरिन्द्रिय में बोल पाये जाते हैं ५८ (५७ में एक इन्द्रिय बढ़ी)। तिर्यंच पंचेन्द्रिय में बोल पाये जाते हैं ७९ (८२ में से आहारकशरीर, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, ये ३ बोल कम हो गये)। मनुष्य में बोल पाये जाते हैं ८२।

अहो भगवन् ! चौदह गुणस्थान की अपेक्षा किस किस गुणस्थान में कितने कितने बोल पाये जाते हैं ? हे गौतम ! पहले और तीसरे गुणस्थान में बोल * ७४ (८ कर्म, ४ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ भाषा, ४ मन, ४ कषाय, २०,वर्णादि ६ संस्थान, ४ संज्ञा, ६ लेश्या, १ दृष्टि, ३ अज्ञान, ३ योग, २ उपयोग = ७४)।

दूसरे, चौथे, और पांचवें गुणस्थान में बोल + ७४ (८ कर्म, ४ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ भाषा, ४ मन, ४ कषाय, २० वर्णादि, ६ संस्थान, ४ संज्ञा, ६ लेश्या, १ दृष्टि, ३ ज्ञान, ३ योग, २ उपयोग = ७४)।

छठे गुणस्थान में बोल ७६ (दूसरे गुणस्थान में जो ७४ कहे, उनमें १ आहारकशरीर, १ मनःपर्ययज्ञान, ये दो बोल बढ़े)।

** १ शरीर, २ दृष्टि, ५ ज्ञान ये ८ बोल समुच्चय ८२ में से कम हुए।*

+ १ शरीर, २ दृष्टि, २ ज्ञान, ३ अज्ञान ये ८ बोल समुच्चय ८२ में से कम हुए।

सातवें गुणस्थान में बोल ६९ (ऊपर ७६ कहे, उनमें से ४ संज्ञा, कृष्णादि ३ अशुभ लेश्या, ये ७ बोल कम हो गये)।

आठवें, नवमें गुणस्थान में बोल ६५ (ऊपर ६९ कहे, उनमें से २ शरीर वैक्रिय और आहारक, २ लेश्या तेजो और पद्म ये ४ बोल कम हो गये।

दसवें गुणस्थान में बोल ६२ (ऊपर ६५ कहे, उनमें से ३ कषाय कम हो गईं)।

ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थान में बोल ६० (६२ में से १ मोहनीय कर्म और १ लोभकषाय, ये दो बोल कम हो गये)।

तेरहवें गुणस्थान में बोल ४५ (४ कर्म, ३ शरीर, २ भाषा, २ मन, २० वर्णादि, ६ संस्थान, १ लेश्या, १ दृष्टि, १ ज्ञान, ३ योग, २ उपयोग)।

चौदहवें गुणस्थान में बोल ३७ (ऊपर ४५ कहे, उनमें से २ भाषा, २ मन, १ लेश्या, ३ योग, ये ८ बोल कम हो गये)।

२१. करण का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक उन्नीस, उद्देशा नौवां)

१ - अहो भगवन् ! करण * कितने प्रकार का है ? हे

---

* जिसके द्वारा किया जाय उसको अर्थात् क्रिया के साधन को करण कहते हैं अथवा करने को करण कहते हैं।
प्रश्न-करण और निव्वत्ति में क्या फरक है ? उत्तर-क्रिया का आरम्भ रूप करण है और क्रिया की समाप्ति रूप निव्वत्ति है।

गौतम ! करण ५५ प्रकार का है - ५ द्रव्य करण (+ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव), ५ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ भाषा, ४ मन, ४ कषाय, ७ समुद्घात, ४ संज्ञा, ६ लेश्या, ३ दृष्टि, ३ वेद, ५ प्राणातिपात आदि (प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह), ये ५५ करण हैं।

२ - अहो भगवन् ! दण्डक की अपेक्षा जीवों में कितने करण के बोल पाये जाते हैं ? हे गौतम ! समुच्चय जीव में बोल पाये जाते हैं ५५। नारकी में बोल ४५ (५ द्रव्य, ३ शरीर, ५ इन्द्रिय, ४ भाषा, ४ मन, ४ कषाय, ४ समुद्घात, ४ संज्ञा, ३ लेश्या, ३ दृष्टि, १ वेद, ५ प्राणातिपात आदि = ४५) भवनपति वाणव्यन्तर में बोल ४८ (ऊपर ४५ कहे उनमें १ समुद्घात, १ लेश्या, १ वेद, ये तीन बोल बढ़े)। ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक में बोल ४५ (ऊपर ४८ बोल कहे उनमें से ३ लेश्या कम हो गई) तीसरे देवलोक से बारहवें देवलोक तक बोल ४४ (ऊपर ४५ बोल कहे उनमें से १ वेद - स्त्रीवेद कम हुआ)। नव ग्रैवेयक में बोल ४१ (ऊपर ४४ कहे उनमें से २ समुद्घात और एक

+ द्रव्य रूप दांतली (दांतरा याने घास काटने का औजार) चाकू आदि द्रव्यकरण है अथवा शलाका (सलाइयां-तृण) से चटाई आदि बनाना द्रव्यकरण है। क्षेत्र रूप करण, अथवा शालि क्षेत्र आदि का करना अथवा किसी क्षेत्रादि में स्वाध्याय करना क्षेत्रकरण है। काल रूप करण अथवा काल के द्वारा किसी काल में करना काल- करण है। नरक आदि भव करना भवकरण है। औपशमिकादि भाव को करना भावकरण है।

मिश्रदृष्टि, ये तीन बोल कम हो गए)। पांच अनुत्तर विमान में
बोल ४० (ऊपर ४१ कहे उनमें से एक मिथ्यादृष्टि बोल कम हो
गया)। पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में बोल ३१ (५
द्रव्यादि, ३ शरीर, १ इन्द्रिय, ४ कषाय, ३ समुद्घात, ४ संज्ञा, ४
लेश्या, १ दृष्टि, १ वेद, ५ प्राणातिपातादि = ३१)। तेउकाय में
बोल ३० (ऊपर ३१ कहे उनमें से एक लेश्या कम हो गई)।
वायुकाय में बोल ३२ (ऊपर ३० कहे उनमें १ वैक्रियशरीर और
एक वैक्रियसमुद्घात ये दो बोल बढ़ गए)। द्वीन्द्रिय में बोल ३३
(ऊपर ३० कहे उनमें १ इन्द्रिय, १ व्यवहारभाषा, १ समदृष्टि, ये
तीन बोल बढ़ गये)। त्रीन्द्रिय में बोल ३४ (३३ में एक इन्द्रिय
बढ़ी)। चतुरिन्द्रिय में बोल ३५ (३४ में एक इन्द्रिय बढ़ी)।
तिर्यन्च पंचेन्द्रिय में बोल ५२ (५५ में से १ शरीर, २ समुद्घात,
ये तीन बोल कम हो गए)। मनुष्य में बोल पाये जाते हैं ५५।

२ - अहो भगवन् ! चौदह गुणस्थान की अपेक्षा किस
किस गुणस्थान में कितने २ करण के बोल पाये जाते हैं ? हे
गौतम ! पहले और तीसरे गुणस्थान में बोल पाये जाते हैं ५०
पचास (५५ में से १ आहारकशरीर, १ आहारकसमुद्घात, १
केवलीसमुद्घात, १ समदृष्टि, ये चार बोल और पहले गुणस्थान में
१ मिश्रदृष्टि तथा तीसरे गुणस्थान में १ मिथ्यादृष्टि ये पांच बोल
कम हो गये)।

दूसरे, चौथे और पांचवें गुणस्थान में बोल ५० पचास
(५५ में से १ आहारकशरीर, १ आहारकसमुद्घात १ केवलीसमुद्घात,
१ मिथ्यादृष्टि और १ मिश्रदृष्टि ये ५ बोल कम हो गये)। छठे

गुणस्थान में बोल ४७ (५५ में से ५ प्राणातिपातादि , १ केवली-समुद्घात, १ मिथ्यादृष्टि और १ मिश्रदृष्टि ये आठ बोल कम हो गये)। सातवें गुणस्थान में बोल ३४ (ऊपर ४७ कहे हैं, उनमें से ६ समुद्घात, ४ संज्ञा, ३ कृष्णादि लेश्या ये १३ बोल कम हो गये)। आठवें नवमें गुणस्थान में बोल ३०-३० (ऊपर ३४ कहे हैं , उनमें से २ शरीर, २ लेश्या, ये चार बोल कम हो गये)। दसवें गुणस्थान में बोल २४ (ऊपर ३० कहे हैं, उनमें से ३ कषाय, ३ वेद, ये ६ बोल कम हो गये)। ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थान में बोल २३-२३ (ऊपर २४ कहे हैं, उनमें से 'लोभ' कषाय कम हो गई)। तेरहवें गुणस्थान में बोल * १५ (ऊपर २३ कहे हैं उसमें ५ इन्द्रिय, २ मन, २ भाषा, ये ९ बोल कम हो गये और १ केवलीसमुद्घात बढ़ी) और चौदहवें गुणस्थान में बोल ९ (५ द्रव्यादि, ३ शरीर, १ समदृष्टि = ९) सिद्ध भगवान् में बोल पाये जाते हैं ६ (५ द्रव्यादि, १ सम दृष्टि)।

२२. वर्णादि के भांगों का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक बीसवां, उद्देशा पांचवां)

१—अहो भगवन् ! परमाणुपुद्गल में कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श पाये जाते हैं ? हे गौतम ! परमाणुपुद्गल में वर्णादि के १६ भांगे पाये जाते हैं - १ सिय (कदाचित्) काला, २ सिय नीला, ३ सिय लाल, ४ सिय पीला, ५ सिय सफेद, ६ सिय सुरभिगन्ध, ७

** ५ द्रव्यादि, ३ शरीर, २ भाषा, २ मन, १ केवलीसमुद्घात, १ शुक्ललेश्या, १ समदृष्टि, ये १५ बोल पाये जाते हैं।*

सिय दुरभिगन्ध, ८ सिय तीखा, ९ सिय कड़वा, १० सिय कषैला, ११ सिय खट्टा, १२ सिय मीठा, १३ सिय ठण्डा और स्निग्ध, १४ सिय ठण्डा और रूक्ष, १५ सिय उष्ण और स्निग्ध, १६ सिय उष्ण और रूक्ष।

२ - अहो भगवन् ! दो प्रदेशी स्कन्ध में कितने वर्णादि पाये जाते हैं ? हे गौतम ! दो प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के ४२ भांगे (* वर्ण के १५, गन्ध के ३, रस के १५, स्पर्श के ९, ये कुल ४२) पाये जाते हैं - वर्ण के १५ भांगे इस प्रकार हैं - असंयोगी ५ भांगे १ सिय (कदाचित्) काला, २ सिय नीला, ३ सिय लाल, ४ सिय पीला, ५ सिय सफेद । दो संयोगी १० भांगे इस प्रकार होते हैं -

१ - सिय काला एक नीला एक २ - सिय काला एक लाल एक,
३ -सिय काला एक पीला एक ४ - सिय काला एक सफेद एक
५ -सिय नीला एक लाल एक ६ - सिय नीला एक पीला एक
७ -सिय नीला एक सफेद एक ८ - सिय लाल एक पीला एक
९ - सिय लाल एक सफेद एक १० - सिय पीला एक सफेद एक

* द्विप्रदेशी स्कन्ध में दोनों प्रदेश एक वर्ण वाले होते हैं तब असंयोगी ५ भांगे होते हैं। दोनों प्रदेश भिन्न भिन्न वर्ण वाले होते हैं तब दो संयोगी दस भांगे होते हैं। गन्ध में जब दोनों प्रदेश एक गन्ध वाले होते हैं तब दो भांगे होते हैं और जब दोनों प्रदेश दो गन्ध वाले होते हैं तब एक भांगा होता है। रस में जब दोनों प्रदेश एक रस वाले हों तब ५ भांगे होते हैं और जब भिन्न भिन्न दो रस वाले हों तब दस भांगे होते हैं। स्पर्श के दो संयोगी ४ भांगे, तीन संयोगी ४ और चार संयोगी एक भांगा होता है। ये सब मिलाकर ४२ भांगे होते हैं।

गन्ध के तीन भांगे इस प्रकार बनते हैं –

१ – सिय सुरभिगन्ध, २ – सिय दुरभिगन्ध,

३ – सिय सुरभिगन्ध एक दुरभिगन्ध एक।

रस के १५ भांगे – जिस तरह वर्ण के १५ भांगे कहे, उसी तरह रस के १५ भांगे कह देना चाहिये।

स्पर्श के ९ भांगे - १ सर्व ठण्डा सर्व स्निग्ध, २ सर्व ठण्डा सर्व रूक्ष, ३ सर्व उष्ण सर्व स्निग्ध, ४ सर्व उष्ण सर्व रूक्ष, ५ सर्व ठण्डा, देश (कुछ भाग) स्निग्ध, देश रूक्ष, ६ सर्व उष्ण, देश स्निग्ध, देश रूक्ष, ७ सर्व स्निग्ध, देश शीत, देश उष्ण, ८ सर्व रूक्ष देश शीत, देश उष्ण, ९ देश शीत, देश उष्ण, देश स्निग्ध, देश रूक्ष।

३ – अहो भगवन् ! तीन प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के कितने भांगे पाये जाते हैं ? हे गौतम ! १२० भांगे पाये जाते हैं – वर्ण के ४५, गन्ध के ५, रस के ४५ और स्पर्श के २५, कुल १२० भांगे हुए। वर्ण के ४५ भांगे इस प्रकार होते हैं - असंयोगी ५, दो संयोगी ३० और तीन संयोगी १० भांगे होते हैं। असंयोगी ५ भांगे इस प्रकार बनते हैं -

१ – सिय (कदाचित्) काला २ – सिय नीला, ३ – सिय लाल,

४ – सिय पीला, ५ – सिय सफेद।

दो संयोगी ३० भांगे इस प्रकार बनते हैं–

१ –काला एक नीला एक, २ – काला एक नीला बहुत(अनेक),

३ –काला बहुत नीला एक, ४ –काला एक लाल एक,

५ –काला एक लाल बहुत, ६ – काला बहुत लाल एक,

७ –काला एक पीला एक, ८ – काला एक पीला बहुत,

९ - काला बहुत पीला एक, १० - काला एक सफेद एक,
११ - काला एक सफेद बहुत, १२ - काला बहुत सफेद एक,
१३ - नीला एक लाल एक, १४ - नीला एक लाल बहुत,
१५ - नीला बहुत लाल एक, १६ - नीला एक पीला एक,
१७ - नीला एक पीला बहुत, १८ - नीला बहुत पीला एक,
१९ - नीला एक सफेद एक, २० - नीला एक सफेद बहुत,
२१ - नीला एक सफेद एक, २२ - लाल एक पीला एक,
२३ - लाल एक पीला बहुत, २४ - लाल बहुत पीला एक,
२५ - लाल एक सफेद एक, २६ - लाल एक सफेद बहुत,
२७ - लाल बहुत सफेद एक, २८ - पीला एक सफेद एक,
२९ - पीला एक सफेद बहुत, ३० - पीला बहुत सफेद एक।
तीन संयोगी १० भांगे इस प्रकार होते हैं -

१ - काला एक, नीला एक, लाल एक।
२ - काला एक, नीला एक, पीला एक।
३ - काला एक, नीला एक, सफेद एक।
४ - काला एक, लाल एक, पीला एक।
५ - काला एक, लाल एक, सफेद एक।
६ - काला एक, पीला एक, सफेद एक।
७ - नीला एक, लाल एक, पीला एक।
८ - नीला एक, लाल एक, सफेद एक।
९ - नीला एक, पीला एक, सफेद एक।
१० - लाल एक, पीला एक, सफेद एक।

गन्ध के ५ भांगे इस प्रकार होते हैं - १ सर्व सुरभिगन्ध

२ सर्व दुरभिगन्ध, ३ सुरभिगन्ध एक दुरभिगन्ध एक, ४ सुरभिगन्ध एक दुरभिगन्ध बहुत, ५ सुरभिगन्ध बहुत दुरभिगन्ध एक।

रस के ४५ भांगे - जिस तरह वर्ण के ४५ भांगे कहे गये हैं, उसी तरह रस के ४५ भांगे कह देने चाहिये।

स्पर्श के २५ भांगे इस प्रकार होते हैं - दोसंयोगी ४, तीनसंयोगी १२, चारसंयोगी ९, ये कुल २५ होते हैं – दो संयोगी ४ भांगे - १ सर्व शीत सर्व स्निग्ध, २ सर्व शीत सर्व रूक्ष, ३ सर्व उष्ण सर्व स्निग्ध, ४ सर्व उष्ण सर्व रूक्ष। तीन संयोगी १२ भांगे - १ सर्व शीत एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष, २ सर्व शीत एक देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष, ३ सर्व शीत बहुत देश स्निग्ध एक देश रूक्ष। इसी प्रकार तीन भांगे उष्ण के साथ, तीन भांगे स्निग्ध के साथ, तीन भांगे रूक्ष के साथ कहने से ये १२ भांगे होते हैं। स्पर्श के चार संयोगी ९ भांगे होते हैं –

१ एक देश शीत, एक देश उष्ण, एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष,
२ एक देश शीत, एक देश उष्ण, एक देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष,
३ एक देश शीत, एक देश उष्ण, बहुत देश स्निग्ध एक देश रूक्ष,
४ एक देश शीत, बहुत देश उष्ण, एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष,
५ एक देश शीत, बहुत देश उष्ण, बहुत देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष,
६ एक देश शीत, बहुत देश उष्ण, बहुत देश स्निग्ध एक देश रूक्ष,
७ बहुत देश शीत, एक देश उष्ण, एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष,
८ बहुत देश शीत, एक देश उष्ण, एक देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष,
९ बहुत देश शीत, एक देश उष्ण, बहुत देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

ये स्पर्श के २५ भांगे हुए । ये कुल मिलाकर तीन प्रदेशी

स्कन्ध के १२० भांगे हुये।

४ - अहो भगवन् ! चार प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के कितने भांगे पाये जाते हैं ? हे गौतम ! २२२ भांगे पाये जाते हैं - वर्ण के ९०, गन्ध के ६, रस के ९०, स्पर्श के ३६, ये कुल मिलाकर २२२ भांगे हुये।

वर्ण के ९० भांगे इस प्रकार होते हैं - असंयोगी ५, दो संयोगी ४०, तीन संयोगी ४०, चार संयोगी ५, ये कुल मिलाकर ९० भांगे हुए। असंयोगी ५ भांगे द्विप्रदेशी स्कन्ध के समान कह देना चाहिए। दो संयोगी ४० भांगे - १ काला एक, नीला एक, २ काला एक नीला बहुत, ३ काला बहुत नीला एक, ४ काला बहुत नीला बहुत। यह काला नीला की एक चौभंगी हुई। इसी प्रकार द्विसंयोगी दस चौभंगियां होती हैं। दस चौभंगियों के ४० भांगे होते हैं।

तीन संयोगी ४० भांगे - १ काला एक नीला एक लाल एक, २ काला एक नीला एक लाल बहुत, ३ काला एक नीला बहुत लाल एक, ४ काला बहुत नीला एक लाल एक। यह काला नीला लाल की एक चौभंगी हुई। इस प्रकार तीन संयोगी दस चौभंगियां होती हैं। * दस चौभंगियों के ४० भांगे होते हैं।

चार संयोगी ५ भांगे इस प्रकार होते हैं -

१ काला एक नीला एक लाल एक पीला एक।

२ काला एक नीला एक लाल एक सफेद एक।

** नोट:- तीन प्रदेशी में ३ संयोगी १० भांगे कहे, उन एक-एक भांगे पर चार-चार भांगे करने से ४० भांगे होते हैं।*

३ काला एक नीला एक पीला एक सफेद एक।

४ काला एक लाल एक पीला एक सफेद एक।

५ नीला एक लाल एक पीला एक सफेद एक।

ये वर्ण के ९० भांगे हुये।

गन्ध के ६ भांगे इस प्रकार होते हैं - १ सर्व सुरभिगन्ध, २ सर्व दुरभिगन्ध, ३ सुरभिगन्ध-दुरभिगन्ध एक, ४ सुरभिगन्ध एक दुरभिगन्ध बहुत, ५ सुरभिगन्ध बहुत दुरभिगन्ध एक, ६ सुरभिगन्ध बहुत दुरभिगन्ध बहुत।

रस के ९० भांगे - जिस तरह वर्ण के ९० भांगे कहे हैं, उसी प्रकार रस के भी ९० भांगे कह देने चाहिए।

स्पर्श के ३६ भांगे - दो संयोगी भांगे ४, तीन संयोगी भांगे १६, चार संयोगी भांगे १६, ये कुल ३६ होते हैं, दो संयोगी चार भांगे - १ सर्व शीत सर्व स्निग्ध, २ सर्व शीत सर्व रूक्ष, ३ सर्व उष्ण सर्व स्निग्ध, ४ सर्व उष्ण सर्व रूक्ष। तीन संयोगी १६ भांगे इस तरह बनते हैं -

१ सर्व शीत एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

२ सर्व शीत एक देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष।

३ सर्व शीत बहुत देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

४ सर्व शीत बहुत देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष।

इसी तरह सर्व उष्ण से ४ भांगे, सर्व स्निग्ध से ४ भांगे और सर्व रूक्ष से ४ भांगे बनते हैं, ये १६ भांगे हुये।

चार संयोगी १६ भांगे इस तरह बनते हैं -

१ एक देश शीत, एक देश उष्ण एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष,

२ एक देश शीत एक देश उष्ण एक देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष,
३ एक देश शीत एक देश उष्ण बहुत देश स्निग्ध एक देश रूक्ष,
४ एक देश शीत एक देश उष्ण बहुत देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष।

इसी तरह 'एक देश शीत बहुत देश उष्ण' से ४ भांगे बनते हैं, ये ८ भांगे हुए। इसी तरह 'बहुत देश शीत' से ८ भांगे बनते हैं। ये *१६ भांगे हुए। सब मिलाकर स्पर्श के ३६ भांगे हुए। इस प्रकार चार प्रदेशी स्कन्ध के २२२ भांगे (वर्ण के ९०, गन्ध के ६, रस के ९० और स्पर्श के ३६ कुल २२२) हुए।

५ - अहो भगवन् ! पांच प्रदेशी स्कन्ध में कितने वर्णादि के भांगे पाये जाते हैं ? हे गौतम ! पांच प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के ३२४ भांगे पाये जाते हैं - वर्ण के १४१, गन्ध के ६, रस के १४१, स्पर्श के ३६, ये कुल मिलाकर ३२४ भांगे होते हैं।

वर्ण के १४१ भांगे इस प्रकार होते हैं - असंयोगी ५, दो संयोगी ४०, तीन संयोगी ७०, चार संयोगी २५, पांच संयोगी १, ये कुल १४१ हुए।

असंयोगी ५ और दो संयोगी ४० भांगे जिस तरह ४ प्रदेशी स्कन्ध में कहे गये हैं, उसी तरह यहां भी जान लेना चाहिये।

तीन संयोगी ७० भांगे इस तरह बनते हैं -

१ एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल।
२ एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल।

---

*११११ - १११३ - ११३१ - ११३३ - १३११ - १३१३ - १३३१ - १३३३ - ३१११ - ३११३ - ३१३१ - ३१३३ - ३३११ - ३३१३ - ३३३१ - ३३३३।

३ एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल।

४ एक देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल।

५ बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल।

६ बहुत देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल।

७ बहुत देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल।

ये काला नीला लाल के ७ भांगे हुए। इसी तरह (२) काला नीला पीला के ७ भांगे, (३) काला नीला सफेद के ७ भांगे, (४) काला लाल पीला के ७ भांगे, (५) काला लाल सफेद के ७ भांगे (६) काला पीला सफेद के ७ भांगे, (७) नीला लाल पीला के ७ भांगे, (८) नीला लाल सफेद के ७ भांगे, (९) नीला पीला सफेद के ७ भांगे, (१०) लाल पीला सफेद के ७ भांगे होते हैं। ये तीन संयोगी ७० भांगे होते हैं।

चार संयोगी २५ भांगे इस प्रकार बनते हैं -

१ एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला।

२ एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला।

३ एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला।

४ एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला।

५ बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला।

ये काला नीला लाल पीला के ५ भांगे हुये। इसी तरह (२) काला नीला लाल सफेद के ५ भांगे, (३) काला नीला पीला सफेद के ५ भांगे, (४) काला लाल पीला सफेद के ५ भांगे, (५) नीला लाल पीला सफेद के ५ भांगे होते हैं। इस तरह चार संयोगी २५ भांगे हुये।

पांच संयोगी एक भांगा बनता है - एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

ये वर्ण के १४१ भांगे हुए।

गन्ध के ६ भांगे चार प्रदेशी स्कन्ध के समान कह देने चाहिये।

रस के १४१ भांगे जिस प्रकार पांच प्रदेशी स्कन्ध में वर्ण के १४१ भांगे कहे गये हैं, उसी प्रकार रस के १४१ भांगे कह देने चाहिये।

स्पर्श के ३६ भांगे - जिस प्रकार चार प्रदेशी स्कन्ध में स्पर्श के ३६ भांगे कहे गये हैं, उसी प्रकार यहां पांच प्रदेशी स्कन्ध में भी स्पर्श के ३६ भांगे कह देने चाहिये।

इस प्रकार पांच प्रदेशी स्कन्ध के ३२४ (वर्ण के १४१, गन्ध के ६, रस के १४१, स्पर्श के ३६ =कुल ३२४) भांगे हुये।

६ - अहो भगवन् ! छह प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के कितने भांगे पाये जाते हैं ? हे गौतम ! छह प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के ४१४ भांगे पाये जाते हैं। वर्ण के १८६, गन्ध के ६, रस के १८६, स्पर्श के ३६, ये कुल ४१४ भांगे होते हैं।

वर्ण के १८६ भांगे इस प्रकार बनते हैं - असंयोगी ५, दो संयोगी ४०, तीन संयोगी ८०, चार संयोगी ५५, पांच संयोगी ६, कुल मिलाकर १८६ भांगे होते हैं।

असंयोगी ५ और दो संयोगी ४० भांगे जिल तरह चार प्रदेशी स्कन्ध में कहे गये हैं, उसी प्रकार यहां छह प्रदेशी स्कन्ध में कह देने चाहिये।

तीन संयोगी ८० भांगे इस तरह बनते हैं जिस तरह पांच प्रदेशी स्कन्ध में ७ भांगे कहे हैं, उसी तरह ७ भांगे यहां छह प्रदेशी स्कन्ध में भी कह देने चाहिये। आठवां भांगा - बहुत देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल। इन आठ को दस से गुणा करने से ८० भांगे होते हैं।

चार संयोगी ५५ भांगे इस प्रकार बनते हैं -

१ एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला।
२ एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश सफेद।
३ एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला।
४ एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला।
५ एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला।
६ एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला।
७ एक देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला।
८ बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला।
९ बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला।
१० बहुत देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला।
११ बहुत देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला।

इन ११ भांगों को चार प्रदेशी स्कन्ध में जो चार संयोगी ५ भांगे कहे हैं उनसे गुणा करने पर ५५ भांगे बनते हैं।

पांच संयोगी ६ भांगे इस प्रकार बनते हैं -

(१) एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद। (२) एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद। (३) एक देश काला

एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।
(४) एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला
एक देश सफेद। (५) एक देश काला बहुत देश नीला एक देश
लाल एक देश पीला एक देश सफेद। (६) बहुत देश काला एक देश
नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

गन्ध के छह भांगे जिस तरह चार प्रदेशी स्कन्ध में कहे ,
उसी तरह कह देने चाहिये।

रस के १८६ भांगे जिस तरह वर्ण के १८६ भांगे कहे गये
हैं, उसी तरह रस के भी १८६ भांगे कह देने चाहिये।

स्पर्श के ३६ भांगे जिस तरह चार प्रदेशी स्कन्ध में स्पर्श
के ३६ भांगे कहे गये हैं, उसी तरह यहां छह प्रदेशी स्कन्ध में भी
कह देने चाहिये।

ये सब मिलाकर ४१४ (वर्ण के १८६, गन्ध के ६, रस
के १८६, स्पर्श के ३६ = ४१४) भांगे हुए।

७ - अहो भगवन् ! सात प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के
कितने भांगे पाये जाते हैं ? हे गौतम ! सात प्रदेशी स्कन्ध में
वर्णादि के ४७४ भांगे पाये जाते हैं। वर्ण के २१६, गन्ध के ६
रस के २१६, स्पर्श के ३६ भांगे होते हैं।

वर्ण के २१६ भांगे इस प्रकार बनते हैं– असंयोगी ५,
संयोगी ४०, तीन संयोगी ८०, चार संयोगी ७५. पांच संयोगी १६
इनमें से असंयोगी ५, दो संयोगी ४०, तीन संयोगी ८० भांगे तो छ
प्रदेशी स्कन्ध की तरह कह देने चाहिए।

चार संयोगी ७५ भांगे इस तरह बनते हैं -

१ - एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला। २ - एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला। ३ - एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला। ४ - एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला। ५ - एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला। ६ - एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला। ७ - एक देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला। ८ - एक देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला। ९ - बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला। १० - बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला। ११ - बहुत देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला। १२ - बहुत देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला। १३ - बहुत देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला। १४- बहुत देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला। १५ - बहुत देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला।

इन १५ भांगों को चार प्रदेशी स्कन्ध में कहे हुए चार संयोगी ५ भांगों से गुणा करने से ७५ भांगे बन जाते हैं।

पांच संयोगी १६ भांगे इस तरह बनते हैं —

(१) एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

(२) एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक

देश पीला बहुत देश सफेद।

(३) एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

(४) एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला बहुत देश सफेद।

(५) एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

(६) एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

(७) एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

(८) एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

(९) एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

(१०) एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

(११) एक देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

(१२) बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

(१३) बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

(१४) बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

(१५) बहुत देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

(१६) बहुत देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

रस के २१६ भांगे - जिस तरह वर्ण के २१६ कहे गये हैं, उसी तरह रस के भी २१६ भांगे कह देने चाहिये।

गन्ध के ६ भांगे और स्पर्श के ३६ भांगे जिस तरह चार प्रदेशी स्कन्ध में कहे गये हैं, उसी तरह यहां सात प्रदेशी स्कन्ध में भी कह देने चाहिए।

८ - अहो भगवन् ! आठ प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के कितने भांगे पाये जाते हैं ? हे गौतम ! ५०४ भांगे पाये जाते हैं। वर्ण के २३१, गन्ध के ६, रस के २३१, स्पर्श के ३६, ये कुल मिलाकर ५०४ भांगे पाये जाते हैं।

वर्ण के २३१ भांगे इस तरह बनते हैं – असंयोगी ५, दो संयोगी ४०, तीन संयोगी ८०, चार संयोगी ८०, पांच संयोगी २६।

असंयोगी ५, दो संयोगी ४०, तीन संयोगी ८० भांगे जिस प्रकार छह प्रदेशी स्कन्ध में कहे गये हैं, उसी प्रकार कह देने चाहिये।

चार संयोगी ८० भांगे इस प्रकार बनते हैं – सात प्रदेशी स्कन्ध में जिस तरह चार संयोगी १५ भांगे कहे गये हैं, उसी तरह यहां भी १५ भांगे कह देने चाहिए। सोलहवां भांगा बहुत देश काला

बहुत देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला। इन सोलह भांगों को पांच से गुणा करने से (१६ X ५ =८०) अस्सी भांगे होते हैं।

पांच संयोगी २६ भांगे इस प्रकार बनते हैं –

१ एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

२ एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

३ एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

४ एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला बहुत देश सफेद।

५ एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

६ एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

७ एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

८ एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला बहुत देश सफ़ेद।

९ एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

१० एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

११ एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

१२ एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला बहुत देश सफेद।

१३ एक देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

१४ एक देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

१५ एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

१६ बहुत देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

१७ बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

१८ बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

१९ बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला बहुत देश सफेद।

२० बहुत देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

२१ बहुत देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

२२ बहुत देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल बहुत

देश पीला एक देश सफेद।

२३ बहुत देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

२४ बहुत देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

२५ बहुत देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

२६ बहुत देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

रस के २३१ भांगे जिस तरह वर्ण के २३१ भांगे कहे गये हैं, उसी तरह रस के भी २३१ भांगे कह देने चाहिये।

गन्ध के ६ भांगे और स्पर्श के ३६ भांगे जिस तरह चार प्रदेशी स्कन्ध में कहे गये हैं, उसी तरह यहां आठ प्रदेशी स्कन्ध में भी कह देना चाहिए।

इस प्रकार आठ प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के ५०४ (वर्ण के २३१, गंध के ६, रस के २३१, स्पर्श के ३६ = ५०४) भांगे बनते हैं।

९ - अहो भगवन् ! नव प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के कितने भांगे पाये जाते हैं ? हे गौतम ! नवप्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के ५१४ भांगे पाये जाते हैं। वे इस प्रकार होते हैं - वर्ण के २३६, गन्ध के ६,रस के २३६, स्पर्श के ३६ भांगे होते हैं।

वर्ण के २३६ भांगे इस प्रकार बनते हैं - असंयोगी ५, दो संयोगी ४०, तीन संयोगी ८०, चार संयोगी८०, पांच संयोगी ३१।

असंयोगी ५, दो संयोगी ४०, तीन संयोगी ८०, चार संयोगी ८० भांगे जिस तरह छह प्रदेशी स्कन्ध में कहे गये हैं, उसी तरह यहां नवप्रदेशी स्कन्ध में भी कह देने चाहिए। पांच संयोगी ३१ भांगे इस प्रकार बनते हैं –

(१) एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

(२) एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

(३) एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

(४) एक देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला बहुत देश सफेद।

(५) एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

(६) एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

(७) एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

(८) एक देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला बहुत देश सफेद।

(९) एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

(१०) एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक

देश पीला बहुत देश सफेद।

(११) एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

(१२) एक देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला बहुत देश सफेद।

(१३) एक देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

(१४) एक देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

(१५) एक देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

(१६) एक देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला बहुत देश सफेद।

(१७) बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

(१८) बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

(१९) बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

(२०) बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

(२१) बहुत देश काला एक देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

(२२) बहुत देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

(२३) बहुत देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

(२४) बहुत देश काला एक देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला बहुत देश सफेद।

(२५) बहुत देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

(२६) बहुत देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

(२७) बहुत देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

(२८) बहुत देश काला बहुत देश नीला एक देश लाल बहुत देश पीला बहुत देश सफेद।

(२९) बहुत देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला एक देश सफेद।

(३०) बहुत देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल एक देश पीला बहुत देश सफेद।

(३१) बहुत देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला एक देश सफेद।

रस के २३६ भांगे जिस तरह वर्ण के २३६ भांगे कहे गये हैं, उसी तरह रस के २३६ भांगे कह देने चाहिए।

गंध के ६ भांगे और स्पर्श के ३६ भांगे जिस तरह चार

प्रदेशी स्कन्ध में कहे गये हैं, उसी तरह यहां नवप्रदेशी स्कन्ध में भी कह देने चाहिए।

१० - अहो भगवन् ! दस प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के कितने भांगे पाये जाते हैं ? हे गौतम ! दस प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के ५१६ भांगे पाये जाते हैं। वर्ण के २३७, गन्ध के ६, रस के २३७, स्पर्श के ३६, ये कुल मिलाकर ५१६ भांगे होते हैं। ये सब भांगे नवप्रदेशी स्कन्ध के समान कह देने चाहिए, सिर्फ इतनी विशेषता है कि वर्ण और रस के पांच संयोगी भांगे ३१ के बदले ३२-३२ कहने चाहिए। बत्तीसवां भांगा इस तरह बनता है -

(३२) बहुत देश काला बहुत देश नीला बहुत देश लाल बहुत देश पीला बहुत देश सफेद।

११ - अहो भगवन् ! संख्यात प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के कितने भांगे पाये जाते हैं ? हे गौतम ! संख्यात प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के ५१६ भांगे पाये जाते हैं। इसी तरह असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध में ५१६ और सूक्ष्म अनन्त प्रदेशी स्कन्ध में ५१६ भांगे पाये जाते हैं। ये सब दस प्रदेशी स्कन्ध के समान कह देने चाहिए।

१२ - अहो भगवन् ! बादर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के कितने भांगे पाये जाते हैं ? हे गौतम ! बादर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के १७७६ भांगे पाये जाते हैं। वर्ण के २३७, गंध के ६, रस के २३७, स्पर्श के १२९६ भांगे होते हैं। इन में वर्ण के २३७, गंध के ६, रस के २३७ भांगे दस प्रदेशी स्कन्ध के समान कह देने चाहिए।

स्पर्श के १२९६ भांगे इस प्रकार बनते हैं - चार संयोगी

(चार स्पर्श के संयोग से बनने वाले) १६ भांगे, पांच संयोगी (पांच स्पर्श के संयोग से बनने वाले) १२८ भांगे, छह संयोगी (छह स्पर्श के संयोग से बनने वाले) ३८४ भांगे, (६ x ६४ = ३८४ भांगे), सात संयोगी (सात स्पर्श के संयोग से बनने वाले) ५१२ भांगे (४ x १२८ = ५१२ भांगे), आठ संयोगी (आठ स्पर्श के संयोग से बनने वाले) २५६ भांगे होते हैं, ये सब मिलाकर १२९६ भांगे होते हैं।

चार संयोगी १६ भांगे इस तरह बनते हैं –

१ सर्व कर्कश सर्व गुरु सर्व शीत सर्व स्निग्ध।
२ सर्व कर्कश सर्व गुरु सर्व शीत सर्व रूक्ष।
३ सर्व कर्कश सर्व गुरु सर्व उष्ण सर्व स्निग्ध।
४ सर्व कर्कश सर्व गुरु सर्व उष्ण सर्व रूक्ष।
५ सर्व कर्कश सर्व लघु सर्व शीत सर्व स्निग्ध।
६ सर्व कर्कश सर्व लघु सर्व शीत सर्व रूक्ष।
७ सर्व कर्कश सर्व लघु सर्व उष्ण सर्व स्निग्ध।
८ सर्व कर्कश सर्व लघु सर्व उष्ण सर्व रूक्ष।
९ सर्व मृदु (कोमल) सर्व गुरु सर्व शीत सर्व स्निग्ध।
१० सर्व मृदु सर्व गुरु सर्व शीत सर्व रूक्ष।
११ सर्व मृदु सर्व गुरु सर्व उष्ण सर्व स्निग्ध।
१२ सर्व मृदु सर्व गुरु सर्व उष्ण सर्व रूक्ष।
१३ सर्व मृदु सर्व लघु सर्व शीत सर्व स्निग्ध।
१४ सर्व मृदु सर्व लघु सर्व शीत सर्व रूक्ष।
१५ सर्व मृदु सर्व लघु सर्व उष्ण सर्व स्निग्ध।

१६ सर्व मृदु सर्व लघु सर्व उष्ण सर्व रूक्ष।

पांच संयोगी १२८ भांगे इस तरह बनते हैं –

१ – सर्व कर्कश (कक्खड़े) सर्व गुरु (सव्वे गुरुए) सर्व शीत (सव्वे सीए) एक देश स्निग्ध (दिसे निद्धे) एक देश रूक्ष (दिसे लुक्खे)

२ – सर्व कर्कश सर्व गुरु सर्व शीत एक देश स्निग्ध (दिसे निद्धे) बहुत देश रूक्ष (दिसा लुक्खा)।

३ – सर्व कर्कश सर्व गुरु सर्व शीत बहुत देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

४ – सर्व कर्कश सर्व गुरु सर्व शीत बहुत देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष।

इसी तरह सर्व कर्कश सर्व गुरु सर्व उष्ण एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष की चौभंगी (चार भांगे) कह देनी चाहिए। इसी तरह सर्व कर्कश सर्व लघु सर्व शीत एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष की चौभंगी कह देनी चाहिए। इसी तरह सर्व कर्कश सर्व लघु सर्व उष्ण एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष की चौभंगी कह देनी चाहिए। इस तरह कर्कश के साथ १६ भांगे होते हैं। इसी तरह मृदु (कोमल) के (सर्व मृदु सर्व गुरु सर्व शीत एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष) साथ १६ भांगे होते हैं। ये सब मिलाकर ३२ भांगे हुए। यह पहली बत्तीसी हुई। इसी तरह सर्व कर्कश सर्व गुरु सर्व स्निग्ध एक देश रूक्ष एक देश उष्ण की दूसरी बत्तीसी कह देनी चाहिए। इसी तरह सर्व कर्कश सर्व शीत सर्व स्निग्ध एक देश गुरु एक देश लघु की तीसरी बत्तीसी कह देनी चाहिए। इसी तरह सर्व गुरु सर्व शीत सर्व स्निग्ध एक देश कर्कश एक देश मृदु की चौथी बत्तीसी कह देनी चाहिए। इन चार बत्तीसियों के १२८ ३२ X

छह संयोगी ३८४ भांगे बनते हैं। वे इस तरह बनते हैं–

१ – सर्व कर्कश (सव्वे कक्खड़े) सर्व गुरु (सव्वे गुरुए) से १६ भांगे बनते हैं वे इस प्रकार हैं –

१ – सर्व कर्कश सर्व गुरु एक देश शीत एक देश उष्ण एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

२ – सर्व कर्कश सर्व गुरु एक देश शीत एक देश उष्ण एक देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष।

३ – सर्व कर्कश सर्व गुरु एक देश शीत एक देश उष्ण बहुत देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

४ – सर्व कर्कश सर्व गुरु एक देश शीत एक देश उष्ण बहुत देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष।

५ – सर्व कर्कश सर्व गुरु एक देश शीत बहुत देश उष्ण एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

६ – सर्व कर्कश सर्व गुरु एक देश शीत बहुत देश उष्ण एक देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष।

७ – सर्व कर्कश सर्व गुरु एक देश शीत बहुत देश उष्ण बहुत देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

८ – सर्व कर्कश सर्व गुरु एक देश शीत बहुत देश उष्ण बहुत देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष।

९ – सर्व कर्कश सर्व गुरु बहुत देश शीत एक देश उष्ण एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

१० – सर्व कर्कश सर्व गुरु बहुत देश शीत एक देश उष्ण एक देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष।

११ - सर्व कर्कश सर्व गुरु बहुत देश शीत एक देश उष्ण बहुत देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

१२ - सर्व कर्कश सर्व गुरु बहुत देश शीत एक देश उष्ण बहुत देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष।

१३ - सर्व कर्कश सर्व गुरु बहुत देश शीत बहुत देश उष्ण एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

१४ - सर्व कर्कश सर्व गुरु बहुत देश शीत बहुत देश उष्ण एक देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष।

१५ - सर्व कर्कश सर्व गुरु बहुत देश शीत बहुत देश उष्ण बहुत देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

१६ - सर्व कर्कश सर्व गुरु बहुत देश शीत बहुत देश उष्ण बहुत देश स्निग्ध बहुत देश रूक्ष।

इसी तरह सर्व कर्कश सर्व लघु से १६ भांगे कह देना चाहिए। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है -

१ - सर्व कर्कश सर्व लघु एक देश शीत एक देश उष्ण एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

इसी तरह सर्व मृदु सर्व गुरु से १६ भांगे कह देने चाहिए। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है -

१ - सर्व मृदु सर्व गुरु एक देश शीत एक देश उष्ण एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

इसी तरह सर्व मृदु सर्व लघु से १६ भांगे कह देने चाहिए। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है -

१ - सर्व मृदु सर्व लघु एक देश शीत एक देश उष्ण एक देश

स्निग्ध एक देश रूक्ष।

यह पहली चौसट्ठी (६४ भांगों की) हुई।

दूसरी चौसट्ठी इस तरह बनती है – सर्व कर्कश सर्व शीत से १६ भांगे कह देने चाहिए। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है –

१ – सर्व कर्कश सर्व शीत एक देश गुरु एक देश लघु एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

इसी तरह सर्व कर्कश सर्व उष्ण से १६ भांगे कह देने चाहिए। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है –

१ – सर्व कर्कश सर्व उष्ण एक देश गुरु एक देश लघु एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

इसी तरह सर्व मृदु सर्व शीत से १६ भांगे कह देने चाहिए। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है –

१ – सर्व मृदु सर्व शीत एक देश गुरु एक देश लघु एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

इसी तरह सर्व मृदु सर्व उष्ण से १६ भांगे कह देने चाहिए। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है –

१ – सर्व मृदु सर्व उष्ण एक देश गुरु एक देश लघु एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

यह दूसरी चौसट्ठी (६४ भांगों की) हुई।

तीसरी चौसट्ठी इस तरह बनती है। सर्व कर्कश सर्व स्निग्ध से १६ भांगे कह देने चाहिए। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है –

१ - सर्व कर्कश सर्व स्निग्ध एक देश गुरु एक देश लघु एक देश शीत एक देश उष्ण।

इसी तरह सर्व कर्कश सर्व रूक्ष से १६ भांगे कह देने चाहिये। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है -

१ - सर्व कर्कश सर्व रूक्ष एक देश गुरु एक देश लघु एक देश शीत एक देश उष्ण।

इसी तरह सर्व मृदु सर्व स्निग्ध से १६ भांगे कह देने चाहिये। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है -

१ - सर्व मृदु सर्व स्निग्ध एक देश गुरु एक देश लघु एक देश शीत एक देश उष्ण।

इसी तरह सर्व मृदु सर्व रूक्ष से १६ भांगे कह देने चाहिये। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है -

१ - सर्व मृदु सर्व रूक्ष एक देश गुरु एक देश लघु एक देश शीत एक देश उष्ण।

यह तीसरी चौसट्ठी (६४ भांगों की) हुई।

चौथी चौसट्ठी इस तरह बनती है। सर्व गुरु सर्व शीत से १६ भांगे कह देने चाहिए। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है -

१ - सर्व गुरु सर्व शीत एक देश कर्कश एक देश मृदु एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

इसी तरह सर्व गुरु सर्व उष्ण से १६ भांगे कह देने चाहिये। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है -

१ - सर्व गुरु सर्व उष्ण एक देश कर्कश एक देश मृदु एक देश

स्निग्ध एक देश रूक्ष।

इसी तरह सर्व लघु सर्व शीत से १६ भांगे कह देने चाहिये। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है –

१ - सर्व लघु सर्व शीत एक देश कर्कश एक देश मृदु एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

इसी तरह सर्व लघु सर्व उष्ण से १६ भांगे कह देने चाहिये। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है –

१ - सर्व लघु सर्व उष्ण एक देश कर्कश एक देश मृदु एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

यह चौथी चौसट्ठी (६४ भांगों की) हुई।

पांचवीं चौसट्ठी इस तरह बनती है। सर्व गुरु सर्व स्निग्ध से १६ भांगे कह देने चाहिए। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है –

१ - सर्व गुरु सर्व स्निग्ध एक देश कर्कश एक देश मृदु एक देश शीत एक देश उष्ण।

इसी तरह सर्व गुरु सर्व रूक्ष से १६ भांगे कह देने चाहिये। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है –

१ - सर्व गुरु सर्व रूक्ष एक देश कर्कश एक देश मृदु एक देश शीत एक देश उष्ण।

इसी तरह सर्व लघु सर्व स्निग्ध से १६ भांगे कह देने चाहिये। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है –

१ - सर्व लघु सर्व स्निग्ध एक देश कर्कश एक देश मृदु एक देश शीत एक देश उष्ण।

इसी तरह सर्व लघु सर्व रूक्ष से १६ भांगे कह देने चाहिये। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है –

१ - सर्व लघु सर्व रूक्ष एक देश कर्कश एक देश मृदु एक देश शीत एक देश उष्ण।

यह पांचवीं चौसट्ठी (६४ भांगों की) हुई। छठी चौसट्ठी इस तरह बनती है। सर्व शीत सर्व स्निग्ध से १६ भांगे कह देने चाहिए। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है –

१ - सर्व शीत सर्व स्निग्ध एक देश कर्कश एक देश मृदु एक देश गुरु एक देश लघु।

इसी तरह सर्व शीत सर्व रूक्ष से १६ भांगे कह देने चाहिये। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है –

१ - सर्व शीत सर्व रूक्ष एक देश कर्कश एक देश मृदु एक देश गुरु एक देश लघु।

इसी तरह सर्व उष्ण सर्व स्निग्ध से १६ भांगे कह देने चाहिये। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है –

१ - सर्व उष्ण सर्व स्निग्ध एक देश कर्कश एक देश मृदु एक देश गुरु एक देश लघु।

इसी तरह सर्व उष्ण सर्व रूक्ष से १६ भांगे कह देने चाहिये। उसका पहला भांगा इस तरह बनता है –

१ - सर्व उष्ण सर्व रूक्ष एक देश कर्कश एक देश मृदु एक देश गुरु एक देश लघु।

यह छठी चौसट्ठी (६४ भांगों की) हुई। इन छहों चौसट्ठी के ३८४ (६ X ६४ = ३८४) भांगे हुए।

३ - एक देश कर्कश एक देश मृदु एक देश गुरु एक देश लघु एक देश शीत एक देश उष्ण अनेक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष।

४ - एक देश कर्कश एक देश मृदु एक देश गुरु एक देश लघु एक देश शीत एक देश उष्ण अनेक देश स्निग्ध अनेक देश रूक्ष। स्निग्ध और रूक्ष को एक वचन और बहुवचन में रखने से ये चार भांगे बने हैं। इसी तरह उष्ण को बहुवचन में रखने से चार भांगे बनते हैं। इसी तरह शीत को बहुवचन में रखने से चार भांगे बनते हैं। इसी तरह शीत और उष्ण को बहुवचन में रखने से चार भांगे होते हैं। ये १६ भांगे हुए।

एक देश कर्कश एक देश मृदु एक देश गुरु बहुत (अनेक) देश लघु एक देश शीत एक देश उष्ण एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष। इस प्रकार गुरु को एक वचन में और लघु को बहुवचन में रखकर ऊपर कहे उसी तरह से १६ भांगे कह देने चाहिये।

(३) एक देश कर्कश एक देश मृदु बहुत (अनेक) देश गुरु एक देश लघु एक देश शीत एक देश उष्ण एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष। इस तरह इसके भी १६ भांगे कह देने चाहिए।

(४) एक देश कर्कश एक देश मृदु बहुत (अनेक) देश गुरु बहुत (अनेक) देश लघु एक देश शीत एक देश उष्ण एक देश स्निग्ध एक देश रूक्ष। इस तरह इसके भी १६ भांगे कह देने चाहिये। इन सब को मिलाकर कर्कश और मृदु को एक वचन में रखने से पहले चौसठ भांगे बनते हैं। इसी तरह 'कर्कश' को एकवचन में और 'मृदु' को बहुवचन में रखने से दूसरे चौसठ भांगे

बन जाते हैं। इसी तरह 'कर्कश' को बहुवचन में और 'मृदु' को एकवचन में रखने से तीसरे चौसठ भांगे बन जाते हैं। इसी तरह 'कर्कश और मृदु' दोनों को बहुवचन में रखने से चौथे चौसठ भांगे बन जाते हैं। ये चारों चौसट्ठी मिला देने से आठ संयोगी (आठ स्पर्शों के संयोग से बनने वाले) २५६ भांगे बनते हैं। इस तरह बादर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध के स्पर्श सम्बन्धी १२९६ (चार संयोगी १६, पांच संयोगी १२८, छह संयोगी ३८४, सात संयोगी ५१२ और आठ संयोगी २५६ = १२९६) भांगे हुये।

इन भांगों को समझने के लिए आंक दिये जाते हैं। इन अंकों पर ध्यान देने से भांगे आसानी से बोले जा सकते हैं -
११११११११, १११११११२, १११११२१, ११११११२२, १११११२११, १११११२१२, १११११२२१, १११११२२२, ११११२१११, ११११२११२, ११११२१२१, ११११२१२२, ११११२२११, ११११२२१२, ११११२२२१, ११११२२२२, १११२११११, १११२११११, १११२११२१, १११२११२२, १११२१२११, १११२१२१२, १११२१२२२, १११२१२२२, १११२२१११, १११२२११२, १११२२१२१, १११२२१२२, १११२२२११, १११२२२१२, १११२२२२१, १११२२२२२, ११२१११११, ११२११११२, ११२१११२१, ११२१११२२, ११२११२११, ११२११२१२, ११२११२११, ११२११२२२, ११२१२१११, ११२१२११२, ११२१२१२१, ११२१२१२२, ११२१२२११, ११२१२२१२, ११२१२२२१, ११२१२२२२, ११२२११११, ११२२१११२, ११२२११२१, ११२२५१२२, ११२२१२११, ११२२१२१२, ११२२१२२१, ११२२१२२२, ११२२२११, ११२२२२१२, ११२२२१२१, ११२२२१२२, ११२२२२११, ११२२२२१२, ११२२२२१२, ११२२२२२२।

ये ६४ आंक हैं, इनसे ६४ भांगे बोले जा सकते हैं। जहां १ एक का अंक है वहां एक देश (देसे) बोलना चाहिये। जहां २ दो का अंक है वहां बहुत (अनेक) देश (देसा) बोलना चाहिये। ये सब एक करोड़ ग्यारह लाख से ३२ भांगे और एक करोड़ बारह लाख से ३२ भांगे कहे गये हैं। इसी तरह एक करोड़ इक्कीस लाख से ३२ भांगे कह देने चाहिये। जैसे - १२११११११।

एक करोड़ बाईस लाख से ३२ भांगे कह देने चाहिये। जैसे १२२११११११।

दो करोड़ ग्यारह लाख से ३२ भांगे कह देने चाहिये। जैसे २११११११।

दो करोड़ बारह लाख से ३२ भांगे कह देने चाहिये। जैसे २१२११११।

दो करोड़ इक्कीस लाख से ३२ भांगे कह देने चाहिये। जैसे २२१११११।

दो करोड़ बाईस लाख से ३२ भांगे कह देने चाहिये। जैसे २२२११११। इस प्रकार आठ संयोगी के २५६ भांगे हुए।

कुल भांगे ६४७० हुए। खुलासा इस प्रकार है–

द्रव्य	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श	योग
१	५	२	५	४	१६
२	१५	३	१५	९	४२
३	४५	५	४५	२५	१२०

द्रव्य	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श	योग
४	८०	६	८०	३६	२२२
५	१४१	६	१४१	३६	३२४
६	१८६	६	१८६	३६	४१४
७	२१६	६	२१६	३६	४७४
८	२३१	६	२३१	३६	५०४
९	२३६	६	२३६	३६	५१४
१०	२३७	६	२३७	३६	५१६
संख्याता	२३७	६	२३७	३६	५१६
असंख्याता	२३७	६	२३७	३६	५१६
सूक्ष्म अनन्ता	२३७	६	२३७	३६	५१६
बादर अनन्ता	२३७	६	२३७	१२९६	१७७६
	२३५०	७६	२३५०	१६९४	६४७०

नोट :- एक परमाणु से लेकर सूक्ष्म अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक स्पर्श के २८८ भांगा होते हैं और बादर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध के १२९६ भांगा होते हैं।

२३. भवनद्वार का थोकड़ा

१ - नामद्वार - अहो भगवन्! नरक किसे कहते हैं ?

हे गौतम ! घोर पापाचरण करने वाले जीव अपने पापों का फल भोगने के लिए अधोलोक के जिन स्थानों में पैदा होते हैं, उन्हें

नरक कहते हैं अथवा मनुष्य और पशु जहां अपने अपने पापों के अनुसार भंयकर कष्ट उठाते हैं उन्हें नरक कहते हैं।

अहो भगवन् ! वे कितनी हैं ? हे गौतम ! वे सात हैं।

अहो भगवन् ! उनके नाम क्या हैं ? हे गौतम ! उनके नाम इस प्रकार हैं - १ घम्मा, २ वंसा, ३ सीला, ४ अंजना, ५ रिट्ठा, ६ मघा, ७ माघवई।

२ - गोत्रद्वार - अहो भगवन् ! उन सातों नरकों का गोत्र क्या है ? हे गौतम ! उनके गोत्र इस प्रकार हैं - १ रत्नप्रभा, २ शर्कराप्रभा, ३ वालुकाप्रभा, ४ पङ्कप्रभा ५ धूमप्रभा, ६ तम:प्रभा, ७ तमस्तमप्रभा या महातम:प्रभा।

अहो भगवन् ! रत्नप्रभा किसे कहते हैं ? हे गौतम ! पहली नरक के तीन काण्ड हैं - १ खरकाण्ड, २ पङ्कबहुलकाण्ड और ३ अव्वहुलकाण्ड। खरकाण्ड १६००० सोलह हजार योजन का मोटा है। उसमें जले हुए कोयले के समान रत्न हैं। उन रत्नों की प्रभा पड़ती है। इसीलिए पहली नरक को रत्नप्रभा कहते हैं।

अहो भगवन् ! शर्कराप्रभा किसे कहते हैं ? हे गौतम ! दूसरी नरक में तीखे तीखे कंकर हैं। वे छुरी की धार और तलवार की धार से भी अधिक तीखे हैं। ऐसे कंकरों का वहां तला है, पीठिक़ा है, इसलिए उसे शर्कराप्रभा कहते हैं।

अहो भगवन् ! वालुकाप्रभा किसे कहते हैं ? हे गौतम ! तीसरी नरक में बालू रेत अधिक है। वह रेत भडभूंजा की भाड़ (भट्टी) और लोहार की एरण से भी अनन्तगुणा अधिक तपती है, इसलिए तीसरी नरक को वालुकाप्रभा कहते हैं।

अहो भगवन् ! पङ्कप्रभा किसे कहते हैं ? हे गौतम ! चौथी नरक में रक्त और मांस का कीचड़ अधिक है। इसलिए इसे पङ्कप्रभा कहते हैं।

अहो भगवन् ! धूमप्रभा किसे कहते हैं ? हे गौतम ! पांचवीं नरक में धुएं की अधिकता है। वह धुआं सोमलखार, आक और धतूरे के धुएं से भी अधिक खारा है, इसलिए इसे धूमप्रभा कहते हैं।

अहो भगवन् ! तम:प्रभा किसे कहते हैं ? हे गौतम ! छठी नरक में अन्धकार बहुत है। जैसे श्रावण-भाद्र मास की अनावस्या की रात्रि में खूब मेघ छाये हुए हों। उससे अनन्तगुणा अन्धकार वहां है, इसलिए उसे तम:प्रभा कहते हैं।

अहो भगवन् ! तमस्तम:प्रभा किसे कहते हैं ? हे गौतम ! गाढ अन्धकार से परिपूर्ण होने के कारण सातवीं नरक को तमस्तम:प्रभा कहते हैं। इसको महातम:प्रभा भी कहते हैं, उसका अर्थ है जहां घोर एवं गाढ अन्धकार की अधिकता हो। जैसे श्रावण भाद्र मास की अमावस्या की रात्रि में खूब बादल छाये हुए हों, उस समय सातवें भोंयरे (तलघर) में जैसा अन्धकार हो, उससे भी अनन्तगुणा अन्धकार सातवीं नरक में है। इसलिए उसे तमस्तम:प्रभा या महातम:प्रभा कहते हैं।

अहो भगवन् ! इन नरकों के नाम और गोत्र अलग अलग क्यों कहे गये हैं। हे गौतम ! शब्दार्थ से सम्बन्ध न रखने वाली अनादिकाल से प्रचलित संज्ञा को नाम कहते हैं और शब्दार्थ का ध्यान रख कर किसी वस्तु का नाम दिया जाता है उसे गोत्र

कहते हैं अर्थात् नाम अर्थरहित होता है और गोत्र अर्थयुक्त होता है। इसलिए धम्मा आदि सात पृथ्वियों के नाम हैं और रत्नप्रभा आदि गोत्र हैं।

३ - पिण्डद्वार - पहली रत्नप्रभा नरक का पिण्ड एक लाख अस्सी हजार योजन का है। इसमें ऊपर की ठीकरी (ठोस भाग) एक हजार योजन की है और नीचे की ठीकरी एक हजार योजन की है। बीच में एक लाख अठहत्तर हजार की पोलार है। उसमें तेरह * पाथड़े (प्रस्तर या प्रतर) हैं और बारह आंतरे (अन्तर) हैं।

दूसरी शर्कराप्रभा नरक का पिण्ड एक लाख बत्तीस हजार योजन का है। उसमें एक हजार योजन की ऊपर ठीकरी है और एक हजार योजन की नीचे ठीकरी है। बीच में एक लाख तीस हजार की पोलार है, उसमें ११ पाथड़े और १० आन्तरे हैं।

तीसरी वालुकाप्रभा नरक का पिण्ड एक लाख अट्ठाईस हजार योजन का है। उसमें से ऊपर एक हजार योजन की ठीकरी है और नीचे एक हजार योजन की ठीकरी है। बीच में एक लाख

** नरक के एक एक परदे के बाद जो स्थान होता है, उसको पाथड़ा (प्रस्तर या प्रतर) कहते हैं। रत्नप्रभा से लेकर छठी तमःप्रभा तक प्रत्येक नरक में दो तरह के नरकावास हैं-आवलिका-प्रविष्ट और प्रकीर्णक। जो नरकावास चारों दिशाओं में पंक्ति रूप से रहे हुए हैं उनको आवलिकाप्रविष्ट कहते हैं और जो पंक्ति रूप से नहीं हैं किन्तु इधर उधर बिखरे हुए हैं उनको प्रकीर्णक कहते हैं। रत्नप्रभा में तेरह प्रतर हैं।*

छब्बीस हजार योजन की पोलार है। उसमें नौ पाथड़े और आठ आन्तरे हैं।

चौथी पंकप्रभा नरक का पिण्ड एक लाख बीस हजार योजन का है। उसमें ऊपर एक हजार योजन की ठीकरी है और नीचे एक हजार योजन की ठीकरी है। बीच में एक लाख अठारह हजार योजन की पोलार है, उसमें सात पाथड़े और छह आन्तरे हैं।

पांचवीं धूमप्रभा नरक का पिण्ड एक लाख अठारह हजार योजन का है। उसमें से ऊपर एक हजार योजन की ठीकरी है और नीचे एक हजार योजन की ठीकरी है। बीच में एक लाख सोलह हजार योजन की पोलार है, उसमें पांच पाथड़े और चार आन्तरे हैं।

छठी तमःप्रभा नरक का पिण्ड एक लाख सोलह हजार योजन का है । उसमें से ऊपर एक हजार योजन की ठीकरी है और नीचे भी एक हजार योजन की ठीकरी है । बीच में एक लाख चौदह हजार योजन की पोलार है, उसमें तीन पाथड़े और दो आन्तरे हैं ।

सातवी तमस्तमप्रभा (महातमःप्रभा) नरक का पिण्ड एक लाख आठ हजार योजन का है । उसमें से ऊपर ५२।। साढे बावन हजार योजन की ठीकरी है और नीचे भी ५२।। साढे बावन हजार योजन की ठीकरी है । बीच में तीन हजार योजन की पोलार है । उसमें एक ही पाथड़ा है, आन्तरा नहीं है ।

(४) आंतराद्वार (अन्तरद्वार)-अहो भगवन् ! नरक के

एक पाथड़े का दूसरे पाथड़े से कितना अन्तर है ? हे गौतम ! पहली नरक में एक पाथड़े से दूसरे पाथड़े का अन्तर ग्यारह हजार पांच सौ तियासी योजन और एक योजन का तीसरा भाग ११५८३ $\frac{१}{३}$ है । इस तरह सब पाथड़ों का अन्तर है । दूसरी नरक में हर एक पाथड़े का अन्तर नौ हजार सात सौ ९७०० योजन का है । तीसरी नरक में प्रत्येक पाथड़े का अन्तर बाहर हजार तीन सौ पचहत्तर १२३७५ योजन का है । चौथी नरक में प्रत्येक पाथड़े का अन्तर सोलह हजार एक सौ छासठ योजन और एक योजन में तीन भाग में से दो भाग १६१६६ $\frac{२}{३}$ योजन का है । पांचवीं नरक में प्रत्येक पाथड़े का अन्तर साढे बावन हजार ५२५०० योजन का है । सातवीं नरक में अंतर नहीं है, क्योंकि वहां एक ही पाथड़ा है ।

(५) बाहल्य (मोटाई) द्वार– रत्नप्रभा की मोटाई (जाडापणा) एक लाख अस्सी हजार योजन की है । शर्कराप्रभा की मोटाई एक लाख बत्तीस हजार योजन है । वालुकाप्रभा की मोटाई एक लाख अट्ठाईस हजार योजन की है । पंकप्रभा की मोटाई एक लाख बीस योजन की है । धूमप्रभा की मोटाई एक लाख अठारह हजार योजन की है । तम:प्रभा की मोटाई एक लाख सोलह हजार योजन की है । तमस्तम:प्रभा (महातम:प्रभा) की मोटाई एक लाख आठ हजार योजन की है ।

(६) काण्डद्वार– अहो भगवन् ! पहली नरक में कितने * काण्ड हैं ? हे गौतम ! तीन काण्ड हैं– खरकाण्ड, पंकबहुलकाण्ड

** काण्ड–भूमि के भागविशेष को काण्ड कहते हैं।*

और अप्पबहुलकाण्ड । खरकाण्ड कठिन अर्थात् कठोर है, वह सोलह हजार योजन का है । उसमें जले हुए कोयलों के समान रत्न हैं । दूसरा पंकबहुलकाण्ड है, उसमें कीचड़ सरीखे पुद्गलों की अधिकता है । वह चौरासी हजार योजन का है । तीसरा अप्पबहुलकाण्ड है, उसमें पानी सरीखे पुद्गलों की अधिकता है । वह अस्सी हजार योजन का है । दूसरी नरक से लेकर सातवीं नरक तक छह नरकों में काण्ड नहीं हैं, वे सब एक ही प्रकार की हैं ।

(७) आधारद्वार– अहो भगवन् ! पहली नरक किसके आधार पर रही हुई है ? हे गौतम ! पहली नरक के नीचे बीस हजार योजन की मोटी घनोदधि है । उसके नीचे असंख्यात योजन की मोटी (जाड़ी) घनवायु है । उसके नीचे असंख्यात योजन की मोटी तनुवायु है । उसके नीचे असंख्यात योजन की मोटी आकाशास्तिकाय है । उसके नीचे दूसरी नरक है । दूसरी नरक के नीचे पहली नरक की तरह घनोदधि, घनवायु, तनुवायु और आकाशास्तिकाय है । इसी तरह सातों नरक के नीचे आधार कह देना चाहिए । नीचे अलोक है ।

(८) विवरणद्वार– नरक तो देश के समान है । नरकावासा नगर के समान हैं और कुम्भियां घर के समान हैं । वे कुम्भियां वज्ररत्न की बनी हुई हैं । वे फोड़ने से फूटतीं नहीं हैं और तोड़ने से टूटती नहीं हैं । उनमें से कुछ कुम्भियां तिजारा (पोस्तअफीम) की डोडी के आकार हैं । कितनीक कुम्भियां चमड़े की कुप्पी के आकार हैं । कितनीक ऊंट की गर्दन के आकार हैं । कितनीक

तेल के डिब्बे के आकार हैं । उन कुम्भियों में पापी जीव आकर उत्पन्न होते हैं । उनमें वे अत्यन्त दुःख पाते हैं । उनकी अवगाहना बड़ी होने से और कुंभियों का मुख संकड़ा होने से वे उनमें से बाहर नहीं निकल सकते हैं । फिर परमाधामी देव आकर उनके टुकड़े टुकड़े करके उनको कुंभियों में से बाहर निकालते हैं । बाहर निकालते ही वे पारे के समान वापिस मिल जाते हैं । तब उनको कुंभी में डाल कर पचाते हैं । परमाधामी देव उनको मारते हैं, पीटते हैं और अनेक प्रकार की पीड़ा पहुंचाते हैं । वे दस प्रकार की क्षेत्रवेदना का निरन्तर अनुभव करते हैं । वे वेदनाएं इस प्रकार हैं–

१. क्षुधावेदना–नारकी जीवों में अनन्त भूख होती है । असत्कल्पना से कल्पना कीजिये कि जैसे कोई देव संसार की सारी खाने की चीजों को इकट्ठी करके एक नैरयिक को दे देवे तो भी उसकी भूख न मिटे । नारकी जीवों में इतनी भूख है किन्तु उन्हें खाने को एक भी दाना नहीं मिलता ।

२. नारकी जीवों में अनन्त तृषा होती है । असत्-कल्पना से कल्पना कीजिये कि जैसे कोई देव सब द्वीप समुद्रों का पानी इकट्ठा करके एक नैरयिक को दे देवे तो भी उसकी प्यास न बुझे । नारकी जीवों में इतनी प्यास है किन्तु उन्हें पीने को एक बूंद भी पानी नहीं मिलता ।

३ * नारकी जीवों में अनन्त उष्ण वेदना है । जैसे कोई

** पहली, दूसरी और तीसरी नरक में शीतयोनि वाले नैरयिक हैं उन्हें उष्ण की वेदना होती हैं। चौथी नरक में शीत और उष्ण*

लोहार लोह के गोले को तपा कर खूब गर्म करे और पन्द्रह दिन तक कूट कर उसे खूब मजबूत करे । ऐसे तपे हुए लोह के गोले को यदि नरक में रख दिया जाय तो वह नरक की गर्मी से गल कर क्षण भर में पानी हो जाय । दूसरा दृष्टान्त जैसे किसी वन में आग लग गई हो । उस आग की लपट से घबराया हुआ कोई हाथी भूख प्यास से पीड़ित होकर भागता हुआ जंगल से बाहर निकले । वहां कोई सरोवर देखकर धीरे-धीरे उसमें उतरे और उसमें बैठे तो उसके शरीर की उष्णता दूर हो जाय, पानी पीने से उसकी प्यास दूर हो जाय, कमल खाने से भूख मिट जाय । इसके बाद वह बाहर निकल कर किसी वृक्ष की ठण्डी छाया में बैठ जाय तो वह हाथी जैसा आनन्द और सुख मानता है । उसी तरह असत्कल्पना से किसी नारकी जीव को नरक से बाहर निकाल कर केलू की भट्टी में, ईंटों की भट्टी में, चूने की भट्टी में, रख दिया जाय तो वह नैरयिक उस हाथी के समान सुख माने और उसे वहीं नींद भी आ जाय । तीसरा दृष्टान्त-ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के समय जब

दोनों वेदनाएं होती हैं, वहां शीतयोनि वाले नैरयिक ज्यादा हैं और उष्णयोनि वाले थोड़े हैं। पांचवीं नरक में उष्ण और शीत दोनों वेदनाएं होती हैं, वहां शीतयोनि वाले नैरयिक थोड़े हैं और उष्णयोनि वाले बहुत हैं। छठी नरक में सिर्फ उष्णयोनि वाले नैरयिक हैं उन्हें शीत की वेदना होती है। सातवीं नरक में महाउष्णयोनि वाले नैरयिक हैं, उन्हें शीत की प्रचंड वेदना होती है।

शीतयोनि वाले नैरयिकों को उष्ण की वेदना होती है और उष्णयोनि वाले नैरयिकों को शीत की वेदना होती है।

आकाश में कोई बादल न हो, वायु बिल्कुल बन्द हो, सूर्य प्रचण्ड रूप से तप रहा हो, उस समय पित्त प्रकृति वाला व्यक्ति जैसी उष्णवेदना का अनुभव करता है । उष्णवेदना वाली नरकों में उससे भी अनन्तगुणी वेदना होती है । यदि उन जीवों को नरक से निकाल कर प्रबल रूप से जलते हुए खैर के अंगारों में डाल दिया जाय तो वे अमृतरस से स्नान किये हुए पुरुष की तरह अत्यन्त सुख का अनुभव करेंगे और इस सुख से उन्हें नींद भी आ जायगी ।

नारकी जीवों में अनन्त शीतवेदना है । जैसे कोई लोहार लोह के गोले को तपा तपा कर एक महीना भर कूटे और उसे मजबूत बनावे । उस गोले को यदि नरक में रख दिया जाय तो वह तत्क्षण ही ठण्डा हो कर पिघल जाय और पीछा हाथ नहीं आवे । दूसरा दृष्टान्त-जैसे पौष माघ मास की आधी रात का समय हो, आकाश बादल रहित हो, शरीर को कंपा देनी वाली ठण्डी हवा चल रही हो, उस समय में यदि कोई पुरुष हिमालय पर्वत के बर्फीले शिखर पर बैठा हो, अग्नि मकान और वस्त्रादि शीत निवारण के सभी साधनों से रहित वह व्यक्ति जैसी शीतवेदना का अनुभव करता है, उससे भी अनन्तगुणी वेदना शीतप्रधान नरकों में होती है । यदि उन जीवों को नरक से निकाल कर उस पुरुष के स्थान पर बैठा दिया जाय तो उन्हें परम सुख हो और नींद भी आ जाय । ५ अनन्त परवशता, ६ अनन्त दाह, ७ अनन्त ज्वर, ८ अनन्त खाज-खुजली, ९ अनन्त भय, १० अनन्त शोक उन नारकी जीवों में होता है । एक एक नारकी जीव के पांच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानवे हजार पांच सौ चौरासी ५६८९९५८४ तरह के

रोग लगे हुए हैं । यह दस प्रकार की क्षेत्रवेदना से सदा काल भोगते रहते हैं ।

९ नरकावासद्वार— सातों नरकों में ८४ लाख नरकावास है । पहली नरक में ३० लाख नरकावास हैं, दूसरी में २५ लाख, तीसरी में १५ लाख, चौथी में दस लाख, पांचवीं में तीन लाख, छठी में एक लाख में पांच कम और सातवीं में पांच । ये सब मिला कर ८४ लाख नरकावास हैं । ये नरकावास अन्दर से गोल हैं, बाहर से चौखूणे हैं और नीचे खुरपा के आकार वाले हैं ।

अहो भगवन् ! ये नरकावास कितने लम्बे-चौड़े हैं ? हे गौतम ! कितनेक नरकावास संख्यात योजन के हैं और कितनेक असंख्यात योजन के हैं । जघन्य तो जम्बूद्वीप प्रमाण हैं, मध्यम अढाई द्वीप प्रमाण हैं और उत्कृष्ट संख्यात असंख्यात योजन के हैं । कल्पना कीजिये जैसे कोई चपल एवं शीघ्र गति वाला देव ८५०७४० योजन का एक डग भरे, एक कदम रखे, ऐसी तेज गति से वह छह मास तक चले तो संख्याता योजन के नरकावासों का पार आ सकता है किन्तु असंख्याता योजन वाले नरकावासों का पार नहीं पा सकता ।

अहो भगवन् ! संख्याता योजन वाले नरकावास कितने हैं और असंख्याता योजन वाले कितने हैं ? हे गौतम ! सब नरकावासों के पांच हिस्सा करें । उसमें से एक हिस्सा तो संख्याता योजन के हैं और बाकी चार हिस्सा असंख्याता योजन के हैं ।

ये नरकावास दो तरह के हैं— पंक्तिबद्ध और पुष्पावेकरणी (बिखरे हुए फूलों के समान) । अहो भगवन् ! पंक्तिबद्ध

तिहाई भाग ७$\frac{2}{3}$ । छठी नरक में सात कोस दो तिहाई भाग ७$\frac{2}{3}$ और सातवीं नरक में आठ कोस की मोटाई है ।

अथवा इन तीन वलयों की मोटाई इस तरह से कही जाती है– पहली नरक में घनोदधिवलय की मोटाई छह योजन की है । घनवातवलय की मोटाई साढ़े चार योजन है और तनुवातवलय की मोटाई डेढ़ योजन की है । इस प्रकार पहली नरक और अलोक के बीच में बारह योजन की दूरी है । दूसरी नरक में घनोदधिवलय की मोटाई छह योजन एक तिहाई भाग ६$\frac{1}{3}$ है । घनवातवलय की मोटाई पौने पांच योजन है और तनुवातवलय की मोटाई डेढ़ योजन और कोस का एक तिहाई भाग है । तीसरी नरक में घनोदधिवलय की मोटाई छह योजन दो तिहाई ६$\frac{2}{3}$ है । घनवातवलय की मोटाई पांच योजन है और तनुवातवलय की मोटाई डेढ़ योजन और कोस का दो तिहाई भाग है । चौथी नरक में घनोदधिवलय की मोटाई सात योजन की है । घनवातवलय की मोटाई सवा पांच योजन है और तनुवातवलय की मोटाई पौने दो योजन की है । पांचवीं नरक में घनोदधिवलय की मोटाई सात योजन एक तिहाई भाग ७$\frac{1}{3}$ है । घनवातवलय की मोटाई साढ़े पांच योजन है और तनुवातवलय की मोटाई पौने दो योजन और एक कोस का तीसरा भाग है । छठी नरक में घनोदधिवलय की मोटाई सात योजन दो तिहाई भाग ७$\frac{2}{3}$ है । घनवातवलय की मोटाई पौने छह योजन है और तनुवातवलय की मोटाई पौने दो योजन और एक कोस का दो तिहाई भाग है । सातवीं नरक में घनोदधिवलय की मोटाई आठ योजन की है । घनवातवलय की मोटाई छह योजन की है

और तनुवातवलय की मोटाई दो योजन की है ।

घनोदधिवलय, घनवातवलय और तनुवातवलय की मोटाई मिलाने से प्रत्येक नरक और अलोकाकाश के बीच का अन्तराल ऊपर लिखे अनुसार निकल आता है । घनोदधि रत्नप्रभापृथ्वी को घेरे हुए वलयाकार स्थित है । घनवात घनोदधि को घेरे हुए है और तनुवात घनवात को घेरे हुए है । सभी नरकों में यह क्रम है ।

१२ पाथड़ाद्वार– पहली नरक में १३ पाथड़े हैं । एक एक पाथड़ा तीन तीन हजार योजन का मोटा है । उसमें से एक हजार योजन की ठीकरी ऊपर छोड़ कर और एक हजार योजन की ठीकरी नीचे छोड़ कर बीच में एक हजार योजन की पोलार है । उसमें नारकी जीव रहते हैं । दूसरी नरक में ११ पाथड़े हैं । तीसरी नरक में ९ पाथडे हैं । चौथी नरक में ७ पाथड़े हैं । पांचवीं नरक में ५ पाथड़े हैं । छठी नरक में तीन पाथड़े हैं और सातवीं नरक में एक ही पाथड़ा है । यह सब मिलाकर ४९ पाथड़े हैं ।

१३ अवगाहनाद्वार– अहो भगवन् ! इन पाथड़ो में रहने वाले नारकी जीवों की अवगाहना कितनी है ? हे गौतम ! पहली नरक में १३. पाथड़े हैं । उनमें से पहले पाथड़े के जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट तीन हाथ की है । दूसरी पाथड़े के जीवों की अवगाहना जघन्य तीन हाथ की, उत्कृष्ट पांच हाथ और ८।। अंगुल है । तीसरी पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ७ हाथ और १७ अंगुल की है । चौथे

पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना दस हाथ और १।। अंगुल की है । पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १२ हाथ और १० अंगुल की है । छठे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १४ हाथ और १८।। अंगुल की है । सातवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १७ हाथ और ३ अंगुल की है । आठवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १९ हाथ और ११।। अंगुल की है । नवमें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २१ हाथ और २० अंगुल की है । दसवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २४ हाथ और ४।। अंगुल की है । ग्यारहवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २६ हाथ और १२ अंगुल की है । बारहवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २८ हाथ और २१ ।। अंगुल की है । तेरहवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ७।। धनुष और ६ अंगुल की है ।

दूसरी नरक में ११ पाथड़े हैं । पहले पाथड़े में रहने वाले नारकी जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना ८।। धनुष २ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें, दो भाग $\frac{२}{११}$ की है । दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ९ धनुष २२ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें चार भाग $\frac{४}{११}$ की है । तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ९।। धनुष १८ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें छह भाग $\frac{६}{११}$ ही है । चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १०।। धनुष १४ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें आठ भाग $\frac{८}{११}$ की है । पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ११ धनुष १० अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें दस भाग $\frac{१०}{११}$की है । छठे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १२ धनुष ७ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें एक भाग $\frac{१}{११}$की है । सातवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १२।। धनुष ३ अंगुल और एक

अंगुल के ग्यारहवें तीन भाग $\frac{३}{११}$ की है । आठवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १३ धनुष २३ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें पांच भाग $\frac{५}{११}$ की है । नवमें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १४ धनुष १९ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें सात भाग $\frac{७}{११}$ की है । दसवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १४।। धनुष १५ अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें नौ भाग $\frac{९}{११}$ की है । ग्यारहवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १५।। धनुष १२ अंगुल की है ।

तीसरी नरक में ९ पाथड़े हैं । पहले पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १७। धनुष १० अंगुल और एक अंगुल के नवमें छह भाग $\frac{६}{९}$ की है । दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १९ धनुष ९ अंगुल और एक अंगुल के नवमें तीन भाग $\frac{३}{९}$ की है । तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २०।। धनुष ८ अंगुल की है । चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २२।। धनुष ६ अंगुल और एक अंगुल के नवमें छह भाग $\frac{६}{९}$ की है । पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २४। धनुष ५ अंगुल और एक अंगुल के नवमें तीन भाग $\frac{३}{९}$ की है । छठे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २६ धनुष चार अंगुल की है । सातवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २९।। धनुष दो अंगुल और एक अंगुल के नवमें छह भाग $\frac{६}{९}$ की है । आठवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २९।। धनुष एक अंगुल और एक अंगुल के नवमें तीन भाग $\frac{३}{९}$ की है । नवमें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ३२। धनुष की है ।

चौथी नरक में ७ पाथड़े हैं । पहले पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ३५।। धनुष २० अंगुल और एक अंगुल के सातवें चार

भाग ४/७ की है । दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ४० धनुष १७ अंगुल और एक अंगुल के सातवें एक भाग १/७ की है । तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ४४।। धनुष १३ अंगुल और एक अंगुल के सातवें पांच भाग ५/७ की है । चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ४९ धनुष १० अंगुल और एक अंगुल के सातवें दो भाग २/७ की है । पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ५३।। धनुष ६ अंगुल और एक अंगुल के सातवें छह भाग ६/७ की है । छठे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ५८ धनुष ३ अंगुल और एक अंगुल के सातवें तीन भाग ३/७ भाग की है । सातवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ६२।। धनुष की है ।

पांचवीं नरक में ५ पाथड़े हैं । पहले पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ७५ धनुष की है । दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ८७।। धनुष की है । तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १०० धनुष की है । चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना ११२।। धनुष की है । पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १२५ धनुष की है ।

छठी नरक में तीन पाथड़े हैं । पहले पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना १६६।। धनुष १६ अंगुल की है । दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २०८। धनुष ८ अंगुल की है । तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट अवगाहना २५० धनुष की है ।

सातवीं नरक में एक पाथड़ा है । उसकी उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष की है । *

** पहली नरक के प्रत्येक पाथड़े में दो हाथ अर्थात् आधा धनुष और ८।। अंगुल की बढ़ती जाती है। दूसरी नरक के प्रत्येक पाथड़े में*

१४ स्थितिद्वार– अब प्रत्येक पाथड़े के नारकी जीवों की स्थिति बताई जाती हैं– पहली नरक में १३ पाथड़े हैं । उनमें से पहले पाथड़े की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट ९० हजार वर्ष की है । दूसरे पाथड़े की जघन्य स्थिति १० लाख वर्ष की और उत्कृष्ट ९० लाख वर्ष की है । तीसरे पाथड़े की जघन्य स्थिति ९० लाख वर्ष की और उत्कृष्ट करोड़ पूर्व की है । चौथे पाथड़े की जघन्य स्थिति करोड़ पूर्व की और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें एक भाग की है । पांचवें पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें एक भाग और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें दो भाग ($\frac{२}{१०}$) की है । छठे पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें दो भाग ($\frac{२}{१०}$) और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें तीन भाग ($\frac{३}{१०}$) की है । सातवें पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें तीन भाग ($\frac{३}{१०}$) और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें चार भाग ($\frac{४}{१०}$) की है । आठवें

दो हाथ बीस अंगुल और एक अंगुल के ग्यारहवें दो भाग बढ़ती जाती है। तीसरी नरक के प्रत्येक पाथड़े में छह हाथ अर्थात् डेढ धनुष २२ अंगुल और अंगुल के नवमें छह भाग बढ़ती जाती है। चौथी नरक के प्रत्येक पाथड़े में ४ धनुष बीस अंगुल और एक अंगुल के सातवें चार भाग ($\frac{४}{७}$) बढती जाती है। पांचवीं नरक के प्रत्येक पाथड़े में १२।। धनुष बढती जाती है। छठी नरक के प्रत्येक पाथड़े में ४१।। धनुष १६ अंगुल बढ़ती जाती है।

नरक में उत्पन्न होते समय सब जीवों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग होती है। यहां सब की उत्कृष्ट अवगाहना बताई गई है।

पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें चार भाग ($\frac{४}{१०}$) और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें पांच भाग ($\frac{५}{१०}$) की है । नवमें पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें पांच भाग ($\frac{५}{१०}$) और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें छह भाग ($\frac{६}{१०}$) की है । दसवें पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें छह भाग ($\frac{६}{१०}$) और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें सात भाग ($\frac{७}{१०}$) की है । ग्यारहवें पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें सात भाग ($\frac{७}{१०}$) और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें आठ भाग ($\frac{८}{१०}$) की है । बारहवें पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें आठ भाग ($\frac{८}{१०}$) और उत्कृष्ट एक सागर के दसवें नव भाग ($\frac{९}{१०}$) की है । तेरहवें पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर के दसवें नव भाग ($\frac{९}{१०}$) और उत्कृष्ट एक सागर की है ।

दूसरी नरक में ग्यारह पाथड़े हैं। पाहले पाथड़े की जघन्य स्थिति एक सागर की और उत्कृष्ट एक सागर और एक सागर के ग्यारहवें दो भाग ($\frac{२}{११}$) की है । दूसरे पाथड़े की * उत्कृष्ट स्थिति एक सागर और एक सागर के ग्यारहवें चार भाग ($\frac{४}{११}$) की है । तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर और एक सागर के ग्यारहवें छह भाग ($\frac{६}{११}$) की है । चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर और एक सागर के ग्यारहवें आठ भाग $\frac{८}{११}$ की है । पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर और एक

** जो पहले पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति है वह आगे के पाथड़े की जघन्य स्थिति होती है। इसलिए यहां आगे के पाथड़ों की जघन्य स्थिति न बतलाते हुए, उत्कृष्ट स्थिति ही बतलाई गई है।*

सागर के ग्यारहवें दस भाग ($\frac{१०}{११}$) की है । छठे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति दो सागर और एक सागर के ग्यारहवें एक भाग ($\frac{१}{११}$) की है । सातवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति दो सागर और एक सागर के ग्यारहवें तीन भाग ($\frac{३}{११}$) की है । आठवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति दो सागर और एक सागर के ग्यारहवें पांच भाग ($\frac{५}{११}$) की है । नवमें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति दो सागर और एक सागर के ग्यारहवें सात भाग ($\frac{७}{११}$) की है । दसवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति दो सागर और एक सागर के ग्यारहवें नौ भाग ($\frac{९}{११}$) की है । ग्यारहवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागर की है ।

तीसरी नरक में ९ पाथड़े हैं । पहले पाथड़े की जघन्य स्थिति तीन सागर की है और उत्कृष्ट स्थिति तीन सागर और एक सागर के नववें चार भाग ($\frac{४}{९}$) की है । दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागर और एक सागर के नववें आठ भाग ($\frac{८}{९}$) की है । तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति चार सागर और एक सागर के नववें तीन भाग ($\frac{३}{९}$) की है । चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति चार सागर और एक सागर के नववें सात भाग ($\frac{७}{९}$) की है । पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति पांच सागर और एक सागर के नववें दो भाग ($\frac{२}{९}$) की है । छठे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति पांच सागर और एक सागर के नववें छह भाग ($\frac{६}{९}$) की है । सातवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति छह सागर और एक सागर के नववें एक भाग ($\frac{१}{९}$) की है । आठवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति छह सागर और एक सागर के नववें पांच भाग ($\frac{५}{९}$) की है ।

नववें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति सात सागर की है ।

चौथी नरक में सात पाथड़े हैं । पहले पाथड़े की जघन्य स्थिति सात सागर की है । उत्कृष्ट स्थिति सात सागर और एक सागर के सातवें तीन भाग ($\frac{३}{७}$) की है । दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति सात सागर और एक सागर के सातवें छह भाग ($\frac{६}{७}$) की है । तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति आठ सागर और एक सागर के सातवें दो भाग ($\frac{२}{७}$) की है । चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति आठ सागर और एक सागर के सातवें पांच भाग ($\frac{५}{७}$) की है । पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति नौ सागर और एक सागर के सातवें एक भाग ($\frac{१}{७}$) की है । छठे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति नौ सागर और एक सागर के सातवें चार भाग ($\frac{४}{७}$) की है । सातवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति दस सागर की है ।

पांचवीं नरक में पांच पाथड़े हैं । पहले पाथड़े की जघन्य स्थिति दस सागर की है । उत्कृष्ट स्थिति ग्यारह सागर और एक सागर के पांचवें दो भाग ($\frac{२}{५}$) की है । दूसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति बारह सागर और एक सागर के पांचवें चार भाग ($\frac{४}{५}$) की है । तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागर और एक सागर के पांचवें एक भाग ($\frac{१}{५}$) की है । चौथे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति पंद्रह सागर और एक सागर के पांचवें तीन भाग ($\frac{३}{५}$) की है । पांचवें पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति सतरह सागर की है ।

छठी नरक में तीन पाथड़े हैं । पहले पाथड़े की जघन्य स्थिति सतरह सागर की है । उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागर और एक सागर के तीसरे दो भाग ($\frac{२}{३}$) की है । दूसरे पाथड़े की

उत्कृष्ट स्थिति बीस सागर और एक सागर के तीसरे एक भाग ($\frac{1}{3}$) की है । तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागर की है ।

सातवीं नरक में एक ही पाथड़ा है । उसकी जघन्य स्थिति बाईस सागर की है और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर की है * ।

नरक का अधिकार सम्पूर्ण ।

देवता का अधिकार

अहो भगवन् ! देव कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! देव चार प्रकार के हैं– १ भवनपति, २ वाणव्यन्तर, ३ ज्योतिषी और ४ वैमानिक देव ।

अहो भगवन् ! भवनपति देव कहां रहते हैं ? हे गौतम ! पहली नरक के १३ पाथड़े हैं और १२ आन्तरे (अन्तर) हैं । ऊपर के दो आन्तरे खाली हैं । बाकी दस आन्तरों में दस जाति के भवनपति देव रहते हैं ।

अहो भगवन् ! उन भवनपति देवों के क्या नाम हैं ? हे गौतम ! उनके नाम इस प्रकार हैं– १ असुरकुमार, २ नागकुमार, ३ सुवर्ण (सुपर्ण) कुमार, ४ विद्युत्कुमार, ५ अग्निकुमार, ६

** पहली नरक के दूसरे पाथड़े को छोड़ कर बाकी सातवीं नरक तक के सब पाथड़ों में पहले के पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति उसके आगे के पाथड़े की जघन्य स्थिति होती है। जैसे पहली नरक के तीसरे पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति करोड़ पूर्व की है तो चौथे पाथड़े की जघन्य स्थिति करोड़ पूर्व की होती है। इसी तरह सब जगह समझ लेना चाहिए।*

द्वीपकुमार, ७ उदधिकुमार, ८ दिशाकुमार, ९ वायुकुमार, १० स्तनितकुमार ।

अहो भगवन् ! उनके कितने इन्द्र हैं और उनके क्या नाम हैं ? हे गौतम ! उनके बीस इन्द्र हैं और उनके नाम इस प्रकार हैं–

१ चमरेन्द्रजी (असुरेन्द्र, असुरराज), २ बलीन्द्रजी (वैरोचनेन्द्र, वैरोचनराज), ३ धरणेन्द्रजी, ४ भूतेन्द्रजी (भूतानन्दजी), ५ वेणुदेव, ६ वेणुदाली (विचित्रपक्ष), ७ हरिकान्त, ८ हरिशिख (सुप्रभकान्त), ९ अग्निशिख (अग्निसिंह), १० अग्निमानव (तेजप्रभ), ११ पूर्णेन्द्र, १२ विशिष्टेन्द्र (रूपप्रभ), १३ जलकान्त, १४ जलप्रभ, १५ अमितगति, १६ अमितवाहन (सिंहविक्रमगति), १७ वेलम्ब, १८ प्रभंजन (रिष्ट), १९ घोष, २० महाघोष (महानन्दयावर्त) * ।

अहो भगवन् ! इन दस भवनपति देवों के क्या चिन्ह हैं ? हे गौतम ! इनके चिन्ह इस प्रकार हैं– १ असुरकुमारों के चूड़ामणि (राखड़ी) का चिन्ह है । २ नागकुमारों देवों के नाग (सांप) का चिन्ह है । ३ सुवर्ण (सुपर्ण) कुमार देवों के गरुड़ का चिन्ह है । ४ विद्युत्कुमार देवों के वज्र का चिन्ह है । ५ अग्निकुमार देवों के कलश का चिन्ह है । ६ द्वीपकुमार देवों के सिंह का चिन्ह है । ७ उदधिकुमार देवों के अश्व (घोड़ा) का चिन्ह है । ८

** इनमें से विषय संख्या वाले (पहला, तीसरा, पांचवां आदि) दक्षिणदिशा के इन्द्र हैं और समसंख्या वाले (दूसरा, चौथा, छठा आदि) उत्तरदिशा के इन्द्र हैं।*

दिशाकुमार देवों के गज (हाथी) का चिन्ह है । ९ पवनकुमार देवों के मगरमच्छ का चिन्ह है । १० स्तनितकुमार देवों के वर्द्धमान (स्वस्तिक) का चिन्ह है ।

अहो भगवन् ! भवनपति देवों के कितने भवन हैं ? हे गौतम ! ७ करोड़ ७२ लाख भवन हैं । ४ करोड़ ६ लाख भवन दक्षिणदिशा में हैं और ३ करोड़ ६६ लाख उत्तरदिशा में हैं ।

अब प्रत्येक भवनपति देवों के भवनों की संख्या बतलाई जाती है– दक्षिणदिशा में असुरकुमारों के ३४ लाख भवन हैं । नागकुमारों के ४४ लाख भवन हैं । सुवर्णकुमारों के ३८ लाख भवन हैं । विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार और स्तनितकुमार इन छह के ४०-४० लाख भवन हैं । पवनकुमार के ५० लाख भवन हैं । ये सब मिला कर दक्षिणदिशा में ४ करोड़ छह लाख भवन हुए । उत्तरदिशा में असुरकुमारों के ३० लाख भवन हैं । नागकुमारों के ४० लाख भवन हैं । सुवर्णकुमारों के ३४ लाख भवन हैं । विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार और स्तनितकुमार इन छह के ३६-३६ लाख भवन हैं । पवनकुमारों के ४६ लाख भवन हैं । ये सब मिला कर उत्तरदिशा में ३ करोड़ ६६ लाख भवन हुए । कुल मिला कर ७ करोड़ ७२ लाख भवन हुए ।

अहो भगवन् ! इन भवनों का आकार कैसा होता है ? हे गौतम ! वे भवन बाहर से गोल और अन्दर से चौकोण (चतुष्कोण) होते हैं । उनके नीचे का भाग कमल की कर्णिका के आकार वाला होता है ।

अहो भगवन् ! भवनपति देवों के भवन कितने लम्बे-चौड़े होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य जम्बूद्वीप प्रमाण होते हैं, मध्यम अढ़ाई द्वीप प्रमाण होते हैं और उत्कृष्ट कितनेक संख्यात योजन के होते हैं, कितनेक असंख्यात योजन के होते हैं । इनका प्रमाण नरकावासों की तरह जानना चाहिए ।

अहो भगवन् ! संख्यात योजन के भवन कितने हैं ? हे गौतम ! सब भवनों के पांच विभाग किये जाएं तो एक विभाग के भवन संख्यात योजन के हैं और बाकी चार विभाग के भवन असंख्यात योजन के हैं ।

अहो भगवन् ! उन भवनों में कितने देव रहते हैं ? हे गौतम ! संख्यात योजन के भवनों में संख्यात देव रहते हैं और असंख्यात योजन के भवनों में असंख्यात देव रहते हैं ।

अहो भगवन् ! भवनपति देवों का वर्ण कैसा है ? हे गौतम ! असुरकुमारों का वर्ण काला है । नागकुमार और उदधिकुमारों का वर्ण सफेद (धवल) है । सुवर्णकुमार और स्तनितकुमार इन दोनों का वर्ण सुवर्ण (सोने) के समान पीला है । विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार और दिशाकुमार इन चारों का वर्ण लाल है । पवनकुमार का वर्ण नीला है ।

अहो भगवन् ! भवनपति देवों के वस्त्रों का वर्ण कैसा है ? हे गौतम ! असुरकुमारों के वस्त्रों का वर्ण लाल है । नागकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, द्वीपकुमार और अग्निकुमार इन पांच के वस्त्रों का वर्ण नीला है । दिशाकुमार, स्तनितकुमार और सुवर्णकुमार, इन तीन के वस्त्रों का वर्ण सफेद है । वायुकुमार देवों के वस्त्रों

का वर्ण सन्ध्याराग के समान है ।

अहो भगवन् ! चमरेन्द्रजी के कितनी परिषद् (परखदा) है ? हे गौतम ! तीन परिषद् हैं– १ शमिया (शमिता), २ जाया और ३ चण्डा । इसी प्रकार सभी इन्द्रों के तीन तीन प्रकार की परिषद् होती हैं ।

अहो भगवन् ! भवनपति इन्द्रों के अग्रमहिषी और उनका परिवार आदि कितना है ? हे गौतम ! चमरेन्द्रजी और बलीन्द्रजी के पांच पांच अग्रमहिषियां हैं– १. कालि २. राजी, ३. रजनी, ४. विद्युत्, ५. महिता । एक एक अग्रमहिषी के आठ आठ हजार देवियों का परिवार है । यदि एक एक देवी वैक्रिय रूप बनावे तो आठ आठ हजार वैक्रिय रूप बना सकती है । शेष १८ इन्द्रों के छह छह अग्रमहिषियां हैं । एक एक अग्रमहिषी के छह छह हजार देवियों का परिवार है । यदि एक एक देवी वैक्रिय रूप बनावे तो छह छह हजार वैक्रिय रूप बना सकती है । इन्द्र, जितनी देवियां होती हैं उतने ही रूप बना सकते हैं ।

अहो भगवन् ! इन बीस इन्द्रों के कितने प्रकार की अनीका (सेना) है ? हे गौतम ! प्रत्येक इन्द्र के सात सात प्रकार की अनीका है– १. गजानीक (हाथियों की सेना), २. हयानीक (घोड़ों की सेना), ३. रथानीक (रथों की सेना), ४ पदाति-अनीक, (पैदल-सेना), ५. महिषानीक (भैंसों की सेना), ६. गन्धर्वानीक (गन्धर्व देवों की सेना), ७. नाट्यानीक (नाटक करने वालों की सेना), इन बीस ही इन्द्रों के तेतीस तेतीस त्रायस्त्रिंशक देव होते हैं । वे देव गुरु और माता-पिता के

२५० योजन का ऊंचा है, १२५ योजन का चौड़ा है । उसके चारों तरफ चार महल हैं । वे महल १२५ योजन के ऊंचे और ६२।। योजन के चौड़े है । उनके चारों तरफ १६ महल हैं । वे लम्बाई चौड़ाई में उनसे आधे परिमाण वाले हैं । उनके चारों तरफ ६४ महल उनसे आधे परिमाण वाले हैं । उनके चारों तरफ २५६ महल उनसे आधे परिमाण वाले हैं । इस प्रकार ३४१ महलों का झूमका है । बीच में इन्द्र का महल है । आस-पास दूसरे देवों के महल हैं । वहां बाग बगीचा, तालाब, कुआ, सरोवर, पुष्करणी, सिद्धायतन, ध्वजा पताका तोरण स्तम्भ आदि हैं । वहां भवनपति देव पांच इन्द्रियों के सुख एवं पूर्व पुण्य को भेगते हैं ।

चमरचंचा राजधानी से नैऋत्य कोण में ६५५ करोड़ ३५ लाख ५० हजार योजन आगे जाने पर चमरेन्द्रजी का आवास आता है । वह आवास * चौरासी हजार योजन का लम्बा-चौड़ा बाकी सारा वर्णन चमरचंचा राजधानी सरीखा है किन्तु इतना फर्क है

** भवनपति देवों के भवन और आवासों में यह अन्तर होता है कि भवन तो बाहर से गोल और अन्दर से चतुष्कोण (चौकोण) होते हैं। उनके नीचे का भाग कमल की कर्णिका के आकार वाला होता है।*

शरीर प्रमाण बड़े, मणि तथा रत्नों के दीपकों से चारों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले मंडप आवास कहलाते हैं।

भवनपति देव भवनों में रहते हैं। उनके क्रीड़ा करने के स्थानों को आवास कहते हैं। उनमें वे जाते हैं, उठते बैठते हैं, क्रीड़ा करते हैं।

कि यहां पांच सभा नहीं हैं । नैऋत्य कोण की तरह चारों कोणों में चार आवास हैं । वे चारों आवास चम्पकवन, अशोकवन, सप्तवन और आम्रवन (चूयकवन) के अन्दर हैं ।

अहो भगवन् ! वे आवास क्यों कहलाते हैं ? हे गौतम ! जैसे कोई मनुष्य बगीचे में जाता है वहां बैठता है, उठता है, क्रीड़ाकल्लोल करता है किन्तु वहां निवास नहीं करता है, इसी तरह चमरेन्द्रजी आदि देव वहां जाते हैं, बैठते हैं, उठते हैं, क्रीड़ाकल्लोल आदि करते हैं किन्तु वहां निवास नहीं करते हैं, वे रहते तो अपनी राजधानी में हैं ।

अब राजधानी का विशेष वर्णन किया जाता है– राजधानी के बीच में १६ हजार योजन का एक चबूतरा है, उसके ऊपर ३४१ महलों का झूमका है । वहां पांच सभा हैं– १ सुधर्मासभा, २ उपपातसभा, ३ अलंकारसभा, ४ अभिषेकसभा, ५ व्यवसायसभा । सुधर्मासभा के तीन दरवाजे हैं– पूर्व में, पश्चिम में और उत्तर में । उनके आगे एक मुख्य मण्डप है। सुधर्मासभा में चारों दिशाओं में छह छह हजार छोटे चबूतरे हैं । वहां माणवकस्तम्भ है, वह ३६ योजन ऊंचा है । सुधर्मासभा में सिंहासन है । माणवकस्तम्भ से पश्चिम दिशा में एक बड़ी देवशय्या से ईशानकोण में महेन्द्रध्वजा है । महेन्द्रध्वजा से पश्चिमदिशा में चौपाल आयुधशाला है । परिवार सहित सिंहासन है ।

उपपातसभा का वर्णन– उपपातसभा में उत्पन्न होने की शय्या है । अलंकारसभा में राजमहोत्सव की सामग्री है । अभिषेकसभा में इन्द्र का अभिषेक (राजमहोत्सव) किया जाता है ।

व्यवसायसभा में पुस्तकरत्न है । ईशानकोण में सिंहासन है, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है ।

चमरेन्द्रजी के ६४ हजार सामानिक देव हैं । दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक देव हैं । उनकी तीन परिषद् (परखदा) हैं– आभ्यन्तर परिषद्, मध्यम परिषद् और बाह्य परिषद् ! आभ्यन्तर परिषद् में खास सलाह विचार किया जाता है। इसके देव आदर से बुलाने पर आते हैं और भेजने पर वापिस जाते हैं । मध्यम (बीच की) परिषद् में सामान्य सलाह विचार किया जाता है । ये देव बुलाने पर आते हैं किन्तु बिना भेजे ही वापिस चले जाते हैं । बाह्य (बाहर की) परिषद् के देवों को हुक्म (आज्ञा) दिया जाता है कि अमुक कार्य करो । ये देव बिना बुलाये ही आते हैं और बिना भेजे ही जाते हैं । अर्थात् इनको हाजिर होना ही पड़ता है । आभ्यन्तर (अन्दर की) परिषद् में २४ हजार देव हैं । मध्यम परिषद् में २८ हजार देव हैं । बाह्य परिषद् में ३२ हजार देव हैं । देवियों की भी तीन प्रकार की परिषद् हैं । आभ्यन्तर परिषद् में ३५० देवियां हैं । मध्यम परिषद् में ३०० देवियां हैं । बाह्य परिषद् में २५० देवियां हैं ।

आभ्यन्तर परिषद् के देवों की स्थिति २।। पल्योपम की है । मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति दो पल्योपम की है और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति १।। पल्योपम की है । आभ्यन्तर परिषद् की देवियों की स्थिति १।। पल्योपम की है । मध्यम परिषद् की देवियों की स्थिति एक पल्योपम की है और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति आधा पल्योपम की है । चार चार लोकपाल

हैं । ३३ त्रायस्त्रिशक देव हैं । सात अनीका (सेना) हैं । एक एक अनीका में ८१ लाख २८ हजार देव हैं ।

बलीन्द्र जी के ६० हजार सामानिक देव हैं । दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देव हैं । तीन प्रकार की परिषद् हैं– शमिया (शमिता), चण्डा और जाया । एक एक परिषद् में आभ्यन्तर परिषद् के २० हजार देव हैं । मध्यम परिषद् के २४ हजार देव हैं और बाह्य परिषद् में २८ हजार देव हैं । क्रमशः इन देवों की स्थिति ३।। पल्योपम, ३ पल्योपम और २।। पल्योपम की है । आभ्यन्तर परिषद् में ४५० देवियां हैं, इनकी स्थिति २।। पल्योपम की है । मध्यम परिषद् में ४०० देवियां हैं, इनकी स्थिति दो पल्योपम की है । बाह्य परिषद् में ३५० देवियां हैं, इनकी स्थिति १।। पल्योपम की है । चार लोकपाल हैं । ३३ त्रायस्त्रिशक देव हैं । सात अनीका हैं । एक एक अनीका में ७६ लाख २० हजार देव हैं । बलीन्द्र जी के पांच अग्रमहिषियां हैं । एक एक अग्रमहिषी के आठ आठ हजार देवियों का परिवार है । एक एक देवी आठ आठ हजार रूप वैक्रिय कर सकती हैं ।

शेष १८ इन्द्रों के छह छह हजार सामानिक देव हैं । चौबीस चौबीस हजार आत्मरक्षक देव हैं । तीन तीन प्रकार की परिषद् हैं । दक्षिण दिशा के नौ इन्द्रों के आभ्यन्तर परिबद् में साठ साठ हजार देव हैं । मध्यम परिषद् में ७०-७० हजार देव हैं और बाह्य परिषद् में ८०-८० हजार देव हैं । आभ्यन्तर परिषद् में १७५-१७५ देवियां हैं । मध्यम परिषद् में १५०-१५० देवियां हैं और बाह्य परिषद् में १२५-१२५ देवियां हैं । आभ्यन्तर परिषद्

के देवों की स्थिति आधा पल्योपम झाझेरी है । मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति आधा पल्योपम की है । बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति कुछ कम आधा पल्योपम है । आभ्यन्तर परिषद् की देवियों की स्थिति कुछ कम आधा पल्योपम है । मध्यम परिषद् की देवियों की स्थिति पाव पल्योपम झाझेरी है और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति पाव पल्योपम की है । एक एक इन्द्र के छह छह अग्रमहिषियां हैं । एक एक अग्रमहिषी के छह छह हजार देवियों का परिवार है । एक एक देवी छह छह हजार रूप वैक्रिय कर सकती है । चार लोकपाल हैं । ३३ त्रायस्त्रिंशक देव हैं । सात अनीका हैं । एक एक अनीका में ३५ लाख ५६ हजार देव हैं ।

उत्तर दिशा के नौ इन्द्रों के छह छह हजार सामानिक देव हैं । २४-२४ हजार आत्मरक्षक देव हैं । तीन तीन प्रकार की परिषद् हैं । आभ्यन्तर परिषद् में ५०-५० हजार देव हैं । पौण पल्योपम की स्थिति है । मध्यम परिषद् में ६०-६० हजार देव हैं । कुछ कम पौण पल्योपम की स्थिति है । बाह्य परिषद् में ७०-७० हजार देव हैं । आधा पल्योपम झाझेरी स्थिति है । आभ्यन्तर परिषद् में २२५-२२५ देवियां हैं । आधा पल्योपम झाझेरी स्थिति है । मध्यम परिषद् में २००-२०० देवियां है । आधा पल्योपम की स्थिति है । बाह्य परिषद् में १७५-१७५ देवियां हैं । कुछ कम आधा पल्योपम की स्थिति है । चार लोकपाल देव हैं । ३३ त्रायस्त्रिंशक देव हैं । सात अनीका हैं । एक एक अनीका में ३५ लाख ५६ हजार देव हैं ।

भवनपति देवों का अधिकार समाप्त ।

अब वाणव्यन्तर देवों का अधिकार चलता है सो कहते हैं–

अहो भगवन् ! वाणव्यन्तर देव कहां रहते हैं ? हे गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के पहले रत्नकाण्ड में १००० योजन की ठीकरी मोटी है । उसमें से १०० योजन ऊपर छोड़ कर और १०० योजन नीचे छोड़ कर बीच में ८०० योजन की पोलार है । उसमें १. पिशाच, २. भूत, ३. यक्ष, ४. राक्षस, ५. किन्नर, ६. किम्पुरुष, ७. महोरग, ८. गन्धर्व, इन आठ जाति के वाणव्यन्तर देवों के असंख्यात नगर हैं । ऊपर के १०० योजन में से दस योजन ऊपर छोड़ कर और दस योजन नीचे छोड़ कर बीच में ८० योजन की पोलार है । उसमें १. आणपन्ने (आणपन्निक), २. पाणपन्ने (पाणपन्निक), ३. ईसिवाई (ऋषिवादिक), भूयवाई, (भूतवादी), ५. कंदिए (कंदित), ६. महाकंदिए (महाकंदित), ७. कोहंड (कूष्माण्ड), ८. पयंगदेव (पतंगदेव), इन आठ जाति के वाणव्यन्तर देवों के असंख्यात नगर हैं । वे सब रत्नमय हैं । वे जघन्य तो भरत क्षेत्र प्रमाण हैं । मध्यम महाविदेह क्षेत्र प्रमाण हैं और उत्कृष्ट जम्बूद्वीप प्रमाण हैं । ३७।। योजन का ऊंचा कोट है । ६२।। योजन के ऊंचे महल हैं । ३४१ महलों का झूमका है । बीच में इन्द्र का महल है । चारों तरफ दूसरे देवों के महल हैं । वे सब ध्वजा पताका तोरण आदि से युक्त हैं । इनकी (ध्वजा) पर चिन्ह होते हैं । वे इस प्रकार हैं– पिशाच देवों की ध्वजा में कदम्ब वृक्ष का चिन्ह है । भूत देवों की ध्वजा में सुलस वृक्ष अथवा शालि का चिन्ह है । यक्ष देवों की ध्वजा में वट वृक्ष का चिन्ह है । राक्षस

जाति के देवों की ध्वजा में स्कन्दक वृक्ष तथा पांदली वृक्ष का चिन्ह होता है । किन्नर जाति के देवों की ध्वजा में अशोक वृक्ष का चिन्ह होता है । किम्पुरुष जाति के देवों की ध्वजा में चम्पक वृक्ष का चिन्ह होता है । महोरग जाति के देवों की ध्वजा में नाग वृक्ष का चिन्ह होता है । गन्धर्व जाति के देवों की ध्वजा में टिम्बरु वृक्ष का चिन्ह होता है । इसी प्रकार आणपन्ने, पाणपन्ने आदि आठ जाति के देवों की ध्वजा में भी अनुक्रम से ये ही चिन्ह होते हैं ।

अहो भगवन् ! इन वाणव्यन्तर देवों का वर्ण कैसा होता है ? हे गौतम ! पहला (पिशाच), तीसरा (यक्ष), सातवां (महोरग) और आठवां (गन्धर्व), इन चार का वर्ण श्याम है । पांचवें (किन्नर) का वर्ण नीला है । चौथा (राक्षस) और छठा (किम्पुरुष) का वर्ण सफेद है । दूसरे (भूत) का वर्ण काला है ।

अहो भगवन् ! इनके वस्त्र किस वर्ण के होते हैं ? हे गौतम ! पहला (पिशाच), दूसरा (भूत), चौथा (राक्षस), इन तीन के वस्त्रों का वर्ण नीला होता है । तीसरा (यक्ष), पांचवां (किन्नर), और छठा (किम्पुरुष), इन तीन के वस्त्रों का वर्ण पीला होता है । सातवां (महोरग), आठवां (गन्धर्व), इन दो के वस्त्रों का वर्ण श्याम होता है । इसी तरह आणपन्ने, पाणपन्ने आदि आठ जाति के देवों के वस्त्र का वर्ण अनुक्रम से जान लेना चाहिए ।

अहो भगवन् ! इनको वाणव्यन्तर (व्यन्तर अथवा वानमन्तर) क्यों कहा जाता है ? हे गौतम ! विविध प्रकार के

भवन, नगर और आवास उनके आश्रयस्थान हैं, इसलिए उनको व्यन्तर कहते हैं अथवा वे वनों के अन्तर में रहते हैं, इसलिए उनको वाणव्यन्तर कहते हैं ।

अहो भगवन् ! इनके कितने इन्द्र हैं ? हे गौतम ! इनके १६ इन्द्र हैं– पिशाचों के काल और महाकाल । भूतों के सुरूप और प्रतिरूप । यक्षों के पूर्णभद्र और मणिभद्र । राक्षसों के भीम और महाभीम । किन्नरों और किम्पुरुषों के सत्पुरुष और महापुरुष । महोरगों के अतिकाय और महाकाय । गन्धर्वों के गीतरति और गीतयश । काल दक्षिण दिशा का इन्द्र है और महाकाल उत्तर दिशा का इन्द्र है । इसी तरह सुरूप और प्रतिरूप आदि को भी जानना चाहिए । एक एक इन्द्र के ४-४ हजार सामानिक देव हैं । १६-१६ हजार आत्मरक्षक देव हैं । तीन प्रकार की परिषद् हैं । ८-८ हजार देव आभ्यन्तर परिषद् में हैं । १०-१० हजार देव मध्यम परिषद् में हैं । १२-१२ हजार देव बाह्य परिषद् में हैं । जिस प्रकार भवनपति देवों की परिषद् का कार्य बतलाया है, उसी प्रकार इनकी परिषद् का भी कार्य है । एक एक इन्द्र के चार चार अग्रमहिषियां हैं । एक एक अग्रमहिषी के एक एक हजार देवियों का परिवार है । एक एक देवी यदि वैक्रिय बनावे तो एक एक हजार रूप वैक्रिय कर सकती हैं ।

अहो भगवन् ! आणपन्ने पाणपन्ने आदि देव कहां रहते हैं ? हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के १०० योजन में से दस योजन ऊपर छोड़ कर और दस योजन नीचे छोड़ कर बीच में ८० योजन की पोलार है, उसमें आणपन्ने पाणपन्ने आदि आठ

जाति के देव रहते हैं ।

अहो भगवन् ! आणपन्ने पाणपन्ने आदि के कितने इन्द्र हैं ? हे गौतम ! १६ इन्द्र हैं । आणपन्ने (आणपन्निक) के सन्निहित और सामान्य । पाणपन्ने (पाणपन्निक) के धाता और विधाता । इसिवाई (ऋषिवादी) के ऋषि और ऋषिपाल । भूयवाई (भूतवादी) के ईश्वर और महेश्वर । कंदिय (कंदित) के सुवत्स और विशाल । महाकंदिय (महाकंदित) के हास्य और हास्यरति । कोहंड (कूष्माण्ड) के श्वेत और महाश्वेत । पयंगदेव (पतंगदेव) के पतंग और पतंगपति । ये १६ इन्द्र हैं । बाकी सारा वर्णन पिशाच आदि के समान समझना चाहिए ।

वाणव्यन्तर देवों का अधिकार समाप्त ।

अब तिर्च्छालोक के छह बोलों का अधिकार चलता है सो कहते हैं–

अहो भगवन् ! इसका नाम जम्बूद्वीप क्यों है ? हे गौतम ! इसमें जम्बू सुदर्शन नाम का वृक्ष है, इसलिए इसको जम्बूद्वीप कहते हैं । उस जम्बू वृक्ष का मालिक वाणव्यन्तर जाति का धनाढ्य देव है । उसकी एक पल्योपम की आयुष्य है । यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन का लम्बा-चौड़ा है । यह चन्द्रमा के आकार, सोने की थाली के आकार, रथ के पहिये के आकार, तेल के पुड़ले (मालपूए) के आकार, कमल की कर्णिका के आकार गोल है । यह तिर्च्छालोक के असंख्यात द्वीप और समुद्रों के बीच में स्थित है और सब से छोटा है । इसके मध्य में मेरु पर्वत है । जम्बूद्वीप के चारों तरफ जगती का कोट है । वह आठ योजन का ऊंचा है।

मूल में बारह योजन का चौड़ा है, बीच में आठ योजन का और ऊपर चार योजन का चौड़ा है । गाय की पूंछ के आकार का है । उसकी वज्ररत्न की नींव है, मणिरत्न की भींत है, वैडूर्यरत्न के स्तम्भ हैं, लोहिताक्षरत्न के कीले हैं, सोना चांदी के पाटिया हैं । उस जगती के कोट के मध्य में पद्मवेदिका है । वह आधे योजन की ऊंची है । पांच सौ धनुष की चौड़ी है । पद्मवेदिका के ऊपर हाथी, घोड़ा, सिंह, चीता, मगरमच्छ, गरुड़, चन्द्रमा, सूर्य, स्त्री पुरुष का जोड़ा, विद्याधर विद्याधरी का जोड़ा, पशु, पक्षी, देव, देवी, वृक्ष, लता आदि अनेक प्रकार के चिन्ह मंडे हुए हैं । मोतियों के झूमके लटकते हैं । चन्देवे बन्धे हुए हैं, वन्दनमाला लटक रही है । पांच प्रकार की वायु चलती है जिससे ये मोतियों के झूमके आपस में टकराते हैं । आपस में टकराने से छह राग छत्तीस रागिणी निकलती हैं । बत्तीस प्रकार के नाटकों के झणकार हो रहे हैं । वहां अनेक देवी देव आते हैं, क्रीड़ा करते हैं । मनगमते वे शब्द उनके कानों को बड़े सुहावने लगते हैं । पद्मवरवेदिका के आस-पास एक बाग अन्दर और एक बाग बाहर है । एक बाग देश ऊणा दो योजन का चौड़ा है और जगती के बराबर लम्बा है । उस बाग में पुष्करणी बावड़ी हैं । वह निर्मल जल से भरी हुई हैं । उन बावड़ियों का नीचे तला वज्ररत्नमय है । ऊपर सोने चांदी की बालू रेत बिछी हुई है । वज्ररत्न के पगतिये हैं । उनकी सन्धि रोहिताक्ष रत्न में जड़ी हुई है । वे पगतिये अर्द्ध चन्द्रमा के आकार हैं । वहां बहुत से देवी देव आते हैं । स्नान मंजन आदि करते हैं । वे बावड़ियां अति शोभायमान हैं । इन बावड़ियों के

चारों दिशा में वनखण्ड हैं । वह अति शोभायमान हैं । बावड़ियों के चारों तरफ वेदिका है । जगती के बाहर के भाग में काले नीले लाल पीले और सफेद इन पांच वर्णों के तृण (घास) हैं । तृण मणिरत्नों के हैं । उनका शब्द, रूप, गन्ध और स्पर्श अति मनोज्ञ है । उन तृणों के चारों तरफ चारों दिशा में वायु चलती है । जिससे वे तृण आपस में टकराते हैं, तब उनमें से छह राग छत्तीस रागणी पैदा होती हैं ।

अहो भगवन् ! वे तृण जो काले हैं, उनका वर्ण कैसा है ? हे गौतम ! जैसे पानी से भरे हुए काले बादल, जैसे आंख की काली टीकी, जैसे भैंस का काला सींग, काली कोयल, काली कणेर, काला बन्धुजीव, काला अशोक, इनसे भी अधिक काले हैं ।

अहो भगवन् ! वे तृण जो नीले हैं उनका वर्ण कैसा है ? हे गौतम ! जैसे तोते की नीली पांख, नीली मणि, नीला कनेर, नीला बन्धुजीव, नीला अशोक, बलदेव के नीले कपड़े, इनसे भी अधिक नीले हैं ।

अहो भगवन् ! वे तृण जो लाल हैं उनका वर्ण कैसा है ? हे गौतम ! जैसे ऊगता हुआ सूर्य, लाल हिंगलू, लाल गुलाल, लाल अशोक, लाल कनेर, लाल बन्धुजीव, इनसे भी अधिक लाल होते हैं ।

अहो भगवन् ! वे तृण जो पीले हैं, उनका वर्ण कैसा है ? हे गौतम ! जैसे पीली हल्दी, वासुदेव के पीले कपड़े, सण के फूल, पीला अशोक, पीला बन्धुजीव, पीली कनेर, इनसे भी अधिक पीले होते हैं ।

अहो भगवन् ! वे तृण जो सफेद हैं, उनका वर्ण कैसा है ?

हे गौतम ! जैसे चांदी का पतरा, पानी के फेन, गाय का दूध, शरद ऋतु के बादल, सफेद अशोक, सफेद बन्धुजीव, सफेद कनेर, इनसे भी अधिक सफेद होते हैं ।

अहो भगवन् ! उन तृणों में से कैसा शब्द निकलता है ? क्या जैसे कोई चतुर कारीगर हेमवन्त पर्वत से काष्ठ लाकर उत्तम रथ बनावे और उसमें जाली घूघरे आदि लगावे । उसमें आयुध (शस्त्रास्त्र) भरे। फिर उसमें समान खुर वाले, समान सींग वाले, घूघरमाल और झूल आदि से शोभित बैलों को जोड़ कर राजा के आंगण में धीरे-धीरे चलावे तब उसमें से मधुर झणकार शब्द निकले । क्या वैसा मधुर शब्द उन तृणों में से निकलता है ? हे गौतम ! नो इणट्ठे समट्ठे (यह बात नहीं है), इससे भी अधिक मधुर शब्द निकलता है । जैसे वाणव्यन्तर जाति की देवियां, किन्नरियां पर्वत की गुफा में बैठ कर हर्ष और उत्साह सहित, आठ गुण सहित एवं छह दोष रहित राग प्रलापन करें, ऐसा शब्द उन तृणों से निकलता है ।

अहो भगवन् ! वे वन कैसे हैं ? हे गौतम ! वे वन अत्यन्त सुन्दर हैं । उनमें बहुत से उत्पात पर्वत हैं । बहुत सी पुष्करणी और बावड़ियां हैं। बहुत से सर हैं, सर पंक्तियां हैं, बिल हैं, बिलपक्तियां हैं । वहां झूले लटक रहे हैं, वहां आकर देवी देव झूलते हैं, क्रीड़ा-कल्लोल करते हैं * । वहां देव पूर्व पुण्य भोगते हैं ।

अब जगती के कोट का विशेष वर्णन किया जाता है– जगती के कोट के बाहर की तरफ झरोखे हैं । वे चारों तरफ ५००

** इसका ज्यादा विस्तार जीवाभिगमसूत्र से जानना चाहिए।*

धनुष के चौड़े हैं । आधे योजन के ऊंचे और आधे योजन के लम्बे हैं । वहां मंगल कलश, तोरण, विजय प्रासाद, वेदिका, सिंहासन, जाली झरोखा, ये सब मणिरत्नों में हैं और १६ उपमा सहित हैं ।

जम्बूद्वीप के चार दरवाजे हैं– १ विजय, २ वैजयन्त, ३ जयन्त, ४ अपराजित । वे दरवाजे आठ योजन के ऊंचे और चार योजन के चौड़े हैं । दो कोस की भोगल (आगल-अर्गला) है । एक कोस की बारी है । बाकी सारा अधिकार पद्मवरवेदिका के समान है । दरवाजे के दोनों तरफ दो चबूतरे हैं । उनके ऊपर भींत में गजदन्ताकार (हाथी के दान्त के आकार) दो अंकुश (कील) निकले हुए हैं । चबूतरे के पास दो चबूतरे और हैं । उनके ऊपर दो पुतलियां हैं एक दाहिनी तरफ और एक बांई तरफ है । उनका एक हाथ कमर पर दिया हुआ है और एक हाथ से अशोक वृक्ष की शाखा पकड़ी हुई है । वे पुतलियां देवी के समान सुन्दर रूपवाली हैं । उपरोक्त चबूतरों के पास दो चबूतरे और हैं उनके ऊपर झरोखे (जालकरंडिया) हैं । ये सब रत्नमय हैं। इस प्रकार बहुत से चबूतरे हैं * । विजयद्वार के दोनों तरफ दो चबूतरे हैं, उन पर दो छोटे चबूतरे हैं । वे चार योजन के लम्बे-चौड़े और दो योजन के मोटे (जाड़े) हैं । सब रत्नमय हैं । स्वच्छ यावत् प्रतिरूप १६ उपमा सहित हैं । उन दो छोटे चबूतरों पर एक एक महल है । वे महल चार योजन के ऊंचे हैं और दो योजन के लम्बे-चौड़े हैं । रत्नों की रचना से आश्चर्यकारी

** इनका ज्यादा विस्तार जीवाभिगमसूत्र से जानना चाहिए।*

हैं । ध्वजा-पताका छत्रादि सहित हैं । उनके बीच में एक एक मणिपीठिका चबूतरा है । वह एक योजन का लम्बा-चौड़ा है । आधे योजन का मोटा (जाड़ा) है, उसके ऊपर विजय देवता का सिंहासन है । वह मणिरत्नों का बना हुआ है और अनेक चित्रों से चित्रित है । वह सिंहासन एक बारीक कपड़े से ढका हुआ है । उसका स्पर्श बूर नामक वनस्पति और मक्खन तथा आक की रुई से भी अनन्तगुणा कोमल (सुंहाला) है । वह अत्यन्त सुगन्धित है । उसके ऊपर चन्दवा बंधा हुआ है । बीच में एक अंकुश (कील) है । उसमें मोतियों का झूमका लटकता है । वायु के चलने से वे मोती परस्पर टकराते हैं तब उनमें से छह राग छत्तीस रागणी निकलती हैं । उसका अधिपति (मालिक-स्वामी) विजय देवता है उसके चार हजार सामानिक देव हैं । १६ हजार आत्मरक्षक देव हैं । तीन प्रकार की परिषद् हैं । आभ्यन्तर परिषद् में आठ हजार देवता हैं । मध्यम परिषद् में दस हजार और बाह्य परिषद् में बारह हजार देवता हैं । ये सब वाणव्यन्तर जाति के देवता हैं । विजय देव के चार अग्रमहिषियां हैं । एक पल्योपम का आयुष्य है ।

अहो भगवन्! विजय देव की राजधानी कहां पर हैं ? हे गौतम ! इस जम्बूद्वीप से पूर्व दिशा में असंख्यात द्वीप समुद्रों को उल्लंघ कर आगे जाने पर दूसरा जम्बूद्वीप आता है । उस जम्बूद्वीप की पद्मवरदेविका से बारह हजार योजन आगे जाने पर वहां विजय देव की राजधानी आती है । वह राजधानी साढ़े बारह हजार योजन की लम्बी-चौड़ी है । उसका कोट ३७।। योजन का

ऊंचा है। उसके पांच सौ दरवाजे हैं । एक एक दिशा में १२५-१२५ दरवाजे हैं । वे दरवाजे ६२।। योजन के ऊंचे हैं, ३१$\frac{१}{४}$ योजन के चौड़े हैं । राजधानी के बीच में एक चबूतरा है । उसके चारों तरफ पद्मवरवेदिका और वनखण्ड हैं । उस चबूतरे के मध्य भाग में ३४१ महलों का झूमका है । एक महल बीच में है । वह ६२।। योजन का ऊंचा है । सवा इकतीस योजन का चौड़ा है । यह महल विजय देवता का है । और दूसरे महल दूसरे देवों के हैं । वहां पांच सभाएं हैं । विजय देव की राजधानी की जगती (कोट) से पद्मवरदेविका से पांच सौ योजन आगे जाने पर चार बाग आते हैं । बाग पांच सौ योजन के लम्बे -चौड़े हैं । वे अत्यन्त शोभा वाले हैं । महाऋद्धि सम्पन्न देवता उसका मालिक है । वह वाणव्यन्तर जाति का देव है । एक पल्योपम की उसकी स्थिति है। विजय देव के समान इसका भी वर्णन जान लेना चाहिए * । यहां सभा नहीं है । यह क्रीड़ा का स्थान है ।

अहो भगवन् ! क्या यह जीव विजय देव हुआ ? हां गौतम ! अनन्ती बार हुआ है । अहो भगवन् ! फिर कोई विजय देव होंगे ? हां गौतम ! होवेंगे । +

अब लोक का परिमाण बतलाया जाता है– ÷ जैसे असत् कल्पना से कल्पना कीजिये–इस जम्बूद्वीप के चारों दरवाजों पर चार देवियां हाथ में बलिपिण्ड लेकर खड़ी हैं । उसी समय छह

** विशेष विस्तार सहित वर्णन श्री जीवाभिगमसूत्र से जानना चाहिए।*

+ विशेष विस्तार पूर्वक वर्णन श्री जीवाभिगम से जान लेना चाहिए।

÷ भगवती शतक ११ उद्देशा १०।

देवता मेरुपर्वत पर खड़े हैं । उनकी ऐसी शीघ्र गति है कि वे चारों देवियां एक साथ बलिपिण्ड को फेंकें तो उनमें कोई देवता बलिपिण्ड को नीचे नहीं पड़ने दें, एक साथ झेल लें । वे देवता लोक का माप लेने के लिए निकलें । चार देवता चार दिशा में जावें । एक ऊपर जावे, एक नीचे जावे । उसी समय एक सेठ के घर एक हजार वर्ष की आयुष्य वाला बालक जन्मे । फिर वह बड़ा हो जाय । उसके माता-पिता कालधर्म को प्राप्त हो जांय । अहो भगवन् ! क्या उतने समय में लोक का अन्त आवे ? हे गौतम ! नहीं आवे । इसके बाद वह बालक भी कालधर्म को प्राप्त हो गया तो क्या लोक का अन्त आवे ? हे गौतम ! नहीं आवे । उस बालक की सात पीढ़ी क्षय हो गई तो क्या लोक का अन्त आवे ? हे गौतम ! नहीं आवे । उस बालक के हाड और हाड की मिंजी क्षय हो गई तो क्या उतने समय में लोक का अन्त आवे ? हे गौतम ! नहीं आवे । अहो भगवन् ! वह कितना क्षेत्र गया और कितना शेष रहा ? हे गौतम ! बहुत गया और थोड़ा शेष रहा । गये क्षेत्र से अगया क्षेत्र असंख्यातवें भाग है । अगये क्षेत्र से गया क्षेत्र असंख्यातगुणा है ।

अब अलोक का परिमाण बतलाया जाता हैं– जैसे असत् कल्पना से कल्पना कीजिये–मानुष्यक्षेत्र पर्वत के ऊपर आठ देवियां हाथ में बलिपिण्ड लेकर बाहर की तरफ मुख करके खड़ी हैं । उसी समय दस देवता मेरु पर्वत पर खड़े हैं । उनमें से हरेक की ऐसी शीघ्र गति है कि वे आठों देवियां एक साथ बलिपिण्ड फेंके । उनको वे देवता एक साथ झेल लेवें, नीचे न पड़ने देवें । वे देवता अलोक का माप (परिमाण) लेने के लिए निकलें । चार तो चार

दिशा में जावें, चार विदिशा में जावें, एक ऊपर जावे और एक नीचे जावे । उसी समय किसी सेठ के घर एक लाख वर्ष की आयुष्य का एक बालक जन्मा । वह बालक बड़ा हो गया । उसके माता-पिता कालधर्म को प्राप्त हो गये । अहो भगवन् ! क्या उतने समय में अलोक का माप आया ? हे गौतम ! नहीं आया । वह बालक लाख वर्ष की आयु पूर्ण करके कालधर्म को प्राप्त हो गया । क्या उतने समय में अलोक का माप आया ? हे गौतम ! नहीं आया । उसकी सात पीढ़ी क्षय हो गई, नाम गोत्र क्षय हो गये । क्या उतने समय में अलोक का माप आया ? हे गौतम ! नहीं आया । अहो भगवन् ! कितना क्षेत्र गया और कितना क्षेत्र शेष रहा ? हे गौतम ! थोड़ा गया और बहुत क्षेत्र शेष रहा । गये क्षेत्र से अगया क्षेत्र अनन्तगुणा है । अगये क्षेत्र से गया क्षेत्र अनन्तवें भाग है ।

अब तिर्च्छा लोक में द्वीप समुद्रों का अधिकार चलता है—

अहो भगवन् ! तिर्च्छलोक कितना बड़ा है ? हे गौतम ! जैसे असत्कल्पना से कल्पना कीजिये कि एक कुआ है जो चार कोस का लम्बा, चार कोस का चौड़ा, चार कोस का ऊंडा (गहरा) और बारह कोस झाझेरी परिधि वाला है । उसमें देवकुरुक्षेत्र के जुगलिया (युगलिया) के एक दिन से लेकर सात दिन के जन्मे हुए बालक के केशों को लेकर एक एक केश के असंख्यात असंख्यात टुकड़े करके भरे जांय । टुकड़े इतने बारीक किये जांय कि हाथ में लेने पर दीखे नहीं, आंख में डालने पर रड़के (खटके) नहीं, केवली उनको जाने देखे किन्तु छद्मस्थ के नजर आवें नहीं । एक के दो टुकड़े हो सके नहीं । ऐसे केशों से उस कुए को ऐसा

ठसाठस भर दें कि ऊपर चक्रवर्ती की सेना निकल जाये तो भी दबे नहीं दावानल (वन की अग्नि) लग जाये तो एक केश भी जले नही, अनुकूल प्रतिकूल हवा चले तो एक केश भी उड़े नहीं, पुष्करावर्त मेघ बरसे तो एक केश भी भींजे नहीं, गंगा सिन्धु नदी का पूर (पाट) ऊपर होकर बह जाय तो भी उसका एक केश भी बहे नहीं । इस तरह उस कुए को ठसाठस भर दिया जाये । फिर कोई एक देव उन केशों को लेकर एक केश द्वीप में और एक केश समुद्र में क्रमशः डालता हुआ चला जाय और इस तरह कुआ खाली हो जाये तो भी तिर्च्छालोक का अन्त नहीं आता । अहो भगवन्! ऐसे कितने कुए खाली होने से तिर्च्छालोक का अन्त (पार) आ सकता है ? हे गौतम ! हे गौतम ! २५ कोड़ाकोड़ी कुआ खाली हों तब अन्तिम केश का टुकड़ा स्वयंभूरमणसमुद्र के हिस्से में आता है । आधे राजु में स्वयंभूरमण समुद्र है और आधे राजु में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं । इस प्रकार एक राजु का तिर्च्छालोक है । सात राजु झाझेरा (कुछ अधिक) अधोलोक है और सात राजु माठेरा (कुछ कम) ऊर्ध्वलोक है । लोक से आगे अलोक है ।

अहो भगवन् ! राजु किसे कहते हैं ? हे गौतम ! जैसे असत्कल्पना से कल्पना कीजिये– ३८११२९७० मन का एक भार होता है । ऐसे हजार भार का एक गोला बनाया जाय । उस गोले को कोई देव ऊपर से नीचे गिरावे । इस प्रकार वह गोला छह महीना छह दिन छह घड़ी छह पल तक नीचे गिरता जाय उतने क्षेत्र को एक राजु कहते हैं । व्यवहारनय से ऐसे ३४३ राजु लोक के हैं । जिनमें से १९६ राजु तो अधोलोक है, १४७

राजु ऊर्ध्वलोक के हैं ।

तिर्च्छालोक सम्बन्धी प्रथम बोल समाप्त ।

अहो भगवन् ! लवणसमुद्र आदि समुद्रों का पानी कैसा है ? हे गौतम ! लवणसमुद्र का पानी (नमक) जैसा खारा है । वारुणीसमुद्र का पानी मदिरा जैसा है । क्षीरसमुद्र का पानी क्षीर (दूध) जैसा है । घृतसमुद्र का पानी घी जैसा है । कालोदधिसमुद्र, पुष्करसमुद्र और स्वयंभूरमणसमुद्र का पानी साधारण पानी जैसा है । बाकी असंख्यात समुद्र का पानी इक्षुरस जैसा है ।

दूसरा बोल समाप्त ।

अहो भगवन् ! लवणसमुद्र आदि समुद्र कितने ऊंडे (गहरे) हैं ? हे गौतम ! असंख्यात समुद्र तो हजार हजार योजन के ऊंडे हैं । लवणसमुद्र क्रमशः प्रदेश प्रदेश गहरा है । जम्बूद्वीप की जगती से लवणसमुद्र में ९५ लीक जाने पर एक लीक गहरा है । ९५ जूं (यूका) परिमाण जाने पर एक जूं ऊंडा है । ९५ जौ परिमाण जाने पर एक जौ जितना गहरा है । ९५ अंगुल परिमाण जाने पर एक अंगुल गहरा है । ९५ मूंठ (मुष्टि) परिमाण जाने पर एक मूठ गहरा है । ९५ बिलात (बालिस्त) जाने पर एक बिलात गहरा है । ९५ हाथ जाने पर एक हाथ गहरा है । ९५ कुक्षि (आधा धनुष) जाने पर एक कुक्षि गहरा है । ९५ धनुष जाने पर एक धनुष गहरा है । ९५ गाऊ (गव्यूति-दो कोस) जाने पर एक गाऊ गहरा है । ९५ योजन जाने पर एक योजन गहरा है । ९५०० योजन जाने पर एक सौ योजन गहरा है । ९५ हजार योजन जाने पर एक हजार योजन गहरा है * । सतरह

** किसी किसी ग्रन्थ में ऐसा भी लिखा है कि जम्बूद्वीप की जगती*

हजार योजन पानी है । जम्बूद्वीप की जगती से बारह हजार योजन पूर्व दिशा में जाने पर चन्द्रमा के बारह द्वीप आते हैं । चन्द्रद्वीप में चन्द्र देव (चन्द्रमा ज्योतिषी) रहता है । जम्बूद्वीप की जगती से बारह हजार योजन पश्चिम दिशा में जाने पर सूर्य के बारह द्वीप आते हैं । सूर्यद्वीप में सूर्यदेव (सूर्य ज्योतिषी) रहता है । पश्चिमदिशा में गोस्थूम नाम का द्वीप है । वहां सुस्थित देवता का निवास है । जम्बूद्वीप की जगती से लवणसमुद्र में चारों दिशाओं में बयालीस बयालीस हजार योजन जाने पर चार बेलंधर पर्वत आते हैं । उनमें नाम ये हैं– गोस्थूभ, दकभास, शंख और दकसीम । गोस्थूभपर्वत सुवर्णमय पीला है । दकभास पर्वत अंकरत्नमय है । शंखपर्वत रजतमय (चांदीमय) है । दकसीम-पर्वत स्फटिकरत्नमय है । इन चारों पर्वतों पर चार रक्षक देव रहते हैं । गोस्थूभपर्वत पर गोस्थूभ देव है । दकभासपर्वत पर शिव देव है । शंखपर्वत पर शंख देव है और दकसीमपर्वत पर मनोशिल देव रक्षक निवास करता है ।

जम्बूद्वीप की जगती से लवणसमुद्र में चारों विदिशा में बयालीस बयालीस हजार योजन जाने पर चार अनुबेलंधर पर्वत

से प्रदेश प्रदेश करते हुए ९५०० योजन जाने पर वहां ७०० योजन की वृद्धि होती है। एक हजार योंजन जाने पर ७ योजन और भाग $\frac{७}{१९}$ की वृद्धि होती है। इस प्रकार ९५००० योजन जाने पर ७०० योजन पानी गहरा है। यहां १५३०० योजन का ऊंचा डगमाला (उदकमाल) है।

किसी-किसी की ऐसी धारणा है। तत्त्व केवलिगम्य है।

आते हैं । उनके नाम ये हैं– कर्कोटक, कर्दमक, कैलाश और अरुणप्रभ । इन चार पर्वतों पर इन्हीं नाम वाले देव रहते हैं । ये चारों पर्वत रत्नमय हैं ।

चार बेलंधर और चार अनुबेलंधर ये आठों पर्वत १७२१-१७२१ योजन ऊंचे हैं । ४३० योजन एक कोस के गहरे हैं । एक हजार बाईस योजन मूल में चौड़े हैं । ७१३ योजन मध्य में चौड़े हैं । ४२४ योजन ऊपर चौड़े हैं । इसकी मूल में परिधि कुछ कम ३२३२ योजन है । बीच की परिधि २२८६ योजन झाझेरी है । ऊपर की परिधि कुछ कम १३४१ योजन है ।

अहो भगवन् ! लवणसमुद्र में क्या रचना है ? हे गौतम ! लवणसमुद्र में ७८८८ पातालकलश हैं । उनमें चार पातालकलश बड़े हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं– पूर्व दिशा में वलयमुख, दक्षिण दिशा में केतुमुख, पश्चिम दिशा में यूप और उत्तर दिशा में ईश्वर ।

अहो भगवन् ! ये कलश कितने लम्बे-चौड़े हैं ? हे गौतम ! एक लाख योजन जमीन में गहरे हैं । एक लाख योजन का मध्य में पोला भाग है । दस हजार योजन का मुख है । एक हजार योजन की ठीकरी (नीचे के तल भाग की मोटाई) है ? दस हजार योजन का पड़घा (घेर) है ।

अहो भगवन् ! एक एक कलश में कितना कितना अन्तर है ? हे गौतम ! प्रत्येक कलश में बीच में २ लाख १९ हजार २६५ योजन का अन्तर है । एक एक अन्तर में छोटे कलशों की नौ नौ लड़ियां (लाईनें) हैं । पहली लड़ में २१५ कलश हैं । दूसरी

लड़ में २१६ कलश हैं । तीसरी लड़ में २१७ कलश हैं । इस तरह प्रत्येक लड़ में एक एक कलश बढ़ता गया है । नवमी लड़ में २२३ कलश हैं । कुल १९७१ कलश हैं । इस तरह चारों बड़े कलशों के अन्तरों में जान लेना चाहिए । इस तरह कुल ७८८४ (१९७१ x ४ = ७८८४) छोटे कलश हुए । चार बड़े कलश मिलाने पर कुल ७८८८ (७८८४ + ४ = ७८८८) कलश हुए ।

अहो भगवन् ! इन कलशों में क्या भरा हुआ है ? हे गौतम ! ३३३३३$\frac{१}{३}$ योजन में तो वायुकाय है । ३३३३३$\frac{१}{३}$ योजन में वायुकाल और अप्काय दोनों हैं । ३३३३३$\frac{१}{३}$ योजन में अप्काय है । एक एक कलश के बीच में १९७१ छोटे कलश हैं । इस प्रकार चारों बड़े कलशों के बीच में ७८८४ छोटे कलश हैं ।

अहो भगवन् ! ये छोटे कलश कितने लम्बे-चौड़े हैं ? हे गौतम ! एक हजार योजन जमीन में गहरे हैं । एक हजार योजन का मध्य भाग है । एक सौ योजन का मुख है । दस योजन की ठीकरी (नीचे का तला) है । एक सौ योजन का पड़घा (तलभाग का घेरा) है ।

अहो भगवन् ! इन छोटे कलशों में क्या भरा है ? हे गौतम ! ३३३$\frac{१}{३}$ योजन में वायुकाय है । ३३३$\frac{१}{३}$ योजन में वायुकाय और अप्काय दोनों हैं और ३३३$\frac{१}{३}$ योजन में अप्काय है । अष्टमी चतुर्दशी अमावस्या और पूर्णिमा को वायुकाय उत्तरवैक्रिय करती है तब सतरह हजार योजन का ऊंचा डगमाला (दकमाला या उदकमाला) उठता है और उसके ऊपर दो कोस की बेल चढ़ती है । ज्यों ज्यों पानी उछलता है, त्यों त्यों बेल चढ़ती है ।

अहो भगवन् ! क्या उस बेल के पानी की झलक जम्बूद्वीप और धातकीखंड द्वीप में गिरती है ? हे गौतम ! नहीं गिरती है, नहीं गिरी थी और नहीं गिरेगी । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप की तरफ से ४२ हजार देवता और धातकीखंड द्वीप की तरफ से ७२ हजार देवता तथा ऊपर से ६० हजार देवता, ये कुल एक लाख चौहत्तर हजार देवता उस पानी को दबाते रहते हैं ।

अहो भगवन् ! क्या देवता के दबाने से पानी दबता है ? हे गौतम ! नहीं दबता है । अहो भगवन् ! तो फिर पानी की झलक जम्बूद्वीप और धातकीखंड द्वीप में क्यों नहीं गिरती है ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप और धातकीखंड द्वीप में जो तीर्थंकर, केवली भगवान, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका समदृष्टि, चौदह नदियों की देवियां हैं । उनके अतिशय से एवं पुण्य से गतकाल में पानी की झलक पड़ी नहीं, वर्तमान में पड़ती नहीं और आगामी काल में पड़ेगी नहीं ।

तीसरा बोल समाप्त

अहो भगवन् ! जम्बूद्वीप की खाड़ी में कितने योजन के मच्छ हैं ? हे गौतम ! नौ योजन के मच्छ हैं ।

अहो भगवन् ! लवणसमुद्र में कितने योजन के मच्छ हैं ? हे गौतम ! पांच सौ योजन के मच्छ हैं ।

अहो भगवन् ! कालोदधिसमुद्र में कितने योजन के मच्छ हैं ? हे गौतम ! सात सौ योजन के मच्छ हैं ।

अहो भगवन् ! स्वयंभूरमणसमुद्र में कितने योजन के

मच्छ हैं ? हे गौतम ! एक हजार योजन के मच्छ हैं । शेष असंख्यात समुद्रों में अल्प मच्छ हैं ।

चौथा बोल समाप्त ।

अहो भगवन् ! जम्बूद्वीप आदि कितने लम्बे-चौड़े हैं ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप एक लाख योजन का है । लवणसमुद्र दो लाख योजन का है । धातकीखण्डद्वीप चार लाख योजन का है । कालोदधिसमुद्र आठ लाख योजन का है । पुष्करवरद्वीप १६ लाख योजन का है । उसके बीच में मानुषोत्तरपर्वत है । वह मनुष्यक्षेत्र की हद (सीमा-मर्यादा) बांधता है । मानुषोत्तरपर्वत बीच में आ जाने से पुष्करवरद्वीप के दो विभाग हो गये हैं । इसलिए अर्द्धपुष्करवरद्वीप आठ लाख योजन का है । मानुषोत्तर चूड़ी (कंकण) के आकार का है । वह १७२१ योजन का ऊंचा है । ४३० योजन का कोस धरती में गहरा है । १०२२ योजन मूल में चौड़ा है । ७२३ योजन मध्य में चौड़ा है । कुछ कम ४२४ योजन ऊपर चौड़ा है । यह पर्वत बैठे हुए सिंह के आकार का है अर्थात् जिस प्रकार बैठा हुआ सिंह आगे से ऊंचा होता है और फिर क्रमशः नीचा होता है । इसी तरह यह पर्वत भी आगे से ऊंचा है फिर क्रमशः नीचा होता गया है । पर्वत के ऊपर सुवर्णकुमार देवों के चार कूट हैं । मानुषोत्तरपर्वत मनुष्यक्षेत्र की मर्यादा बांधता है । इसलिए इधर (अन्दर की तरफ) आठ लाख योजन में मनुष्य रहते हैं । (बाहर की तरफ) आठ लाख योजन में तिर्यंच (पशु पक्षी) रहते हैं । यह सब मिला कर पुष्करवरद्वीप सोलह लाख योजन का है । पुष्करसमुद्र ३२ लाख योजन का है ।

वारुणीद्वीप (वरुणी द्वीप) ६४ लाख योजन का है । वारुणी (वरुण) समुद्र एक करोड़ २८ लाख योजन का है । खीर (क्षीर) द्वीप २ करोड़ ५६ लाख योजन का है । खीर (क्षीर) समुद्र ५ करोड़ १२ लाख योजन का है । घृतद्वीप १० करोड़ २४ लाख योजन का है । घृतसमुद्र २० करोड़ ४८ लाख योजन का है । इक्षुवरद्वीप ४० करोड़ ९६ लाख योजन का है । इक्षुवरसमुद्र ८१ करोड़ ९२ लाख योजन का है । नन्दीश्वरद्वीप १६३ करोड़ ८४ लाख योजन का है । उसके बीच में चार अंजनगिरि (अंजन पर्वत) हैं । वे ८४ हजार योजन के ऊंचे हैं । एक हजार योजन धरती में (गहरे) हैं । मूल में दस हजार योजन के लम्बे पोले हैं और ऊपर एक हजार योजन के लम्बे पोले हैं । इन पर्वतों के मूल की परिधि ३१६२३ योजन झाझेरी (कुछ अधिक) है । बीच की परिधि कुछ कम ३१६२३ योजन है । ऊपर की परिधि ३१६२ योजन है। इन चारों अंजनगिरि (अंजनपर्वत) के ऊपर एक एक सिद्धायतन है । वह १०० योजन का लम्बा, ५० योजन का पोला और ७२ योजन का ऊंचा है। इसके चारों दिशा में चार दरवाजे हैं । इन चार दरवाजों के देव, असुर, नाग, सुवर्ण ये चार देव मालिक हैं । ये चारों वाणव्यन्तर जाति के देव हैं । इनकी स्थिति एक पल्योपम की है । चारों अंजनगिरि (अंजनपर्वत) के ऊपर चार बावड़ियां हैं । इनमें इक्षुरस जैसा पानी भरा हुआ है ? प्रत्येक बावड़ी १०० योजन लम्बी, ५० योजन पोली और १० योजन (गहरी) है । नीचे जमीन पर पूर्व दिशा के अंजनगिरि के चारों दिशा में चार बावड़ियां हैं । उनके नाम ये हैं– नन्दोत्तर, नन्दा,

आनन्दा, नन्दवर्द्धना । दक्षिणदिशा के अंजनगिरि के चारों दिशा में चार बावड़ियां हैं । उनके नाम ये हैं– भद्रा, विशाला, कुमुदा, पुंडरिकिणी । पश्चिमदिशा के अंजनगिरि के चारों दिशा में चार बावड़ियां हैं । उनके नाम ये हैं– नन्दिसेना, अमोघा, गोस्थूभा, सुदर्शना । उत्तरदिशा के अंजनगिरि के चारों दिशा में चार बावड़ियां हैं । उनके नाम ये हैं– विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता । ये बावड़ियां एक एक लाख योजन की लम्बी-चौड़ी हैं । दस योजन की गहरी हैं । एक एक बावड़ी में एक एक दधिमुख पर्वत है। ये ६४ हजार योजन ऊंचे, एक हजार योजन गहरे, दस हजार योजन पोले हैं और नीचे से लेकर ऊपर तक सब जगह एक सरीखे चौड़े हैं । सब रत्नमय स्वच्छ (अच्छा आदि) यावत् प्रतिरूप १६ उपमा सहित हैं । इनकी परिधि ३१६२३ योजन की है । प्रत्येक दधिमुखपर्वत के ऊपर एक एक सिद्धायतन है । वह १०० योजन का लम्बा, ५० योजन का पोला और ७२ योजन का ऊंचा है । इसके चार दरवाजे हैं । इनके नाम ये हैं– देव, असुर, नाग, सुवर्ण । इन चारों दरवाजों के इन्हीं नाम वाले चार देव रक्षक हैं । ये वाणव्यन्तर जाति के हैं । इनकी स्थिति एक पल्योपम की है । पूर्व पुण्य के उदय से सुख भोगते हुए विचरते हैं । एक बावड़ी से दूसरी बावड़ी के बीच में दो दो रतिकर पर्वत हैं । वे पर्वत एक हजार योजन के ऊंचे हैं । एक हजार गाऊ (कोस) धरती में गहरे हैं । दस हजार योजन के लम्बे-चौड़े हैं । पलंग के संस्थान (आकार) हैं । ये सब रत्नमय हैं । इस प्रकार नन्दीश्वर द्वीप में ५२ पर्वत और ५२

सिद्धायतन हैं ।

नन्दीश्वर समुद्र ३२७ करोड़ ६८ लाख योजन का है । उसके बाद अरुणद्वीप, अरुणसमुद्र, अरुणवरद्वीप, अरुणवरसमुद्र, अरुणवरभासद्वीप, अरुणवरभाससमुद्र, कुण्डलद्वीप, कुण्डलसमुद्र, कुण्डलवरद्वीप, कुण्डलवरसमुद्र, कुण्डलवरभासद्वीप, कुण्डलवरभास-समुद्र । इसके बाद पन्द्रहवां रुचकद्वीप आता है । वहां से असंख्याता द्वीप समुद्र उल्लंघ कर जाने पर अन्त में पांच द्वीप और पांच समुद्र एक नाम वाले आते हैं । उनके नाम ये हैं– देवद्वीप देवसमुद्र, नागद्वीप, नागसमुद्र, यक्षद्वीप, यक्षसमुद्र, भूतद्वीप, भूतसमुद्र, स्वयंभूरमणद्वीप, स्वयंभूरमणसमुद्र । संसार में जितनी उत्तम वस्तुएं हैं, उन एक एक वस्तु के नाम वाले असंख्याता द्वीप समुद्र हैं, सिर्फ अन्तिम पांच द्वीप समुद्र एक एक नाम वाले हैं यथा–देवद्वीप देवसमुद्र, नागद्वीप नागसमुद्र, यक्षद्वीप यक्षसमुद्र, भूतद्वीप भूतसमुद्र, स्वयंभूरमणद्वीप स्वयंभूरमणसमुद्र ।

पांचवां बोल समाप्त ।

अहो भगवन् ! इन सब द्वीप समुद्रों का आकार कैसा है ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप थाल, रुपया, चक्की के पाट के समान गोल है । शेष सब द्वीप समुद्र चूड़ी (कंकण, वलय) के आकार जैसे गोल हैं ।

छठा बोल समाप्त ।

जम्बूद्वीप के आठ बोल चलते हैं सो कहते हैं–

पहला बोल– अहो भगवन् ! वनितानगरी कहां है ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप की दक्षिण जगती से उत्तर की तरफ ११४।।

योजन डेढ कला (एक योजन के उन्नीस भाग में से डेढ भाग) जम्बूद्वीप में आने पर वनितानगरी आती है । वह १२ योजन लम्बी और ९ योजन चौड़ी है ।

अहो भगवन् ! वैताढ्यपर्वत कहां है ? हे गौतम ! वनितानगरी से ११४।। योजन डेढ कला (एक योजन के उन्नीस भाग में से डेढ भाग) जाने पर वैताढ्यपर्वत आता है । वह रूप्यमय (चांदी का) है । वह ५० योजन चौड़ा और २५ योजन ऊंचा है। सवा छह योजन धरती में गहरा है । वैताढ्यपर्वत से आगे उत्तर भरत क्षेत्र है । वह २३८ योजन तीन कला का चौड़ा है । वह चुल्लहिमवन्तपर्वत तक है । चुल्लहिमवन्तपर्वत १०५२ योजन बारह कला का चौड़ा है । वह हैमवय (हैमवत) क्षेत्र तक है । हैमवय क्षेत्र २१०५ योजन पांच कला का चौड़ा है । हेमवय क्षेत्र महाहिमवन्तपर्वत तक है । महाहिमवन्तपर्वत ४२१० योजन दस कला का चौड़ा है । वह हरिवास (हरिवर्ष) क्षेत्र तक विस्तृत है । हरिवासक्षेत्र ८४२१ योजन एक कला का चौड़ा है । वह निषढ (निषध) पर्वत तक विस्तृत है । निषढपर्वत १६८४२ योजन दो कला का चौड़ा है । वह महाविदेहक्षेत्र तक विस्तृत है । महाविदेहक्षेत्र ३३६८४ योजन चार कला का चौड़ा है । वह नीलवन्तपर्वत तक विस्तृत है । नीलवन्तपर्वत १६८४२ योजन दो कला का चौड़ा है । वह रम्यकवासक्षेत्र तक विस्तृत है । रम्यकवासक्षेत्र ८४२१ योजन एक कला का चौड़ा है । वह रूपी (रुक्मी) पर्वत तक विस्तृत है । वह रूपी पर्वत ४२१० योजन दस कला का चौड़ा है । वह हिरणवय (हैरणववत)क्षेत्र तक

विस्तृत है । हिरणवयक्षेत्र २१०५ योजन पांचकला का चौड़ा है । वह शिखरीपर्वत तक विस्तृत है । शिखरीपर्वत १०५२ योजन बारह कला का चौड़ा है । वह ऐरवत क्षेत्र तक विस्तृत है । ऐरवत क्षेत्र तक ५२६ योजन छह कला का चौड़ा है ।

इति प्रथम बोल समाप्त ।

दूसरा बोल-अहो भगवन् ! जम्बूद्वीप की जगती से पूर्व में क्या रचना है ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप की जगती से पूर्व में जम्बूद्वीप में सीतामुख वन है । वह २९२३ योजन का चौड़ा है, वह पूर्व महाविदेह की विजयों तक विस्तृत है । प्रत्येक विजय २२१२।। योजन चौड़ी और १६५९२ योजन दो कला की लम्बी है । चार वक्षस्कार पर्वत हैं । प्रत्येक पर्वत ५०० योजन का ऊंचा और ५०० योजन का चौड़ा है तथा १२५ योजन के गहरे हैं । उनके बीच में तीन नदियां हैं । वे १२५-१२५ योजन चौड़ी हैं । विजयों के बाद भद्रसालवन है । वह २२००० योजन का लम्बा है और मेरु पर्वत तक विस्तृत है । मेरु पर्वत एक हजार योजन का ऊंडा है और ९९ हजार योजन ऊंचा है । दस हजार योजन चौड़ा है । वह पश्चिम के भद्रसालवन तक विस्तृत है । पश्चिम का भद्रसालवन २२००० योजन लम्बा है । वह पश्चिम महाविदेह तक विस्तृत है । पश्चिम महाविदेह २००७७ योजन लम्बा है । वह सीतोदामुखवन तक विस्तृत है। सीतोदामुखवन २९२३ योजन लम्बा है । वह पश्चिम की जगती तक विस्तृत है । मेरुपर्वत से ४५ हजार योजन पूर्व में और ४५ हजार योजन पश्चिम में तथा दस हजार का स्वयं मेरुपर्वत है । यह सब मिला कर जम्बूद्वीप पूर्व

पश्चिम एक लाख योजन का विस्तृत है *।

तीसरा बोल-द्रहद्वार–इस जम्बूद्वीप में १६ महाद्रह हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं– देवकुरु क्षेत्र में पांच द्रह हैं- १. देवकुरुद्रह, २. निषधद्रह, ३. सुलसद्रह, ४. सूरद्रह, ५.विज्जुप्रभ (विद्युत्प्रभ) द्रह । उत्तरकुरुक्षेत्र में पांच द्रह–६. उत्तरकुरुद्रह, ७. नीलवन्तद्रह, ८. चन्द्रद्रह, ९. माल्यवन्तद्रह, १०. एरावतद्रह ।

* जम्बूद्वीप पूर्व पश्चिम एक लाख योजन का लम्बा है। वह इस प्रकार है-

पूर्व का सीतामुख वन २९२३ योजन का है। पश्चिम का सीतोदामुख वन २९२३ योजन का है। पूर्व महाविदेह की आठ विजय और पश्चिम महाविदेह की आठ विजय ये सोलह विजय ३५४०४ योजन (प्रत्येक विजय २२१२।।। योजन की है। इसलिए २२१२।।। x १६ = ३५४०४ योजन) की हैं। आठ वक्षस्कार पर्वत ४००० योजन (प्रत्येक वक्षस्कार) पर्वत ५०० योजन का चौड़ा है। इसलिए ५० x ८ = ४००० योजन) के हैं। वक्षस्कार पर्वतों के बीच की छह नदियां ७५० योजन (प्रत्येक नदी १२५ की है। इसलिए १२५ x ६ = ७५० योजन) की हैं। पूर्व का भद्रसालवन २२००० योजन का है और पश्चिम का भद्रसालवन २२००० योजन का है। दोनों वनों के बीच में मेरु पर्वत है, वह १०००० योजन का चौड़ा है। इस प्रकार जम्बूद्वीप पूर्व से पश्चिम एक लाख योजन (२९२३ + २९२३ + ३५४०४ + ४००० + ७५० + २२००० + २२००० + १०००० = १००००० योजन का लम्बा है।)

चुल्लहेमवन्त पर्वत के ऊपर (११) पद्मद्रह है । वह एक हज़ार योजन का लम्बा है, पांच सौ योजन का चौड़ा है और दस योजन का गहरा है ।* इस द्रह से तीन नदियां निकली हैं, गंगा और सिन्धु ये दो नदियां भरतक्षेत्र में आती हैं । रोहितंसा नदी हेमवय (हैमवत) क्षेत्र में जाती है । महाहिमवंत पर्वत के ऊपर (१२) महापद्मद्रह है । वह दो हजार योजन का लम्बा एक हजार योजन का चौड़ा और दस योजन गहरा है । इसमें से दो नदियां निकली हैं– रोहिता और हरिकान्ता । रोहिता हेमवय (हैमवत) क्षेत्र में जाती है और हरिकान्ता हरिवास (हरिवर्ष) क्षेत्र में जाती है । निषध-पर्वत के ऊपर (१३) तिगिच्छद्रह है । वह चार हजार योजन का लम्बा, दो हजार योजन का चौड़ा और दस योजन का गहरा है । इसमें से दो नदियां निकली हैं– हरिसलिला और सीतोदा । हरिसलिला हरिवास क्षेत्र में जाती है और सीतोदा नदी पश्चिम महाविदेह में जाती है । नीलवन्त पर्वत के ऊपर (१४) केसरीद्रह है । वह चार हजार योजन का लम्बा, दो हजार योजन का चौड़ा और दस योजन का गहरा है । इसमें से दो नदियां निकली हैं– सीता और नरकान्ता । सीता नदी पूर्व महाविदेह में जाती है और नरकान्ता रम्यकवास क्षेत्र में जाती है । रूपी 'रुक्मी' पर्वत के ऊपर (१५) महापुंडरीकद्रह है । वह दो हजार योजन लम्बा, एक हंजार योजन चौड़ा और दस योजन गहरा है । इसमें से दो नदियां निकली हैं– नारीकान्ता और सुवर्णकूला । नारीकान्ता रम्यकवासक्षेत्र में जाती है और सुवर्णकूला एरणवय क्षेत्र में जाती है । शिखरीपर्वत के

---

* इस द्रहों की लम्बाई चौड़ाई पद्मद्रह के समान है।

ऊपर (१६) पुंडरीकद्रह है । वह एक हजार योजन लम्बा, पांच सौ योजन चौड़ा और दस योजन गहरा है । इसमें से तीन नदियां निकली हैं– रूप्यकूला, रक्ता और रक्तवती, रूप्यकूला एरणवय क्षेत्र में जाती है । रक्ता और रक्तवती ये दो नदियां ऐरवत क्षेत्र में जाती हैं ।

तीसरा बोल समाप्त ।

चौथा बोल-नदियों का परिवारद्वार–गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तवती इन चार नदियों का चौदह चौदह हजार नदियों का परिवार है अर्थात् इनमें चौदह चौदह हजार छोटी नदियां आकर मिलती हैं । रोहिता, रोहितंसा, सुवर्णकूला और रूप्यकूला इन चार नदियों का २८-२८ हजार नदियों का परिवार है । हरिकान्ता, हरिसलिला, नरकान्ता और नारीकान्ता इन चार नदियों का ५६-५६ हजार नदियों का परिवार है । सीता और सीतोदा नदियों का प्रत्येक पांच लाख बत्तीस हजार नदियों का परिवार है । ये १४ लाख ५६ हजार ९० नदियां जम्बूद्वीप से लवणसमुद्र में जाती हैं। १४ लाख ५६ हजार ९० नदियां घातकीखण्ड द्वीप से लवणसमुद्र में आती हैं । १४ लाख ५६ हजार ९० नदियां घातकीखण्ड द्वीप से कालोदधिसमुद्र में जाती हैं । १४ लाख ५६ हजार ९० नदियां अर्द्धपुष्करवर द्वीप से कालोदधिसमुद्र में जाती हैं । १४ लाख ५६ हजार ९० नदियां मानुषोत्तरपर्वत की जड़ों में विलय हो गई हैं ।

चौथा बोल समाप्त ।

पांचवां बोल–खण्डद्वार– यदि जम्बूद्वीप के समचौरस एक एक योजन के खण्ड किये जांय तो सात अरब ९० करोड़ ५६ लाख

९४ हजार १५० खण्ड होते हैं । शेष पौने दो गाऊ पन्द्रह धनुष साठ अंगुल क्षेत्र बच जाता है । यदि ढाई द्वीप के समचौरस एक योजन के खण्ड किये जांय तो १६ लाख करोड़ ९०० करोड़ तीन करोड़ एक लाख पचास हजार खण्ड होते हैं । अढाई द्वीप में १५ कर्मभूमि और ३० अकर्मभूमि, ये ४५ क्षेत्र हैं जिनमें से ९ जम्बूद्वीप में, १८ घातकीखण्ड द्वीप में और १८ अर्द्धपुष्करवर द्वीप में हैं । एक भरत, एक ऐरवत और एक महाविदेह ये तीन कर्मभूमि और देवकुरु, उत्तरकुरु, हरिवास, रम्यकवास, हेमवय, हिरणवय ये छह अकर्मभूमि, सब मिला कर ९ क्षेत्र जम्बूद्वीप में हैं । अढाईद्वीप में पर्वतों के ऊपर २३३५ कूट हैं-४६७ जम्बूद्वीप में, ९३४ धातकीखण्ड में और ९३४ अर्द्धपुष्करवरद्वीप में हैं । अढाई द्वीप में ५१० तीर्थ हैं * । जिनमें से १०२ जम्बूद्वीप में हैं, २०४ धातकीखण्डद्वीप में हैं और २०४ अर्द्धपुष्करवरद्वीप में हैं । अढाई द्वीप में ८० द्रह हैं । अढाई द्वीप में १७० विजय हैं । अढाई द्वीप में ९६ करोड़ ४० लाख ९ हजार ६०० रत्नों के कमल हैं । अढाई द्वीप में ७२ लाख ८० हजार ४५० नदियां हैं ।

पांचवां बोल समाप्त ।

छठा बोल-पर्वतद्वार—जम्बूद्वीप में २६९ पर्वत शाश्वत हैं— ६ वर्षधर पर्वत, एक मेरुपर्वत, ४ गजदन्तपर्वत, ४ वृत्त वैताढ्य (गोल वैताढ्य), ४ गोपुच्छाकार, १६ वक्षस्कार पर्वत, ३४ दीर्घ वैताढ्य (लम्बे वैताढ्य) और २०० कांचनगिरि । घातकीखण्ड द्वीप में ५४० पर्वत हैं । जम्बूद्वीप में जो पर्वत कहे हैं, धातकीखण्ड में

** ये समुद्र और नदी के तीर पर होने से तीर्थ कहे जाते हैं। ये देवता के स्थान हैं।*

उनसे दुगुने कह देने चाहिए । दो इषुकार पर्वत अधिक हैं । ये इषुकार चार लाख योजन के लम्बे हैं, एक हजार योजन के चौड़े हैं और ५०० योजन के ऊंचे हैं । अर्द्धपुष्करवरद्वीप में ५४० पर्वत हैं । जिस प्रकार धातकीखण्डद्वीप में कहे उसी तरह कह देना चहिए किन्तु इतनी विशेषता है कि इषुकार पर्वत ८ लाख योजन के लम्बे, एक हजार योजन के चौड़े और ५०० योजन के ऊंचे हैं । अढाई द्वीप में ये सब १३४९ पर्वत शाश्वत हैं ।

छठा बोल समाप्त ।

सातवां बोल–आंतरा (अन्तर) और परिधिद्वार–जम्बूद्वीप के चार दरवाजे हैं । एक दरवाजे का दूसरे दरवाजे से ७९०५२।। योजन (कुछ कम) आंतरा (अन्तर) है । ३१६२२७ योजन ३ कोस १२८ धनुष १३।। अंगुल झाझेरी (कुछ अधिक) परिधि है । लवणसमुद्र के चार दरवाजे हैं । एक दरवाजे का दूसरे दरवाजे से ३९५२८० योजन एक कोस कुछ कम का अन्तर है । १५८११३९ योजन कुछ कम परिधि है । धातकीखण्ड के चार दरवाजे हैं । एक दरवाजे का दूसरे दरवाजे से १०२७७३५ योजन तीन कोस का आंतरा (अन्तर) है । ४११०९६१ योजन माठेरी परिधि है । कालोदधिसमुद्र के चार दरवाजे हैं । एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे का आंतरा २२ लाख ९२ हजार ६४६ योजन तीन कोस का है । इसकी परिधि ९१ लाख ७० हजार ६०५ योजन की है । पुष्करवरद्वीप के चार दरवाजे हैं । एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे का अन्तर ४८२२४६९ योजन माठेरा है । सम्पूर्ण पुष्करवरद्वीप की परिधि १९२८९८९४ योजन की है। अर्द्धपुष्करवरद्वीप की परिधि

१४२३०२४९ योजन की है ।

सातवां बोल समाप्त ।।

आठवां बोल–चन्द्रसूर्यद्वार–जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा और दो सूर्य हैं । १७६ ग्रह, ५६ नक्षत्र हैं । १३३९५० कोडाकोडी तारा हैं । लवणसमुद्र में ४ चन्द्रमा, ४ सूर्य, ३५२ ग्रह, ११२ नक्षत्र, २६७९०० कोडाकोडी तारा हैं । धातकीखण्डद्वीप में १२ चन्द्रमा, १२ सूर्य, १०५६ ग्रह, ३३६ नक्षत्र, ८०३७०० कोडाकोडी तारा हैं । कालोदधिसमुद्र में ४२ चन्द्रमा, ४२ सूर्य, ३६९६ ग्रह, ११७६ नक्षत्र, २८१२९५० कोडाकोडी तारा हैं । अर्द्धपुष्करवरद्वीप में ७२ चन्द्रमा, ७२ सूर्य, ६३३६ ग्रह, २०१६ नक्षत्र, ४८२२२०० कोडाकोडी तारा हैं । अढाई द्वीप में १३२ चन्द्रमा, १३२ सूर्य, ११६७६ ग्रह, ३६९६ नक्षत्र हैं, ८८४०७०० कोडाकोडी तारा हैं । पूर्ण पुष्करवरद्वीप में १४४ चन्द्रमा, १४४ सूर्य हैं । पुष्करवरसमुद्र में ४९२ चन्द्रमा, ४९२ सूर्य हैं । वरुणद्वीप में १६८० चन्द्रमा, १६८० सूर्य हैं । वरुणसमुद्र में ५७३६ चन्द्रमा,५७३६ सूर्य हैं क्षीरवरद्वीप में १९५८४ चन्द्रमा, १९५८४ सूर्य हैं । क्षीरवरसमुद्र में ६६८२४ चन्द्रमा, ६६८२४ सूर्य हैं । घृतवरद्वीप में २२८२८८ चन्द्रमा, २२८२८८ सूर्य हैं । घृतवरसमुद्र में ७७९४२४ चन्द्रमा, ७७९४२४ सूर्य हैं । इक्षुवरद्वीप में २६६११२० चन्द्रमा, २६६११२० सूर्य हैं । इक्षुवरसमुद्र में ९०८५६३२ चन्द्रमा, ९०८५६३२ सूर्य हैं । नन्दीश्वरद्वीप में १०५९०९८८८ चन्द्रमा, १०५९०९८८८ सूर्य हैं * ।

**अढाई द्वीप के ज्योतिषी चर हैं (चलते हैं)। अढाई द्वीप के बाहर के ज्योतिषी स्थिर हैं। अढाई द्वीप के ज्योतिषियों की ज्योति कान्ति पूरी है और अढाई द्वीप के बाहर वाले ज्योतिषियों की ज्योति कान्ति आधी है।*

पिछले सब मिला कर, इनसे तिगुणा कर लेना चाहिए । संख्यात योजन के द्वीप-समुद्रों में संख्यात चन्द्रमा, संख्यात सूर्य हैं । असंख्यात योजन के द्वीप समुद्रों में असंख्यात चन्द्रमा, असंख्यात सूर्य हैं । अढाई द्वीप के अन्दर वाले ज्योतिषी और अढाई द्वीप के बाहर वाले ज्योतिषी देवों की अवगाहना और स्थिति बराबर है । अढाई द्वीप के अन्दर वाले ज्योतिषी देवों का संठाण (संस्थान) आधे कवीठ के आकार का है और अढाई द्वीप से बाहर वाले ज्योतिषी देवों का संठाण पकी हुई ईंट के आकार का है । ज्योतिषी देवों के और अलोक के ११११ योजन की दूरी है अर्थात् ज्योतिषी देवों से ११११ योजन आगे अलोक है । सब ज्योतिषी स्फटिक रत्नमय हैं ।

आठवां बोल समाप्त ।

नव बोल– अहो भगवन् ! ज्योतिषी देव धरती से कितने ऊंचे हैं ? हे गौतम ! समभूमिभाग से ७९० योजन तारा का विमान ऊंचा है । ८०० योजन सूर्य का विमान ऊंचा है । ८८० योजन चन्द्रमा का विमान ऊंचा है । ८८४ योजन नक्षत्र का विमान ऊंचा है । ८८८ योजन बुध का विमान ऊंचा है । ८९१ योजन शुक्र का विमान ऊंचा है । ८९४ योजन बृहस्पति का विमान ऊंचा है । ८९७ योजन मंगल का विमान ऊंचा है । ९०० योजन शनिश्चर का विमान ऊंचा है । ११० योजन में सब ज्योतिषी देव हैं ।

प्रथम बोल समाप्त ।

अहो भगवन् ! ज्योतिषी देवों के विमान कितने लम्बे-चौड़े हैं ? हे गौतम ! चन्द्र का विमान एक योजन के ६१ भाग में से ५६ भाग ($\frac{५६}{६१}$) लम्बा-चौड़ा है । इकसठिया अट्ठाईस भाग

($\frac{२८}{६१}$) मोटा (जाडा) है । तिगुणी झाझेरी परिधि है । सूर्य का विमान एक योजन के इक्सठिया अड़तालीस भाग लम्बा-चौड़ा हैं, चौबीस भाग ($\frac{२४}{६१}$) मोटा (जाडा) है । तिगुणी झाझेरी परिधि है । ग्रह का विमान दो गाऊ का लम्बा-चौड़ा है, एक गाऊ का मोटा है, तिगुणी झाझेरी परिधि है । नक्षत्र का विमान एक गाऊ का लम्बा-चौड़ा है, आधा गाऊ का मोटा (जाडा) है, तिगुणी झाझेरी परिधि है । तारा का विमान आधा गाऊ का लम्बा-चौड़ा है, पाव गाऊ का मोटा हैं, तिगुणी झाझेरी परिधि है ।

दूसरा बोल समाप्त ।

अहो भगवन् ! ज्योतिषी देवों के विमानों को कितने देव उठाते हैं ? हे गौतम ! चन्द्रमा और सूर्य के विमान को सोलह सोलह हजार देवता उठाते हैं । उनमें से चार हजार देवता पूर्वदिशा में सिंह के रूप से उठाते हैं । दक्षिणदिशा में चार हजार देवता हाथी के रूप से उठाते हैं । पश्चिमदिशा में चार हजार देवता वृषभ (बैल) के रूप से उठाते हैं । उत्तरदिशा में चार हजार देवता अश्व (घोड़ा) के रूप से उठाते हैं । ग्रह के विमान को आठ हजार देवता उठाते हैं । दो दो हजार देवता चारों ही दिशा में पूर्ववत् (सिंह, हाथी, बैल घोड़ा) के रूप से उठाते हैं । नक्षत्र के विमान को चार हजार देवता उठाते हैं । चारों ही दिशा में एक एक हजार देवता पूर्ववत् रूप से उठाते हैं । तारा के विमान को दो हजार देवता उठाते हैं । चारों ही दिशा में पांच पांच सौ देवता पूर्ववत् रूप से उठाते हैं ।

तीसरा बोल समाप्त ।

अहो भगवन् ! ज्योतिषी देवों की गति (चाल) कैसी हैं ? हे गौतम ! चन्द्रमा की गति सब से मन्द हैं, उससे सूर्य की गति शीघ्र है। इससे ग्रह की गति शीघ्र है। उससे नक्षत्र की गति शीघ्र है । उससे तारा की गति शीघ्र है ।

चौथा बोल समाप्त ।

अहो भगवन् ! ज्योतिषी देवों में परस्पर कितना अन्तर (दूरी) है ? हे गौतम ! अढाई द्वीप के बाहर एक चन्द्रमा का दूसरे चन्द्रमा से एक लाख योजन का अन्तर है । एक सूर्य का दूसरे सूर्य से एक लाख योजन का अन्तर है । चन्द्रमा और सूर्य के बीच में पचास हजार योजन का अन्तर (दूरी) है । अढाई द्वीप में ज्योतिषियों का अन्तर दो प्रकार का हैं– व्याघात की अपेक्षा * और निर्व्याघात की अपेक्षा । व्याघात की अपेक्षा जघन्य अन्तर २६६ योजन का है, वह इस प्रकार है कि निषध और नीलवन्त पर्वत चार चार सौ योजन के ऊंचे हैं । उनके ऊपर पांच पांच सौ योजन के कूट हैं। वे २५०-२५० योजन के मोटे (जाडे) हैं । उनसे आठ आठ योजन की दूरी पर ज्योतिषीचक्र है । इस प्रकार २६६ योजन (८ + ८ + २५० = २६६) का अन्तर है । यह जघन्य अन्तर है । उत्कृष्ट अन्तर १२२४२ योजन का है । वह इस प्रकार है कि मेरु पर्वत दस हजार योजन का चौड़ा है । उससे ज्योतिषीचक्र ११२१ योजन दूर है । इस प्रकार १२२४२ योजन

---

* *किसी वस्तु का बीच में सामने आ जाना व्याघात कहलाता है। किसी भी वस्तु का बीच में सामने नहीं आना निर्व्याघात (स्वाभाविक) कहलाता है।*

(११२१ + ११२१ + १०००० = १२२४२ योजन) उत्कृष्ट अन्तर है । निर्व्याघात की अपेक्षा जघन्य पांच सौ धनुष, उत्कृष्ट दो गाऊ का अन्तर है ।

पांचवां बोल समाप्त ।

अहो भगवन् ! सूर्य किस तरफ कितना तपता है ? हे गौतम ! सूर्य १००० योजन ऊंचा तपता है । १८०० योजन नीचा तपता है । वह इस प्रकार कि पश्चिम महाविदेह की पांचवीं सलिलावती विजय एक हजार योजन की गहरी है और सूर्य सम भूमिभाग से ८०० योजन ऊंचा है । इस प्रकार नीचा १८०० योजन तपता है । तिर्च्छा ४७२६३ योजन और एक योजन का साठिया इक्कीस भाग तपता है । सूर्य के विमान के नीचे केतु का विमान है । गति (चाल) में अन्तर आने से जब वह सूर्य के विमान के सामने आ जाता है तब सूर्यग्रहण होता है । सूर्यग्रहण जघन्य छह महीनों में होता है और उत्कृष्ट ४८ वर्ष में होता है । केतु का विमान काले रत्नों का है । चन्द्रमा के विमान के नीचे राहु का विमान है । वह काले रत्नों का है *। राहु दो प्रकार का है–नित्यराहु और पर्वराहु । नित्यराहु कृष्णपक्ष में (अन्धेरे पक्ष में) प्रतिदिन चन्द्रमा की एक एक कला को ढकता जाता है यावत् अमावस्या के दिन सब कलाओं को ढक लेता है । शुक्लपक्ष में (उजियाले पक्ष में) प्रतिदिन एक एक कला को खुली छोड़ता जाता है यावत् पूर्णिमा के दिन सब कलाओं को खुली छोड़ देता है तब

---

* श्री भगवती सूत्र में राहु के विमान को पांच वर्ण का बतलाया गया है।

सम्पूर्ण चन्द्रमा खुला रहता है । जब पर्वराहु चन्द्रमा के सामने आ जाता है तब चन्द्रग्रहण होता है ।

चन्द्रग्रहण जघन्य छह महीनों में होता है और उत्कृष्ट ४२ महीनों में होता है ।

छठा बोल समाप्त ।

अहो भगवन् ! सूर्य के कितने मण्डल हैं ? हे गौतम ! सूर्य के १८४ मंडल हैं । उनमें से ११९ मण्डल लवणसमुद्र में हैं और ६५ मंडल जम्बूद्वीप में हैं ।

अहो भगवन् ! चन्द्रमा के कितने मण्डल हैं ? हे गौतम ! चन्द्रमा के १५ मंडल हैं, उनमें से दस मण्डल लवणसमुद्र में हैं और पांच मंडल जम्बूद्वीप में हैं ।

अहो भगवन् ! इन मण्डलों में परस्पर कितना अन्तर है ? हे गौतम ! सूर्य के एक मण्डल से दूसरे मण्डल में दो योजन का अन्तर (दूरी) है । चन्द्रमा के एक मण्डल के दूसरे मण्डल का अन्तर ३५ योजन झाझेरी है ।

अहो भगवन् ! नक्षत्र के कितने मण्डल कहे गये हैं ? हे गौतम ! नक्षत्र के आठ मंडल कहे गये हैं ।

अहो भगवन् ! जम्बूद्वीप में नक्षत्र के कितने मण्डल कहे गये हैं ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप में नक्षत्र के दो मंडल कहे गये हैं ।

अहो भगवन् ! वे जम्बूद्वीप में कितना क्षेत्र अवगाहन कर रहे हुए हैं ? हे गौतम ! वे जम्बूद्वीप में १८० योजन अवगाहन कर रहे हुए हैं ।

अहो भगवन् ! लवणसमुद्र में नक्षत्र के कितने मण्डल

कहे गये हैं ? हे गौतम ! छह मण्डल कहे गये हैं । अहो भगवन् ! वे लवणसमुद्र में कितने योजन अवगाहन कर रहे हुए हैं ? हे गौतम ! लवणसमुद्र में ३३० योजन अवगाहन कर नक्षत्र के मण्डल रहे हुए हैं । इस प्रकार जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र में सब मिल कर नक्षत्र के आठ मण्डल हैं ।

अहो भगवन् ! सब से आभ्यन्तर नक्षत्रमण्डल से सब से बाहर के नक्षत्रमण्डल तक कितना अन्तर है ? हे गौतम ! उसमें ५१० योजन का अन्तर है ।

अहो भगवन् ! एक एक नक्षत्रमण्डल में कितना अन्तर है ? हे गौतम ! दो दो योजन का अन्तर है ।

अहो भगवन् ! नक्षत्रमण्डल कितने लम्बे-चौड़े और कितनी परिधि वाले हैं ? हे गौतम ! एक गाऊ के लम्बे-चौड़े हैं और उससे तिगुणी झाझेरी परिधि वाले हैं और आधे गाऊ के मोटे हैं ।

अहो भगवन् ! जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से सब से आभ्यन्तर नक्षत्रमण्डल तक कितना अन्तर है ? हे गौतम ! ४४८२० योजन का अन्तर है ।

अहो भगवन् ! जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से सब से बाहर के नक्षत्रमण्डल का कितना अन्तर है ? हे गौतम ! ४४३३० योजन का अन्तर है ।

सातवां बोल समाप्त ।

अहो भगवन् ! ज्योतिषी देवों में किसकी ऋद्धि किससे न्यूनाधिक (कम-ज्यादा) है ? हे गौतम ! चन्द्रमा की ऋद्धि सब

से अधिक है । उससे सूर्य की ऋद्धि अल्प है । उससे ग्रह की ऋद्धि अल्प है, उससे नक्षत्र की ऋद्धि अल्प है, उससे तारा की ऋद्धि अल्प है ।

आठवां बोल समाप्त ।

अहो भगवन् ! एक चन्द्रमा का कितना कितना परिवार है ? हे गौतम ! एक चन्द्रमा का परिवार ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र, ६६९७५ कोडाकोड + ताराओं के विमान (परिवार) हैं ।

अहो भगवन् ! ज्योतिषी देवों की क्या अल्पबहुत्व है ? हे गौतम ! सब से थोड़े चन्द्रमा सूर्य हैं किन्तु वे परस्पर तुल्य हैं । उनसे नक्षत्र संख्यातगुणा अधिक हैं, उनसे ग्रह संख्यातगुणा अधिक हैं, उनसे तारा संख्यातगुणा अधिक हैं ।

अहो भगवन् ! ज्योतिषी देवों की परखदा (परिषद्) कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! तीन प्रकार है– आभ्यन्तरपरिषद्, मध्यपरिषद्, बाह्यपरिषद् । आभ्यन्तरपरिषद् में ८००० देव हैं, मध्यपरिषद् में १०००० देव हैं और बाह्यपरिषद् में १२००० देव हैं । ४००० सामानिक देव हैं, १६००० आत्मरक्षक देव हैं । चार चार अग्रमहिषियां है । एक एक अग्रमहिषी का परिवार चार चार हजार देवियां हैं । एक एक देवी चार चार हजार रूप वैक्रिय करती हैं । देवियां जितने रूप वैक्रिय करती हैं, इन्द्र उतने ही रूप वैक्रिय करता है ।

नवमां बोल समाप्त ।

+ एक करोड़ को एक करोड़ से गुणा करने पर जितनी संख्या आवे उसको कोडाकोड कहते हैं।

वैमानिक देवों के छह बोल

पहला बोल– इस जम्बूद्वीप के सम भूमिभाग से असंख्यात कोडाकोड योजन ऊंचा जाने पर पहला दूसरा देवलोक आता है । वह ढांचे * के आकार है। वहां से (पहले दूसरे देवलोक से) असंख्यात कोडाकोड योजन ऊंचा जाने पर तीसरा चौथा देवलोक आता है, वह भी ढांचे के आकार है । उससे असंख्यात कोडाकोड योजन ऊंचा जाने पर पांचवां छठा सातवां आठवां देवलोक आता है । वह बेड़ा + के आकार है । वहां से असंख्यात कोडाकोड योजन ऊपर जाने पर नववा दसवां देवलोक आता है । वह ढांचे के आकार है । वहां से असंख्यात कोडाकोड योजन ऊपर जाने पर ग्यारहवां बारहवां देवलोक आता है । वह भी ढांचे के आकार है । वहां से असंख्यात कोडाकोड योजन ऊपर जाने पर पहला ग्रैवेयक आता है । नव ग्रैवेयक की तीन त्रिक हैं । तीन तीन ग्रैवेयकों की एक एक त्रिक है । ये ग्रैवेयक एक के ऊपर दूसरा और दूसरे के ऊपर तीसरा, इस प्रकार एक बेड़े के आकार हैं । वहां से असंख्यात कोडाकोड योजन ऊपर जाने पर पांच अनुत्तर विमान आते हैं, वे कंचुक ÷ के आकार हैं ।

** दो घड़े बराबर पास पास में रखे हुए हो, उसको ढांचा कहते हैं।*

+ एक घड़े के ऊपर दूसरा घड़ा रखा हुआ हो, उसको बेड़ा कहते हैं।

÷ विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, सर्वार्थसिद्ध ये पांच अनुत्तर विमान हैं। विजय, वैजयन्त, जयन्त अपराजित ये चार विमान चार दिशाओं में हैं और बीच में सर्वार्थसिद्ध विमान है। इनका आकार इस प्रकार है।

अहो भगवन् ! ये देवलोक समभूमिभाग के कितने ऊंचे हैं ? हे गौतम ! पहला दूसरा देवलोक समभूमिभाग से डेड़ राजू ऊंचा है । तीसरा चौथा देवलोक ढाई राजू ऊंचा है। पांचवां देवलोक सवा तीन राजू ऊंचा है । छठा देवलोक साढ़े तीन राजू ऊंचा है । सातवां देवलोक पौने चार राजू ऊंचा है । आठवां देवलोक चार राजू ऊंचा है । नववां दसवां देवलोक साढ़े चार राजू ऊंचा है । ग्यारहवां बारहवां देवलोक पांच राजू ऊंचा है । नवग्रैवेयक की पहली त्रिक साढ़े पांच राजू ऊंची है । दूसरी त्रिक पौने छह राजू ऊंची है । तीसरी त्रिक छह राजू ऊंची है । पांच अनुत्तर विमान कुछ कम सात राजू ऊंचे हैं ।

अहो भगवन् ! ये विमान किसके आधार पर रहे हुए हैं ? हे गौतम ! पहला दूसरा देवलोक घनोदधि के आधार पर हैं । तीसरा, चौथा और पांचवां देवलोक घनवात के आधार पर हैं । छठा सातवां आठवां देवलोक घनोदधि घनवात के आधार पर हैं । नववां दसवां ग्यारहवां बारहवां देवलोक, नवग्रैवेयक, पांच अनुत्तर विमान आकाश के आधार पर हैं ।

पहला बोल समाप्त ।

देवलोकों के नाम	वृत्त (गोल)	त्र्यस्र (त्रिकोण)	चतुरस्र (चोकोण)	पंक्ति बद्ध	पुष्पा वेकरणी	कुल संख्या
१ सौधर्म	७२७	४९४	४८६	१७०७	३११९८२९३	३२ लाख
२ ईशान	२३८	४९४	४८६	१२१८	२७९८७८१	२८ लाख
३ सनत्कुमार	५२२	३५६	३४८	१२२६	११९८७७४	१२ लाख
४ माहेन्द्र	१७०	३५६	३४८	८७४	७९९१२६	८ लाख
५ ब्रह्मलोक	२७४	२८४	२७६	८३४	३९९१६६	४ लाख

६	लान्तक	१९९	१९३	१९३	५८५	४९४१५	५० हजार
७	महाशुक्र	१२८	१३६	१३२	३९६	३९६०४	४० हजार
८	सहस्रार	१०८	११६	१०८	३३२	५६६८	६ हजार
९.१०	आणत प्राणत	८८	९२	८८	२६८	१३२	४००
११.१२	आरण अच्युत	६४	७२	६८	२०४	८९६	३००
	पहली त्रिक	३५	४०	३६	१११	*	१११
	दूसरी त्रिक	२३	२८	२४	७५	३२	१०७
	तीसरी त्रिक	११	१६	१२	३९	६१	१००
	अनुत्तर विमान	१	४	*	५	*	५
					७८७४		

दूसरा बोल— अहो भगवन् ! इन देवलोकों में कितने कितने प्रतर हैं ? हे गौतम ! पहले दूसरे देवलोक में तेरह प्रतर हैं । तीसरे चौथे देवलोक में बारह प्रतर हैं । पांचवें देवलोक में छह प्रतर हैं । छठे देवलोक में पांच प्रतर हैं। सातवें देवलोक में चार प्रतर हैं । आठवें देवलोक में चार प्रतर हैं। नववें दसवें देवलोक में चार प्रतर हैं । ग्यारहवें बारहवें देवलोक में चार प्रतर हैं । नव ग्रैवेयक में नौ प्रतर हैं । पांच अनुत्तर विमानों में एक प्रतर है । ये सब मिला कर ६२ प्रतर हैं ।

दूसरा बोल समाप्त ।

तीसरा बोल— अहो भगवन् ! इन देवलोकों के क्या चिन्ह हैं ? हे गौतम ! पहले देवलोक के मृग का चिन्ह है। दूसरे

देवलोक के महिष (भैंसा) का चिन्ह है । तीसरे देवलोक के सूअर का चिन्ह है । चौथे देवलोक के सिंह का चिन्ह है । पांचवें देवलोक के बकरे का चिन्ह है । छठे देवलोक के मेंढक का चिन्ह है । सातवें देवलोक के अश्व (घोड़ा) का चिन्ह है । आठवें देवलोक के गज (हाथी) का चिन्ह है । नववें दसवें देवलोक के सर्प का चिन्ह है । ग्यांरहवें बारहवें देवलोक के वृषभ (बैल) का चिन्ह है ।

अहो भगवन् ! इन देवलोकों में कितने प्रकार की परखदा (परिषद्) है ? हे गौतम ! तीन प्रकार की परिषद् है– आभ्यन्तर-परिषद्, मध्यमपरिषद्, बाह्यपरिषद् ।

अहो भगवन् ! इन तीन प्रकार की परिषद् में कितने कितने देव हैं ? हे गौतम ! पहले देवलोक की आभ्यन्तरपरिषद् में १२००० देव हैं, मध्यमपरिषद् में १४००० देव हैं, बाह्यपरिषद् में १६००० देव हैं । दूसरे देवलोक की आभ्यन्तरपरिषद् में १०००० देव हैं, मध्यमपरिषद् में १२००० देव हैं, बाह्यपरिषद् में १४००० देव हैं । तीसरे देवलोक की आभ्यन्तरपरिषद् में ८००० देव हैं, मध्यम-परिषद् में १०००० देव हैं, बाह्यपरिषद् में १२००० देव हैं । चौथे देवलोक की आभ्यन्तरपरिषद् में ६००० देव हैं, मध्यमपरिषद् में ८००० देव हैं, बाह्यपरिषद् में १०००० देव हैं । पांचवें देवलोक की आभ्यन्तरपरिषद् में ४०००, मध्यमपरिषद् में ६०००, बाह्यपरिषद् में ८००० देव हैं । छठे देवलोक की आभ्यन्तरपरिषद् में २०००, मध्यमपरिषद् में ४०००, बाह्यपरिषद् में ६००० देव हैं । सातवें देवलोक की आभ्यन्तरपरिषद् में १०००, मध्यमपरिषद् में २०००,

बाह्यपरिषद् में ४००० देव हैं । आठवें देवलोक की आभ्यन्तरपरिषद् में ५००, मध्यमपरिषद् में १०००, बाह्यपरिषद् में २००० देव हैं । नववें दसवें देवलोक की आभ्यन्तरपरिषद् में २५०, मध्यमपरिषद् में ५००, बाह्यपरिषद् में १००० देव हैं ? ग्यारहवें बारहवें देवलोक की आभ्यन्तरपरिषद् में १२५, मध्यमपरिषद् में २५०, बाह्यपरिषद् में ५०० देव हैं ।

पहले देवलोक में सामानिक देव ८४०००, दूसरे में ८००००, तीसरे में ७२०००, चौथे में ७००००, पांचवें में ६००००, छठे में ५००००, सातवें में ४००००, आठवें में ३००००, नववें दसवें में २००००, ग्यारहवें बारहवें में १०००० सामानिक देव हैं । जिस देवलोक में जितने सामानिक देव हैं, उनसे चौगुणा आत्मरक्षक देव हैं ।

अहो भगवन् ! इन तीन परिषद् के देव किस तरह से आते हैं ? हे गौतम ! आभ्यन्तरपरिषद् के देव बुलाने से आते हैं और भेजने से जाते हैं । मध्यमपरिषद् के देव बुलाने से आते हैं और बिना भेजे हुए वापिस जाते हैं । बाह्यपरिषद् के देव बिना बुलाये आते हैं और बिना भेजे हुए जाते हैं ।

अहो भगवन् ! इन तीन परिषद् का क्या काम है ? हे गौतम ! आभ्यन्तरपरिषद् के साथ इन्द्र सलाह (विचार-विमर्श) करते हैं। मध्यमपरिषद् को अपना निश्चय सुनाते हैं और बाह्यपरिषद् को आज्ञा देते हैं । सब इन्द्रों के ये तीन तीन परिषद् हैं ।

अहो भगवन् ! प्रत्येक के कितनी कितनी अग्रमहिषियां हैं ? हे गौतम ! पहले दूसरे देवलोक के इन्द्र के आठ आठ अग्रमहिषियां

हैं (इन्द्राणियां) हैं । एक एक अग्रमहिषी के सोलह सोलह हजार
देवियों का परिवार है । भोग भोगने के लिए एक एक अग्रमहिषी
सोलह सोलह हजार रूप वैक्रिय करती हैं । पहले देवलोक में छह
लाख अपरिगृहीता देवियों के विमान है। दूसरे देवलोक में चार
लाख अपरिगृहीता देवियों के विमान हैं । चार अनुत्तर विमान
त्रिकोण हैं । सर्वार्थसिद्ध विमान गोल है । सब इन्द्रों के सात
सात अनीकाएं हैं । तेतीस तेतीस त्रायस्त्रिशक देव हैं । ये माता-पिता
एवं देव-गुरु तुल्य पूजनीय होते हैं । सब देवलोकों के ८४९७०२३
विमान हैं ।

अहो भगवन् ! पहले दूसरे दूवलोक में कितने प्रतर हैं
और उनकी कितनी स्थिति है ? हे गौतम ! पहले दूसरे देवलोक
में १३ प्रतर हैं । पहले प्रतर में एक सागर के तेरहवें दो भाग
(२/१३) स्थिति है । दूसरे में तेरहवें चार भाग (४/१३) स्थिति है।
तीसरे में तेरहवें छह भाग (६/१३) स्थिति है । चौथे में तेरहवें आठ
भाग (८/१३) स्थिति है । पांचवें में तेरहवें दस भाग (१०/१३) स्थिति है ।
छठे में तेरहवें बारह भाग (१२/१३) स्थिति है । सातवें में एक सागर
और तेरहवां एक भाग (१/१३) स्थिति है । आठवें में एक सागर
और तेरहवें तीन भाग (३/१३) स्थिति है । नववें में एक सागर और
तेरहवें में पांच भाग (५/१३) स्थिति है । दसवें में एक सागर और
तेरहवें सात भाग (७/१३) स्थिति है । ग्यारहवें में एक सागर और
तेरहवें नौ भाग (९/१३) स्थिति है । बारहवें में एक सागर और तेरहवें
ग्यारह भाग (११/१३) स्थिति है । तेरहवें में दो सागर का स्थिति है ।

तीसरे चौथे देवलोक में १२ प्रतर हैं । पहले प्रतर में दो

सागर और बारहवें पांच भाग ($\frac{५}{१२}$) स्थिति है । दूसरे प्रतर में दो सागर और बारहवें दस भाग ($\frac{१०}{१२}$) स्थिति है । तीसरे प्रतर में तीन सागर और बारहवें तीन भाग ($\frac{३}{१२}$) स्थिति है । चौथे प्रतर में तीन सागर और बारहवें आठ भाग ($\frac{८}{१२}$) स्थिति है । पांचवें प्रतर में चार सागर और बारहवें एक भाग ($\frac{१}{१२}$) स्थिति है । छठे प्रतर में चार सागर और बारहवें छह भाग ($\frac{६}{१२}$) स्थिति है । सातवें प्रतर में चार सागर और बारहवें ग्यारह भाग ($\frac{११}{१२}$) स्थिति है । आठवें प्रतर में पांच सागर और बारहवें चार भाग ($\frac{४}{१२}$) स्थिति है । नववें प्रतर में पांच सागर और बारहवें नौ भाग ($\frac{९}{१२}$) स्थिति है । दसवें प्रतर में छह सागर और बारहवें दो भाग ($\frac{२}{१२}$) स्थिति है । ग्यारहवें प्रतर में छह सागर और बारहवें सात भाग ($\frac{७}{१२}$) स्थिति है । बारहवें प्रतर में सात सागर की स्थिति है ।

पांचवें देवलोक में छह प्रतर हैं । पहले प्रतर में साढ़े सात सागर की स्थिति है । दूसरे प्रतर में आठ सागर की स्थिति है । तीसरे प्रतर में साढ़े आठ सागर की स्थिति है । चौथे प्रतर में नौ सागर की स्थिति है । पांचवें प्रतर में साढे नौ सागर की स्थिति है । छठे प्रतर में दस सागर की स्थिति है ।

छठे देवलोक में पांच प्रतर हैं । पहले प्रतर में दस सागर और पांचवें चार भाग ($\frac{४}{५}$) स्थिति है । दूसरे प्रतर में ग्यारह सागर और पांचवें तीन भाग ($\frac{३}{५}$) स्थिति है । तीसरे प्रतर में बारह सागर और पांचवें दो भाग ($\frac{२}{५}$) स्थिति है । चौथे प्रतर में तेरह सागर और पांचवें एक भाग ($\frac{१}{५}$) स्थिति है । पांचवें प्रतर

में चौदह सागर की स्थिति है ।

सातवें देवलोक में चार प्रतर हैं । पहले प्रतर में चौदह सागर और चौथे तीन भाग ($\frac{3}{4}$) स्थिति है । दूसरे प्रतर में पन्द्रह सागर और चौथे दो भाग ($\frac{2}{4}$) स्थिति है । तीसरे प्रतर में सोलह सागर और चौथा एक भाग ($\frac{1}{4}$) स्थिति है । चौथे प्रतर में सतरह सागर की स्थिति है ।

आठवें देवलोक में चार प्रतर हैं– पहले प्रतर में सवा सतरह सागर की स्थिति है । दूसरे प्रतर में साढ़े सतरह सागर की स्थिति है । तीसरे प्रतर में पौने अठारह सागर की स्थिति है । चौथे प्रतर में अठारह सागर की स्थिति है ।

नवमें दसवें देवलोक में चार प्रतर हैं– पहले प्रतर में साढे अठारह सागर की स्थिति है । दूसरे प्रतर में उन्नीस सागर की स्थिति है । तीसरे प्रतर में साढे उन्नीस सागर की स्थिति है । चौथे प्रतर में बीस सागर की स्थिति है ।

ग्यारहवें बारहवें देवलोक में चार प्रतर हैं । पहले प्रतर में २०।। साढ़े बीस सागर की स्थिति है । दूसरे प्रतर में २१ सागर की स्थिति है । तीसरे प्रतर में २१।। साढ़े इक्कीस सागर की स्थिति है । चौथे प्रतर में बाईस सागर की स्थिति है । नवग्रैवेयक में नौ प्रतर हैं– पहले प्रतर में २३ सागर, दूसरे प्रतर में २४ सागर, तीसरे प्रतर में २५ सागर, चौथे प्रतर २६ सागर, पांचवें प्रतर में २७ सागर, छठे प्रतर में २८ सागर, सातवें प्रतर में २९ सागर, आठवें प्रतर में ३० सागर, नववें प्रतर में ३१ सागर की स्थिति है । पांच अनुत्तर विमानों में एक प्रतर है। उसमें

जघन्य ३१ सागर की और उत्कृष्ट ३३ सागर की स्थिति है ।

अहो भगवन् ! वे विमान कितने लम्बे-चौड़े हैं ? हे गौतम ! कितनेक विमान तो संख्यात योजन के हैं और कितनेक असंख्यात योजन के हैं ।

अहो भगवन् ! कितने विमान संख्यात योजन के हैं और कितने विमान असंख्यात योजन के हैं ? हे गौतम ! सब विमानों के पांच भाग कर लेने चाहिए । उनमें से चार भाग तो असंख्यात योजन के हैं और एक भाग संख्यात योजन के हैं ।

तीसरा बोल समाप्त ।

चौथा बोल पहले दूसरे देवलोक में २७०० योजन का आंगन (आंगन की मोटाई) है । महल ५०० योजन के ऊंचे हैं । तीसरे चौथे देवलोक में २६०० योजन आंगन है । महल ६०० योजन के ऊंचे हैं । पांचवें छठे देवलोक में २५०० योजन का आंगन है । महल ७०० योजन के ऊंचे हैं । सातवें आठवें देवलोक में २४०० योजन का आंगन है । महल ८०० योजन के ऊंचे हैं । नववें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक में २३०० योजन का आंगन है । महल ९०० योजन के ऊंचे हैं । नव ग्रैवेयक में २२०० योजन का आंगन हैं। महल १००० योजन के ऊंचे हैं । पांच अनुत्तर विमानों में २१०० योजन का आंगन है। महल ११०० योजन के ऊंचे हैं ।

चौथा बोल समाप्त ।

पांचवां बोल--अहो भगवन् ! इन्द्रादि देवों के भोग में कौन सी देवियां काम आती हैं ? हे गौतम ! जो अपरिगृहीता

देवियां पहले देवलोक में रहती हैं, उनमें से एक पल की स्थिति से लेकर सात पल तक की स्थिति वाली देवियां पहले देवलोक के काम में आती हैं । सात पल से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर दस पल तक की स्थिति वाली देवियां तीसरे देवलोक के काम में आती हैं । दस पल से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर बीस पल तक की स्थिति वाली देवियां पांचवें देवलोक के काम में आती हैं । बीस पल (पल्योपम) से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर तीस पल की स्थिति वाली देवियां सातवें देवलोक के काम आती हैं । तीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर चालीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां नवमें देवलोक के काम आती हैं । चालीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पचास पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां ग्यारहवें देवलोक के काम में आती हैं ।

जो अपरिगृहीता देवियां दूसरे देवलोक में रहती हैं, उनमें से एक पल्योपम झाझेरी की स्थिति से लेकर नव पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां दूसरे देवलोक के काम में आती हैं । नव पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पन्द्रह पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां चौथे देवलोक के काम में आती हैं । पन्द्रह पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पच्चीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां छठे देवलोक के काम में आती हैं । पच्चीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पैंतीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां आठवें देवलोक के काम में आती हैं । पैंतीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से

लेकर पैंतालीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां दसवें देवलोक के काम में आती हैं । पैंतालीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पचपन पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां बारहवें देवलोक के काम में आती हैं ।

अहो भगवन् ! देवलोकों में किस प्रकार की परिचारणा (विषयसेवन) होती है । हे गौतम ! पहले दूसरे देवलोक में मनुष्य की तरह शरीर (काया) की परिचारणा है । तीसरे चौथे देवलोक में स्पर्श की परिचारणा है । पांचवें छठे देवलोक में रूप की परिचारणा है । सातवें आठवें देवलोक में शब्द की परिचारणा है । नववें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक में मन की परिचारणा है । इससे आगे के देवलोक में परिचारणा नहीं है ।

अहो भगवन् ! विमानों का वर्ण कैसा है ? हे गौतम ! पहले दूसरे देवलोक में पांच वर्ण के विमान हैं । तीसरे चौथे देवलोक में चार वर्ण के विमान हैं । पांचवें छठे देवलोक में तीन वर्ण के विमान हैं । सातवें आठवें देवलोक में दो वर्ण के विमान हैं । नववें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक में तथा नव ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमानों में एक सफेद वर्ण के विमान हैं ।

अहो भगवन् ! देवलोकों में कितने बोल मनोज्ञ होते हैं ? हे गौतम ! सब देवलोकों में (बारह देवलोक, नव ग्रैवेयक, पांच अनुत्तर विमान) दस बोल मनोज्ञ होते हैं–१. मनोज्ञ शब्द, २. मनोज्ञ रूप, ३. मनोज्ञ गन्ध, ४. मनोज्ञ रस, ५. मनोज्ञ स्पर्श, ६. मनोज्ञ कान्ति, ७. मनोज्ञ लावण्य (चतुराई) ८. मनोज्ञ गति, ९. मनोज्ञ ज्योति, १० मनोज्ञ आयुष्य ।

पांचवां बोल समाप्त ।

छठा बोल– अहो भगवन् ! नारकी और ज्योतिषी देवों का अवधिज्ञान कितना होता है ? हे गौतम नारकी और जयोतिषी देवता अवधिज्ञान से ऊपर और नीचा थोड़ा जानते देखते हैं, तिर्च्छा ज्यादा जानते देखते हैं । भवनपति और वाणव्यन्तर देव ऊंचा अधिक जानते देखते हैं, नीचा और तिर्च्छा थोड़ा जानते देखते हैं । वैमानिक देव नीचा अधिक जानते देखते हैं, ऊंचा और तिर्च्छा थोड़ा जानते देखते हैं ।

अहो भगवन् ! नारकी और देवों के अवधिज्ञान का आकार कैसा है ? हे गौतम ! नारकी जीवों का अवधिज्ञान तिपाई के आकार है । भवनपति देवों का अवधिज्ञान पल्य (छबडा) के आकार है । वाणव्यन्तर देवों का अवधिज्ञान ढोल के आकार है । ज्योतिषी देवों का अवधिज्ञान झालर के आकार है । बारह देवलोकों के देवों का अवधिज्ञान मृदंग के आकार है । नव ग्रैवेयक के देवों का अवधिज्ञान फूलों की चंगेरी (टोकरी) के आकार है । अनुत्तरविमान के देवों का अवधिज्ञान कन्चुक के आकार है । मनुष्य और तिर्यंचों के अवधिज्ञान का आकार विविध प्रकार का है ।

छठा बोल समाप्त ।

अहो भगवन् ! देवलोकों का आकार कैसा है ? हे गौतम पहले दूसरे तीसरे चौथे देवलोक का आकार अर्द्धचन्द्रमा के समान है । पांचवें छठे सातवें आठवें देवलोक का आकार पूर्ण चन्द्रमा के समान है । नववें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें देवलोक का आकार अर्द्धचन्द्रमा के आकार है । नव ग्रैवेयक का आकार बेड़ा (एक घड़े के ऊपर दूसरा घड़ा) के समान है । चार अनुत्तर विमानों

का आकार सिंघाड़े के समान है । सर्वार्थसिद्ध विमान का आकार पूर्ण चन्द्रमा के समान है । सर्वार्थसिद्ध विमान से बारह योजन ऊपर सिद्धशिला है । उसका आकार उल्टे छत्र के समान है । वह पैंतालीस लाख योजन की लम्बी-चौड़ी है । उसकी परिधि एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ ऊणपचास योजन झाझेरी है । वह मध्यभाग में आठ योजन मोटी है और अन्त में मक्खी के पंख से भी पहली है ।

अहो भगवन् ! सिद्धशिला का वर्ण कैसा है ? हे गौतम ! सिद्धशिला का वर्ण सफेद है । जैसे गोक्षीर (गाय का दूध) का फेन, पानी का कण, मुचकुन्द का फूल, चांदी का पात और शंख सफेद और निर्मल होता है, उससे भी अनन्तगुण सफेद एव निर्मल है । उस सिद्धशिला के ऊपर अग्रभाग में अर्थात् एक कोस के छठे भाग में, लोक के मस्तक पर सिद्ध भगवान् विराजमान हैं।

अहो भगवन् ! सिद्ध भगवान् की अवगाहना कितनी है ? सिद्ध भगवान् की जघन्य अवगाहना एक हाथ और आठ अंगुल की है। मध्यम अवगाहना चार हाथ और सोलह अंगुल की है । उत्कृष्ट अवगाहना ३३३ धनुष और बत्तीस अंगुल की है ।

अहो भगवन् ! सिद्ध भगवान् कितने गुणों से विराजमान हैं ? हे गौतम ! इकतीस गुणों से विराजमान हैं । उन्होंने पांच प्रकार के ज्ञानावरणीयकर्म का क्षय किया है । नव प्रकार के दर्शनावरणीयकर्म का क्षय किया है । दो प्रकार के वेदनीयकर्म का, दो प्रकार के मोहनीयकर्म का, चार प्रकार के आयुकर्म का, दो प्रकार के नामकर्म का, दो प्रकार के गोत्रकर्म का और पांच प्रकार

के अन्तरायकर्म का क्षय किया है । इस प्रकार आठ कर्मों का सर्वथा क्षय करने से उनमें इकतीस गुण प्रकट हुए हैं । वे जन्म-जरा-मरण-भय-रोग-शोक रहित हैं । ऐसे गुणों से युक्त सिद्ध भगवान् लोक के अग्रभाग पर विराजमान हैं । ऐसे सिद्ध भगवान की मैं बारम्बार वन्दना नमस्कार करता हूं ।

भवनद्वार का थोकड़ा सम्पूर्ण ।

२४ सभाद्वार का थोकड़ा

बहुत से शास्त्रों में सभाद्वार का वर्णन पृथक्-पृथक् प्रकीर्ण रूप से मिलता है, जिसका यहां संग्रह किया है–

सभाद्वार के २९ द्वार हैं– वे ये हैं– १. नामद्वार, २. चिन्हद्वार, ३. गिनतीद्वार (गणनाद्वार), ४. योजनद्वार, ५. भागद्वार, ६. सामानिकद्वार, ७. आत्मरक्षकद्वार, ८. त्रायस्त्रिंशकद्वार, ९. लोकपालद्वार, १०. अग्रमहिषीद्वार, ११. आभ्यन्तरपरिषद्द्वार, १२. मध्यमपरिषद्द्वार, १३. बाह्यपरिषद्द्वार, १४. अनीकाद्वार,१५. ज्ञानद्वार, १६. दृष्टान्तद्वार, (सेठ के पुत्र का दृष्टान्त द्वार), १७. उपमाद्वार (देवलोकों के सुखों से उपमाद्वार), १८ मुनि के सुखों का उपमाद्वार, १९. परिचारणद्वार, २०. भोगस्थितिद्वार, २१. आंगनद्वार, २२. पुत्र-पुत्रीद्वार, २३. उपजनद्वार, २४. श्वासोच्छ्वासद्वार, २५. आहारद्वार, २६. अवगाहनाद्वार, २७. स्थितिद्वार, २९. प्रतरद्वार, ३०. पूंजीद्वार ।

१ नामद्वार– अहो भगवन् ! देव कितने प्रकार के हैं ?

हे गौतम ! चार प्रकार के हैं– भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक ।

अहो भगवन् ! भवनपति देव कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! दस प्रकार के हैं– असुरकुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, पवनकुमार, स्तनितकुमार ।

अहो भगवन् ! भवनपति देवों के कितने इन्द्र हैं ? हे गौतम ! बीस इन्द्र हैं– १ चमरेन्द्रजी, २ बलीन्द्रजी, ३ धरणेन्द्रजी, ४ भूतेन्द्रजी, ५ वेणुदेव, ६ वेणुदाली, ७ हरिकान्त, ८ हरिशिख, ९ अग्निशिख, १० अग्निमाणव, ११ पूर्णेन्द्र, १२ विशिष्टेन्द्र, १३ जलकान्त, १४ जलप्रभ, १५ अमितगति, १६ अमितवाहन, १७ वेलम्ब, १८ प्रभंजन, १९ घोष, २० महाघोष * ।

अहो भगवन ! वाणव्यन्तर देवों के कितने इन्द्र हैं ? हे गौतम ! बत्तीस इन्द्र हैं– १. काल, २. महाकाल, ३. सुरूप, ४. प्रतिरूप, ५. पूर्णभद्र, ६. मणिभद्र, ७. भीम, ८ महाभीम, ९. किन्नर, १०. किम्पुरुष, ११. सत्पुरुष, १२ महापुरुष, १३. अतिकाय, १४. महाकाय, १५. गीतरति, १६. गीतयश, १७. सन्निहित, १८. सामान्य, १९. धाता, २०. विधाता, २१. ऋषि, २२. ऋषिपाल, २३. ईश्वर, २४. महेश्वर, २५. सुवत्स, २६. विशाल, २७. हास्य, २८. हास्यरति, २९. श्वेत, ३०. महाश्वेत, ३१. पतंग, ३२. पतंगपति ।

अहो भगवन् ! ज्योतिषी देवों के कितने इन्द्र है ? हे

** इनमें से विषम संख्या वाले (पहला, तीसरा, पांचवां आदि) दक्षिणदिशा के इन्द्र हैं और समसंख्या वाले (दूसरा, चौथा, छठा आदि) उत्तरदिशा के इन्द्र हैं।*

गौतम ! दो इन्द्र हैं– चन्द्र और सूर्य ।

अहो भगवन् ! वैमानिक देवों के कितने इन्द्र हैं ? हे गौतम ! दस इन्द्र हैं– १. सौधर्मेन्द्र, (शक्रेन्द्र), २. ईशानेन्द्र, ३. सनत्कुमारेन्द्र, ४. माहेन्द्र, ५. ब्रह्मलोकेन्द्र, ६. लान्तकेन्द्र, ७. शुक्रेन्द्र, ८. सहस्रारेन्द्र, ९. प्राणतेन्द्र, १०. अच्युतेन्द्र ।

२. चिन्हद्वार– अहो भगवन् ! दस भवनपति देवों के क्या चिन्ह हैं ? हे गौतम ! असुरकुमारों के चूड़ामणि (राखड़ी) का चिन्ह है । २. नागकुमार देवों के नाग (सर्प) का चिन्ह है । ३. सुवर्णकुमार देवों के गरुड़ का चिन्ह है । ४. विद्युत्कुमार देवों के वज्र का चिन्ह है । ५. अग्निकुमार देवों के कलश का चिन्ह है । ६. द्वीपकुमार देवों के सिंह का चिन्ह है । ७. उदधिकुमार देवों के अश्व (घोड़ा) का चिन्ह है । ८. दिशाकुमार देवों के गज (हाथी) का चिन्ह है । ९. पवनकुमार देवों के मगरमच्छ का चिन्ह है । १०. स्तनितकुमार देवों के वर्द्धमान (स्वस्तिक) का चिन्ह है ।

अहो भगवन् ! वाणव्यन्तर देवों के क्या चिन्ह हैं ? हे गौतम ! वाणव्यन्तर देवों के इस प्रकार चिन्ह हैं– १. पिशाच जाति के देवों के कदम्बवृक्ष का चिन्ह है । २ भूत जाति के देवों के सुलसवृक्ष अथवा श्यालि का चिन्ह है । ३. यक्ष जाति के देवों के वटवृक्ष का चिन्ह है । राक्षस जाति के देवों के स्कन्दकवृक्ष तथा पांदलीवृक्ष का चिन्ह होता है । ५. किन्नर जाति के देवों के अशोकवृक्ष का चिन्ह है । ६. किम्पुरुष जाति के देवों के चम्पकवृक्ष का चिन्ह है । ७. महोरग जाति के देवों के नागवृक्ष

का चिन्ह है । ८. गन्धर्व जाति के देवों के टिम्बरुवृक्ष का चिन्ह है । इसी प्रकार आणपन्ने, पाणपन्ने आदि आठ जाति के देवों के अनुक्रम से ये ही चिन्ह होते हैं ।

अहो भगवन् ! ज्योतिषी देवों के क्या चिन्ह हैं ? हे गौतम ! चन्द्रमा के मृग का चिन्ह है । सूर्य के सप्त मुख घोड़े का चिन्ह है । मंगल के तारा के गेंडे का चिन्ह है । बुध के तारा के सिंह का चिन्ह है । बृहस्पति के तारा के गज (हाथी) का चिन्ह है । शुक्र के तारा के अश्व (घोड़ा) का चिन्ह है । शनैश्चर के तारा के महिष (भैंसा) का चिन्ह है ।

अहो भगवन् ! वैमानिक देवों के क्या चिन्ह है ? हे गौतम ! पहले देवलोक के देवों के मृग का चिन्ह है । दूसरे देवलोक के देवों के महिष (भैंसा) का चिन्ह है । तीसरे देवलोक के देवों के शूकर (सूअर) का चिन्ह है । चौथे देवलोक के देवों के सिंह का चिन्ह है । पांचवें देवलोक के देवों के अज (बकरा) का चिन्ह है । छठे देवलोक के देवों के मेंढक का चिन्ह है । सातवें देवलोक के देवों के अश्व (घोड़ा) का चिन्ह है । आठवें देवलोक के देवों के गज (हाथी) का चिन्ह है । नववें दसवें देवलोक के देवों के सर्प का चिन्ह है । ग्यारहवें बारहवें देवलोक के देवों के वृषभ (बैल) का चिन्ह है ।

३. गणनाद्वार– अहो भगवन् ! भवनपति देवों के कितने भवन हैं ? हे गौतम ! ७ करोड़ ७२ लाख भवन हैं । ४ करोड़ ६ लाख भवन दक्षिणदिशा में हैं और ३ करोड़ ६६ लाख भवन उत्तरदिशा में हैं ।

अब प्रत्येक भवनपति देवों के भवनों की संख्या बतलाई जाती है– दक्षिणदिशा में असुरकुमारों के ३४ लाख भवन हैं । नागकुमारों के ४४ लाख भवन हैं । सुवर्णकुमारों के ३८ लाख भवन हैं । विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार और स्तनितकुमार इन छह के चालीस, चालीस लाख भवन हैं। पवनकुमार के ५० लाख भवन हैं । ये सब मिला कर दक्षिणदिशा में चार करोड़ छह लाख भवन हुए । उत्तरदिशा में असुरकुमारों के ३० लाख भवन हैं । नागकुमारों के ४० लाख भवन हैं । सुवर्णकुमारों के ३४ लाख भवन हैं । विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार और स्तनितकुमार इन छह के छत्तीस छत्तीस लाख भवन हैं । पवनकुमारों के ४६ लाख भवन हैं । ये सब मिला कर उत्तरदिशा में तीन करोड़ छासठ लाख भवन हैं । कुल मिला कर ७ करोड़ ७२ लाख भवन हैं । अहो भगवन् ! वाणव्यन्तर देवों के कितने नगर हैं ? हे गौतम ! असंख्यात नगर हैं ।

अहो भगवन् ! ज्योतिषी देवों के कितने विमान हैं ? हे गौतम ! असंख्यात विमान हैं ।

अहो भगवन् ! वैमानिक देवों के कितने विमान हैं ? हे गौतम ! ८४९७०२३ विमान हैं । पहले देवलोक में ३२ लाख विमान हैं । दूसरे देवलोक में २८ लाख विमान हैं । तीसरे देवलोक में १२ लाख विमान हैं । चौथे देवलोक में ८ लाख विमान हैं । पांचवें देवलोक में चार लाख विमान हैं । छठे देवलोक में पचास हजार विमान हैं । सातवें देवलोक में चालीस हजार विमान

हैं । आठवें देवलोक में छह हजार विमान हैं । नववें दसवें देवलोक में चार सौ विमान हैं । ग्यारहवें बारहवें देवलोक में तीन सौ विमान हैं । नवग्रैवेयक में तीन त्रिक हैं– पहली त्रिक में १११ विमान हैं । दूसरी त्रिक में १०७ विमान हैं । तीसरी त्रिक में १०० विमान हैं । पांच अनुत्तर विमानों में पांच विमान हैं । ये कुल मिला कर ८४९७०२३ विमान हैं ।

४. योजनद्वार– अहो भगवन् ! भवनपति देवों के भवन कितनेक लम्बे चौड़े होते हैं ? हे गौतम ! कितनेक संख्यात योजन के हैं और कितनेक असंख्यात योजन के हैं । जघन्य तो जम्बूद्वीप प्रमाण हैं, मध्यम अढ़ाई द्वीप प्रमाण हैं और उत्कृष्ट संख्यात असंख्यात योजन के हैं । कल्पना कीजिये जैसे कोई चपल एवं शीघ्र गति वाला देव ८५०७४० योजन का एक डग भरे–एक कदम रखे, ऐसी तेज गति से वह छह मास तक चले तो संख्याता योजन के भवनों का पार आ सकता है किन्तु असंख्यात योजन वाले भवनों का पार नहीं आ सकता है ।

अहो भगवन् ! वाणव्यन्तर देवों के नगर कितने लम्बे-चौड़े हैं ? हे गौतम ! जघन्य तो भरतक्षेत्र प्रमाण हैं, मध्यम महाविदेह प्रमाण हैं और उत्कृष्ट जम्बूद्वीप प्रमाण हैं ।

अहो भगवन् ! ज्योतिषी देवों के विमान कितने लम्बे-चौड़े हैं ? हे गौतम ! चन्द्रमा का विमान योजन के इकसठवें छप्पन भाग ($\frac{५६}{६१}$) प्रमाण लम्बा-चौड़ा है और अट्ठाईस भाग ($\frac{२८}{६१}$) प्रमाण मोटा (जाडा) है ।

सूर्य का विमान एक योजन के इकसठवें अड़तालीस भाग

($\frac{४८}{६१}$) प्रमाण लम्बा-चौड़ा है और चौबीस भाग ($\frac{२४}{६१}$) प्रमाण मोटा है ।

ग्रह का विमान दो गाऊ का लम्बा-चौड़ा है और एक गाऊ का मोटा है ।

नक्षत्र का विमान एक गाऊ का लम्बा-चौड़ा है और आधे गाऊ का मोटा है ।

तारा का विमान आधे गाऊ का लम्बा-चौड़ा है और पाव गाऊ का मोटा है ।

अहो भगवन् ! वैमानिक देवों के विमान कितने लम्बे-चौड़े हैं ? हे गौतम ! वैमानिक देवों के विमानों की लम्बाई-चौड़ाई भवनपतियों के भवनों के समान कह देनी चाहिए ।

५. भागद्वार– अहो भगवन् ! भवनपतियों के भवन और वैमानिक देवों के विमानों में संख्यात योजन के कितने हैं और असंख्यात योजन के कितने हैं ? हे गौतम ! सब भवनों के और विमानों के पांच पांच विभाग किये जांय तो उनमें से एक एक विभाग के भवन और विमान संख्यात योजन के हैं और शेष चार चार विभाग के भवन और विमान असंख्यात योजन के हैं ।

६. सामानिकद्वार– अहो भगवन् ! भवनपति इन्द्रों के कितने सामानिक हैं ? हे गौतम ! भवनपतियों के बीस इन्द्र हैं । उनमें से चमरेन्द्रजी के ६४ हजार सामानिक देव हैं । बलीन्द्रजी के ६० हजार देव हैं । बाकी १८ इन्द्रों के छह छह हजार सामानिक देव हैं ।

अहो भगवन् ! वाणव्यन्तरो इन्द्रों के कितने सामानिक देव हैं ?

के इन्द्र ईशानेन्द्र जी के आठ आठ अग्रमहिषियां हैं । एक एक अग्रमहिषी के सोलह सोलह हजार देवियों का परिवार है । एक एक देवी सोलह सोलह हजार वैक्रिय रूप बना सकती है । शेष ऊपर के इन्द्रों के अग्रमहिषियां और देवियां नहीं होती हैं ।

११. आभ्यन्तरपरिषद्द्वार– १२ मध्यमपरिषद्द्वार, १३ बाह्यपरिषद्द्वार- अहो भगवन् ! परिषद् (परखदा) कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! तीन प्रकार की है– आभ्यन्तरपरिषद्, मध्यमपरिषद् और बाह्यपरिषद् । आभ्यन्तरपरिषद् में खास सलाह विचार किया जाता । इसके देव आदर से बुलाने पर आते हैं और भेजने पर वापिस जाते हैं । मध्यम (बीच की) परिषद् में सामान्य सलाह विचार किया जाता है । ये देव बुलाने पर आते हैं । किन्तु बिना भेजे ही वापिस चले जाते हैं। बाह्य (बाहर की) परिषद् के देवों को हुक्म (आज्ञा) दिया जाता है कि अमुक कार्य करो । ये देव बिना बुलाये ही आते हैं और बिना भेजे जाते हैं अर्थात् इनको हाजिर होना ही पड़ता है ।

चमरेन्द्रजी के आभ्यन्तर (अन्दर की) परिषद् में २४ हजार देव हैं । मध्यमपरिषद् में २८ हजार देव हैं । बाह्यपरिषद् में ३२ हजार देव हैं । बलीन्द्रजी के आभ्यन्तरपरिषद् में २० हजार देव हैं, मध्यमपरिषद् में २४ हजार देव हैं और बाह्यपरिषद् में २८ हजार देव हैं ।

दक्षिण दिशा के नौ इन्द्रों के आभ्यन्तरपरिषद् के साठ साठ हजार देव हैं, मध्यमपरिषद् में ७०-७० हजार देव हैं और बाह्यपरिषद् में ८०-८० हजार देव हैं ।

उत्तर दिशा के नौ इन्द्रों के आभ्यन्तरपरिषद् में पचास पचास हजार देव हैं । मध्यमपरिषद् में साठ साठ हजार देव हैं और बाह्यपरिषद् में ७०-७० हजार देव हैं ।

वाणव्यन्तर और ज्योतिषी इन्द्रों के प्रत्येक के आभ्यन्तर-परिषद् में आठ आठ हजार देव हैं, मध्यमपरिषद् में दस दस हजार देव हैं और बाह्यपरिषद् में बारह बारह हजार देव हैं ।

शक्रेन्द्रजी की आभ्यन्तरपरिषद् में १२००० देव हैं, मध्यमपरिषद् में १४००० देव हैं और बाह्यपरिषद् में १६००० देव हैं । ईशानेन्द्रजी की आभ्यन्तरपरिषद् में १०००० देव हैं और मध्यमपरिषद् में १२००० देव हैं, बाह्यपरिषद् में १४००० देव हैं । सनत्कुमारेन्द्र (तीसरे देवलोक के इन्द्र) की आभ्यन्तरपरिषद् में ८००० देव हैं, मध्यमपरिषद् में १०००० देव हैं और बाह्यपरिषद् में १२००० देव हैं । चौथे देवलोक के इन्द्र माहेन्द्र की आभ्यन्तरपरिषद् में ६००० देव हैं, मध्यमपरिषद् में ८००० देव हैं और बाह्यपरिषद् में १०००० देव हैं । पांचवें देवलोक के इन्द्र ब्रह्मलोकेन्द्र की आभ्यन्तरपरिषद् में ४००० देव हैं । मध्यमपरिषद् में ६००० देव हैं और बाह्यपरिषद् में ८००० देव हैं । छठे देवलोक के इन्द्र लान्तकेन्द्र की आभ्यन्तर-परिषद् में २००० देव हैं । मध्यमपरिषद् में ४००० देव हैं और बाह्यपरिषद् में ६००० देव हैं । सातवें देवलोक के इन्द्र शुक्रेन्द्रजी की आभ्यन्तरपरिषद् में १००० देव हैं, मध्यमपरिषद् में २००० देव हैं और बाह्यपरिषद् में ४००० देव हैं । आठवें देवलोक के इन्द्र सहस्रारेन्द्र की आभ्यन्तरपरिषद् में ५०० देव हैं, मध्यमपरिषद् में १००० देव हैं और बाह्यपरिषद् में २००० देव हैं । नववें दसवें

देवलोक के इन्द्र प्राणातेन्द्र की आभ्यन्तरपरिषद् में २५० देव हैं, मध्यमपरिषद् में ५०० देव हैं और बाह्यपरिषद् में १००० देव हैं । ग्यारहवें बारहवें देवलोक के इन्द्र अच्युतेन्द्र की आभ्यन्तरपरिषद् में १२५ देव हैं, मध्यमपरिषद् में २५० देव हैं और बाह्यपरिषद् में ५०० देव हैं । नव ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमानों में परिषद् नहीं हैं । वहां सब अहमिन्द्र हैं ।

१४. अनीकाद्वार– अहो भगवन् ! भवनपति देवों के बीस इन्द्रों के कितने प्रकार की अनीका (सेना) हैं ? हे गौतम ! प्रत्येक इन्द्र के सात सात प्रकार की अनीका (सेना) हैं– १. गजानीक (हाथियों की सेना), २. हयानीक (घोड़ों की सेना), रथानीक (रथों की सेना), ४. पदात्यानीक (पैदल सेना), ५. महिषानीक (भैंसों की सेना), ६. गन्धर्वानीक (गन्धर्व देवों की सेना), ७. नाट्यानीक (नाटक करने वालों की सेना) ।

चमरेन्द्रजी के एक एक अनीका (सेना) में ८१२८००० देवता हैं । बलीन्द्रजी के एक एक अनीका में ७६२०००० देव हैं । शेष १८ इन्द्रों के एक एक अनीका (सेना) में ३५५६००० देव हैं । वाणव्यन्तर और ज्योतिषी * देवों के इन्द्रों के भी सात सात अनीका हैं । प्रत्येक अनीका में ५०८००० देव हैं ।

* वैमानिक देवों के इन्द्रों के भी सात सात अनीका हैं । पहले देवलोक के इन्द्र के प्रत्येक अनीका में एक करोड़ छह लाख अडसठ हजार देव हैं । दूसरे देवलोक के इन्द्र के प्रत्येक अनीका में एक करोड़ एक लाख साठ हजार देव हैं । तीसरे देवलोक के

ज्योतिषी और वैमानिक देवों में महिषानीक नहीं होती हैं किन्तु [illegible] होती है।

इन्द्र के प्रत्येक अनीका में ९१४४००० देव हैं । चौथे देवलोक के इन्द्र के ८८९०००० देव हैं । पांचवें देवलोक के इन्द्र के प्रत्येक अनीका में ७६२०००० देव हैं । छठे देवलोक के इन्द्र के प्रत्येक अनीका में ६३५०००० देव हैं । सातवें देवलोक के इन्द्र के प्रत्येक अनीका में ५०८०००० देव हैं । आठवें देवलोक के इन्द्र के प्रत्येक अनीका में ३८१०००० देव हैं । नववें दसवें देवलोक के इन्द्र के प्रत्येक अनीका में २५४०००० देव हैं । ग्यारहवें बारहवें देवलोक के इन्द्र के प्रत्येक अनीका में १२७०००० देव हैं + ।

नव ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमानों में अनीका नहीं होती हैं । वहां सब अहमिन्द्र हैं ।

१५ ज्ञानद्वार– अहो भगवन् ! भवनपति देवों का अवधिज्ञान कितना होता है ? हे गौतम ! असुरकुमार जाति के देव नीचा देखें तो तीसरी नरक देखते हैं । ऊंचा देखें तो पहला देवलोक देखते हैं । तिर्च्छा देखें तो पल्योपम की स्थिति वाले देव संख्यात द्वीप सागर और सागरोपम की स्थिति वाले देव असंख्यात द्वीप समुद्र देखते हैं । बाकी नागकुमार आदि नवनिकाय के देव नीचा देखें तो पहली नरक, ऊंचा देखें तो पहला देवलोक और तिर्च्छा देखें तो संख्यात द्वीप समुद्र देखते हैं ।

+ जिस इन्द्र के जितने सामानिक देव हैं उनको १२७ से गुणा करने पर जितनी संख्या आवे उतने की प्रत्येक अनीका के देव होते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि भवनपति के १८ इन्द्रों के २८००० को १२७ से गुणा करना चाहिए। गुणा करने से जितनी संख्या आवे उतने की देव प्रत्येक अनीका में होते हैं।

वाणव्यन्तर जाति के देव नीचा देखें तो पहली नरक, ऊंचा देखें तो पंडकवन और तिर्च्छा देखें तो संख्यात द्वीप समुद्र देखते हैं । ज्योतिषी देव नीचा देखें तो पाताल कलश, ऊंचा देखें तो अपनी ध्वजा (पताका) और तिर्च्छा देखें तो संख्यात द्वीप समुद्र देखते हैं ।

वैमानिक देवों में पहले दूसरे देवलोक के देव नीचा देखें तो पहली नरक, ऊंचा देखें तो अपनी ध्वजा (पताका) और तिर्च्छा देखें तो पल्योपम की स्थिति वाले देव संख्यात द्वीप समुद्र और सागरोपम की स्थिति वाले देव असंख्यात द्वीप समुद्र देखते हैं । तीसरे चौथे देवलोक के देव नीचा देखें तो दूसरी नरक, ऊंचा देखें तो अपनी ध्वजा (पताका) और तिर्च्छा देखें तो असंख्यात द्वीप समुद्र देखते हैं । पांचवें छठे देवलोक के देव नीचे देखें तो तीसरी नरक, ऊंचा देखें तो अपनी ध्वजा (पताका) और तिर्च्छा देखें तो असंख्यात द्वीप समुद्र देखते हैं । सातवें आठवें देवलोक के देव नीचा देखें तो चौथी नरक, ऊपर अपनी ध्वजा (पताका) और तिर्च्छा असंख्यात द्वीप समुद्र देखते हैं । नववें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक के देव नीचा देखें तो पांचवीं नरक, ऊपर अपनी ध्वजा (पताका) और तिर्च्छा असंख्याता द्वीप समुद्र देखते हैं । नवग्रैवेयक की तीन त्रिक हैं, उनमें से पहली दूसरी त्रिक के देव नीचा देखें तो छठी नरक, ऊंचा अपनी ध्वजा (पताका) और तिर्च्छा असंख्याता द्वीप समुद्र देखते हैं । तीसरी त्रिक के देव नीचे देखें तो सातवीं नरक, ऊपर अपनी ध्वजा (पताका) और तिर्च्छा असंख्यात द्वीप सागर देखते हैं । पांच अनुत्तर विमान के देव किंचित् ऊणी सम्पूर्ण लोकनाल को देखते हैं ।

१६. दृष्टान्तद्वार (सेठ के पुत्र का दृष्टान्त) और १७. उपमाद्वार (देवलोकों के सुखों से उपमा)– जैसे कल्पना कीजिये कि एक इभ्य * सेठ था । उसके एक इकलौता लड़का था । इसलिए वह बहुत प्रिय था । जब वह यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ तब इभ्य सेठों की बत्तीस कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया गया । वे कन्याएं बहुत ही विनयवान्, गुणवान् और रूपवान् थीं । सेठ का लड़का उन्हें छोड़ कर धन कमाने के लिए परदेश चला गया । वहां उसने मन इच्छित धन कमाया और सोलह वर्ष के बाद वापिस अपने घर लौटा । माता पिता ने उसको अति प्यार किया और प्रेम के साथ भोजन करवाया । उसकी स्त्रियों ने भी स्नानादि करके बढ़िया वस्त्र आभूषणादि पहने । वह सेठ का पुत्र रत्नजडित महल के अन्दर पलंग पर उन स्त्रियों के साथ जो सुख मानता है उससे वाणव्यन्तर देवों का सुख अनन्तगुणा है । नवनिकाय का सुख अनन्त गुणा, उससे असुरकुमार देवता का सुख अनन्तगुणा, उससे ग्रह, नक्षत्र, तारा का सुख अनन्तगुणा, है । उनसे चन्द्रमा सूर्य का सुख अनन्तगुणा है । उससे पहले दूसरे देवलोक के देवों का सुख अनन्तगुणा है । उससे तीसरे चौथे देवलोक के देवों का सुख अनन्तगुणा है । उससे पांचवें छठे देवलोक के देवों का सुख अनन्तगुणा है । उससे सातवें आठवें देवलोक के देवों का सुख अनन्तगुणा है। उससे नववें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक के देवों का सुख अनन्तगुणा है । उससे नव ग्रैवेयक के देवों का सुख अनन्तगुणा है । उससे पांच अनुत्तर विमान के देवों का सुख

** जिसके पास इतना धन हो कि उसका ढेर करने पर अम्बाड़ी सहित हाथी डूब जाय, उसे इभ्य सेठ कहते हैं।*

अनन्तगुणा है ।

१८. मुनि के सुखों की उपमाद्वार– एक महीने की प्रव्रज्या वाला साधु वाणव्यन्तर देवों के सुखों को उल्लंघन कर जाता है अर्थात् एक महीने की प्रव्रज्या वाले मुनि का सुख वाणव्यन्तर देवों से भी बढ़ कर है । दो महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु नागकुमार आदि नवनिकाय के देवों के सुखों को उल्लंघन कर जाता है । तीन महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु असुरकुमार के सुखों को उल्लंघन कर जाता है । चार महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु ग्रह, नक्षत्र, तारा इन ज्योतिषी देवों के सुखों को उल्लंघन कर जाता है । पांच महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु चन्द्रमा सूर्य के सुखों को उल्लंघन कर जाता है । छह महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु पहले दूसरे देवलोक के सुखों को उल्लंघन कर जाता है । सात महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु तीसरे चौथे देवलोक के सुखों को उल्लंघन कर जाता है । आठ महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु पांचवें छठे देवलोक के सुखों को उल्लंघन कर जाता है । नौ महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु सातवें आठवें देवलोक के सुखों को उल्लंघन कर जाता है । दस महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु नववें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक के सुखों को उल्लंघन कर जाता है । ग्यारहवें महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु नवग्रैवेयक के सुखों को उल्लंघन कर जाता है । बारह महीनों की प्रव्रज्या वाला साधु पांच अनुत्तर विमान के सुखों को उल्लंघन कर जाता है ।

१९. परिचारणाद्वार–(विषयसेवनद्वार)– अहो भगवन् ! देवों में किस प्रकार की परिचारणा होती है ? हे गौतम !

भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहले, दूसरे देवलोक के देव शरीर से परिचारणा करते हैं अर्थात् मनुष्यों की तरह काम-भोग भोगते हैं । तीसरे देवलोक से आगे के वैमानिक देव मनुष्यों की तरह काम-भोग नहीं भोगते हैं, वे भिन्न भिन्न प्रकार से विषय-सुख का अनुभव करते हैं । तीसरे और चौथे देवलोक में स्पर्श की परिचारणा अर्थात् उन देवों को देवियों के स्पर्शमात्र से कामतृष्णा की शान्ति हो जाती है और सुख का अनुभव होता है । पांचवें और छठे देवलोक में रूप की परिचारणा अर्थात् उन देवों को देवियों के सुसज्जित रूप को देख कर उन्हें तृप्ति हो जाती है । सातवें आठवें देवलोक में शब्द की परिचारणा अर्थात् देवियों के मधुर शब्द सुनने मात्र से उन देवों की कामवासना शांत हो जाती है और उन्हें विषयसुख के अनुभव का आनन्द मिलता है । नववें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक में मन की परिचारणा अर्थात् उन देवों को देवियों के चिन्तन मात्र से विषयसुख की तृप्ति हो जाती है ।

नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमानों में किसी प्रकार की परिचारणा नहीं होती है ।

देवियों की उत्पत्ति दूसरे देवलोक तक ही होती है । जब ऊपर के देवलोकों के देवों को विषयसुख की इच्छा होती है तो आठवें देवलोक तक देवियां स्वयं उनके पास पहुंच जाती हैं । ऊपर ऊपर के देवलोकों में स्पर्श, रूप, शब्द तथा चिन्तन (मन) मात्र से तृप्ति होने पर भी उत्तरोत्तर सुख अधिक होता है । ऊपर ऊपर के देवलोकों में कामवासना मन्द (अल्प) होती है अर्थात् दूसरे देवलोक की अपेक्षा तीसरे में, तीसरे की अपेक्षा चौथे में, चौथे से

पांचवें में इसी प्रकार उत्तरोत्तर कामवासना मन्द होती जाती है ।

सुख की अल्पबहुत्व– सबसे थोड़ा सुख काया (शरीर) की परिचारणा वाले देवों को होता है । उससे अनन्तगुणा सुख स्पर्श की परिचारणा वाले देवों को होता है । उससे अनन्तगुणा सुख रूप की परिचारणा वाले देवों को होता है । उससे अनन्तगुणा सुख शब्द की परिचारणा वाले देवों को होता है । उससे अनन्तगुणा सुख मन की परिचारणा वाले देवों को होता है । उससे अनन्तगुणा सुख अपरिचारणा वाले देवों को होता है ।

२०. भोगस्थितिद्वार– अहो भगवन् ! इन्द्रादिक देवों के भोग में कौन-सी देवियां काम आती हैं ? हे गौतम ! जो अपरिगृहीता देवियां पहले देवलोक में रहती हैं, उनमें से एक पल्योपम की स्थिति से लेकर सात पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां पहले देवलोक के देवों के काम आती हैं । सात पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर दस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां तीसरे देवलोक के काम आती हैं । दस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर बीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां पांचवें देवलोक के काम में आती हैं । बीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर तीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां सातवें देवलोक के काम आती है । तीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर चालीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां नववें देवलोक के काम में आती हैं । चालीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पचास पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां

ग्यारहवें देवलोक के काम में आती हैं ।

जो अपरिगृहीता देवियां दूसरे देवलोक में रहती हैं, उनमें से एक पल्योपम झाझेरी (कुछ अधिक) की स्थिति से लेकर नव पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां दूसरे देवलोक के काम में आती हैं । नव पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पन्द्रह पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां चौथे देवलोक के काम में आती हैं । पन्द्रह पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पच्चीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां छठे देवलोक के काम में आती हैं । पच्चीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पैंतीस पल्योपम तक स्थिति वाली देवियां आठवें देवलोक के काम में आती हैं । पैंतीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पैंतालीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां दसवें देवलोक के काम में आती हैं । पैंतालीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पचपन पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां बारहवें देवलोक के काम में आती हैं ।

२१. अंगणाई (आंगन की मोटाई) द्वार– अहो भगवन् ! देवलोक की अंगणाई (आंगन की मोटाई) कितनी होती है ? हे गौतम ! पहले दूसरे देवलोक में २७०० योजन की अंगणाई (आंगन की मोटाई) है और महल ५०० योजन के ऊंचे हैं । तीसरे चौथे देवलोक में २६०० योजन की अंगणाई है और महल ६०० योजन के ऊंचे हैं । पांचवें छठे देवलोक में २५०० योजन की अंगणाई है और महल ७०० योजन के ऊंचे हैं । सातवें आठवें देवलोक में २४०० योजन की अंगणाई है और महल ८०० योजन के ऊंचे हैं ।

नववें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक में २३०० योजन की अंगणाई है और महल ९०० योजन के ऊंचे हैं । नवग्रैवेयक में २२०० योजन की अंगणाई है और महल १००० योजन के ऊंचे हैं । पांच अनुत्तर विमानों में २१०० योजन की अंगणाई है और महल ११०० योजन के ऊंचे हैं ।

२२. पुत्र-पुत्रीद्वार– अहो भगवन् ! क्या देवों के पुत्र, पुत्री होते हैं ? हे गौतम ! नहीं होते हैं । अहो भगवन् ! क्या देव विषय सेवन करते हैं ? हां, गौतम ! करते हैं । अहो भगवन् ! क्या उनके वीर्य के पुद्गल खिरते हैं ? हां, गौतम ! खिरते हैं ? अहो भगवन् ! तो फिर पुत्र पुत्री क्यों नहीं होते ? हे गौतम ! वे वीर्य के पुद्गल देवी के पांच इन्द्रियपणे परिणमते हैं ।

२३. उपजनद्वार(उत्पत्तिद्वार)– अहो भगवन् ! देव कैसे उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! देवशय्या में उत्पन्न होते हैं । आठवें देवलोक तक एक समय में एक दो तीन, संख्यात असंख्यात तक जीव उत्पन्न हो सकते हैं । आठवें देवलोक से आगे एक दो तथा उत्कृष्ट संख्यात ही उत्पन्न हो सकते हैं । असंख्यात नहीं, क्योंकि आठवें देवलोक से आगे मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं और मनुष्य संख्यात ही हैं ।

२४. श्वासोच्छ्वासद्वार– अहो भगवन् ! ये चार जाति के देव कितने समय से श्वासोच्छ्वास लेते हैं ? हे गौतम ! असुरकुमार जाति के देव जघन्य सात थोव (स्तोक) से और उत्कृष्ट एक पक्ष झाझेरे से श्वासोच्छ्वास लेते हैं । नागकुमार आदि नव निकाय के देव तथा वाणव्यन्तर जाति के देव जघन्य सात थोव (स्तोक) से

और उत्कृष्ट प्रत्येक मुहूर्त (पृथक्त्वमुहूर्त) * से श्वासोच्छ्वास लेते हैं । ज्योतिषी देव जघन्य उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) मुहूर्त से श्वासोच्छ्वास लेते हैं । पहले देवलोक के देव जघन्य प्रत्येक (पृथक्त्व) मुहूर्त से और उत्कृष्ट दो पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं । दूसरे देवलोक के देव जघन्य प्रत्येक (पृथक्त्व) मुहूर्त झाझेरे से और उत्कृष्ट दो पक्ष झाझेरे से । तीसरे देवलोक के देव जघन्य दो पक्ष से और उत्कृष्ट सात पक्ष से । चौथे देवलोक के देव जघन्य दो पक्ष झाझेरे से और उत्कृष्ट सात पक्ष झाझेरे से । पांचवें देवलोक के देव जघन्य सात पक्ष से और उत्कृष्ट दस पक्ष से । छठे देवलोक के देव जघन्य दस पक्ष से और उत्कृष्ट चौदह पक्ष से । सातवें देवलोक के देव जघन्य चौदह पक्ष से और उत्कृष्ट १७ पक्ष से । आठवें देवलोक के देव जघन्य १७ पक्ष से और उत्कृष्ट १८ पक्ष से । नववें देवलोक के देव जघन्य १८ पक्ष से और उत्कृष्ट १९ पक्ष से । दसवें देवलोक के देव जघन्य १९ पक्ष से और उत्कृष्ट २० पक्ष से । ग्यारहवें देवलोक के देव जघन्य २० पक्ष से और उत्कृष्ट २१ पक्ष से । बारहवें देवलोक के देव जघन्य २१ पक्ष से और उत्कृष्ट २२ पक्ष से । पहले ग्रैवेयक के देव जघन्य २२ पक्ष से और उत्कृष्ट २३ पक्ष से । दूसरे ग्रैवेयक के देव जघन्य २३ पक्ष से और उत्कृष्ट २४ पक्ष से । इसी तरह एक एक पक्ष बढ़ाते हुए नववें ग्रैवेयक के देव जघन्य ३० पक्ष से और उत्कृष्ट ३१ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं । चार अनुत्तर विमान के देव जघन्य ३१ पक्ष से और उत्कृष्ट ३३ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं । सर्वार्थसिद्ध

---

* दो से लेकर नौ तक की संख्या को पृथक्त्व (प्रत्येक) कहते हैं ।

के देव जघन्य उत्कृष्ट ३३ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं +।

२५. आहारद्वार– दस हजार वर्ष की स्थिति वाले देव एक दिन बीच में छोड़ कर आहार करते हैं। पल्योपम की स्थिति वाले देव प्रत्येक दिन (दिन-पृथक्त्व अर्थात् दो दिन से लेकर नौ दिन तक के अन्तर) से आहार करते हैं । सागरोपम की स्थिति वाले देव जितने सागरोपम की स्थिति होती है उतने हजार वर्ष के बाद आहार करते हैं ।

अवगाहनाद्वार– देवों की अवगाहना दो तरह की होती है– भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय । भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक में भवधारणीय अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट सात हाथ की होती है । तीसरे और चौथे देवलोक में छह हाथ, पांचवें और छठे में पांच हाथ, सातवें और आठवें में चार हाथ, नववें दसवें ग्यारहवें बारहवें देवलोक में तीन हाथ की, नवग्रैवेयक में दो हाथ और पांच अनुत्तर विमान में एक हाथ की अवगाहना होती है । उत्तरवैक्रिय अवगाहना सभी देवों में बारहवें देवलोक तक जघन्य अंगुल का संख्यातवां भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन की होती है ।

+ जैसे जैसे देवों की स्थिति बढ़ती जाती है, उसी प्रकार उच्छ्वास का कालमान भी बढ़ता जाता है। जैसे दस हजार वर्ष की स्थिति वाले देवों का एक उच्छ्वास सात स्तोक (थोव) परिमाण होता है। एक पल्योपम की स्थिति वाले देवों का एक उच्छ्वास प्रत्येक मुहूर्त्त का होता है। सागरोपम की स्थिति वाले देवों में जितने सागरोपम की स्थिति होती है उतने ही पक्ष (पखवाड़ा) का उच्छ्वास होता है।

२७. स्थितिद्वार– अहो भगवन् ! इन चार जाति के देवों की क्या स्थिति है ? हे गौतम ! भवनपति देवों के बीस इन्द्र हैं । उनमें से चमरेन्द्रजी की राजधानी चमरचंचा के देवों की स्थिति जघन्य १० हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक सागरोपम की हैं । इनकी देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट साढे तीन पल्योपम की है । बलीन्द्र जी की बलिचंचा राजधानी के देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक सागरोपम झाझेरी है । इनकी देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट ४।। पल्योपम की है। दक्षिणदिशा के नवनिकाय के देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट डेढ पल्योपम की है । इनकी देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट पौण पल्योपम की है । उत्तरदिशा के नवनिकाय के देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट देश ऊणी दो पल्योपम की है । इनकी देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट देश ऊणी एक पल्योयम की है ।

वाणव्यन्तर देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक पल्योपम की है । इनकी देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट आधा पल्योपम की है ।

ज्योतिषी देवों के पांच भेद हैं– चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा । चन्द्रवासी देव की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम की, उत्कृष्ट एक पल्योपम और एक लाख वर्ष की है । इनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम की, उत्कृष्ट आधा पल्योपम और पचास हजार वर्ष की है ।

सूर्यवासी देव की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम की, उत्कृष्ट

२९. पूंजीद्वार– अहो भगवन् ! कौन देव कितने समय में अपनी पूंजी (पुण्य) को खर्च करता है (क्षय करता है) ? हे गौतम ! वाणव्यन्तर देव जितने पुण्य को १०० वर्ष में (खपाते हैं) उतने पुण्य को नवनिकाय के देव २०० वर्षों में खपाते हैं । असुरकुमार जाति के देव उतने पुण्य को ३०० वर्षों में खपाते हैं । ग्रह, नक्षत्र, तारा उतने पुण्य को ४०० वर्षों में खपाते हैं । चन्द्रमा, सूर्य ५०० वर्षों में खपाते हैं । पहले दूसरे देवलोक के देव एक हजार वर्ष में खपाते हैं । तीसरे चौथे के देव दो हजार वर्ष में, पांचवें छठे के तीन हजार वर्ष में, सातवें आठवें के चार हजार वर्ष में, नववें दसवें ग्यारहवें बारहवें के पांच हजार वर्ष में खपाते हैं । नवग्रैवेयक की पहली त्रिक के देव एक लाख वर्ष में, दूसरी त्रिक के देव दो लाख वर्ष में, तीसरी त्रिक के देव तीन लाख वर्ष में खपाते हैं । चार अनुत्तर विमान के देव चार लाख वर्ष में खपाते हैं और सर्वार्थसिद्ध विमान के देव पांच लाख वर्ष में खपाते हैं ।

*****